भारतीय इतिहास में संकल्पनाएं, विचार तथा शब्दावली

इतिहास विभाग

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय मार्ग, तीनपानी बाईपास

हल्द्वानी-263139

ई-मेल info@uou.ac.in, http@//uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक, दूरस्थ शिक्षा केन्द्र , जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय,दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास, एस.एस.जीना विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा
डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
श्री विकास जोशी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर(एसी), इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन

ब्लॉक एक

इकाई एक : सप्त सैन्धव, दशराज्ञ युद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबन तथा मकन, बोगजकोई, मातृदेवी, सभा- समिति, यज्ञ, श्रुति ,स्मृति- डॉ. श्याम बिहारी लाल, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
इकाई दो : कर्म का सिद्वान्त, वेदांग, वेदांत, सप्तांग, दण्डनीति, नियोग, तपस्या, सन्देहवाद,भौतिकवाद, आजीविक, आस्तिकवाद, प्रमाणवाद।- डॉ. श्याम बिहारी लाल, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय,
इकाई तीन: धर्मविजय, स्तूप ,चैत्य, नीति शास्त्र, धर्मसूत्र, तमिल संगम, पाली, प्राकृत, लौकिक संस्कृत, यवन, बोधिसत्व, तीर्थकर तमिलाहम, हलदण्ड – डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, एस.वी.डी.कालेज,पुंवाया,बरेली
इकाई चार : विष्टि, प्रणय, सीता, स्त्री- धन, प्रतिलोम विवाह, अनुलोम विवाह, वर्ण शंकर, गोत्र तथा प्रवर, राजतन्त्र गणराज्य मत्स्य-न्याय, अग्रहार ब्रह्ममादेय दशमाशं। – डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, एस.वी.डी.कालेज,पुंवाया,बरेली

ब्लॉक दो

इकाई पांच: इक्ता, खिलाफत, इनाम, वतन, अमरम, जजिया, जकात, खम्स, खराज, मदद-ए मास, हरम, परगना, तुर्कान-चहलगानी, जिम्मी, शरियत, परदा, उलेमा, खिदमती, शहना ए-मंडी,- डॉ. जीशान इज़्ज़त, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
इकाई छह : उर्दू, तराना, ठुमरी, गजल, कब्बाली, खयाल, कथक, खडी बोली, सती, गोद प्रथा, दास, बुतपरस्त, दोआब, सिलसिला- डॉ. जीशान इज़्ज़त, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
इकाई सात: मनसब, मुगल, तुर्क, मंगोल, मेहराब, गुम्बद, दस्तूर, खालसा- भूमी, काजी, सुलहकुल, इबादत्खाना, दहसाला प्रणाली, सयूरघाल- डॉ. जीशान इज़्ज़त, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
इकाई आठ: जागीर, मस्जिद, सूफी, सगुण, निर्गुण, सनातन, पीर, नजर, तीर्थ-कर, नायंकर एवं आयगर, रायरेखो, अहदी,

दाखली,कारखाना,मज्म-उल-बाहरीन,-डॉ. जीशान इज्ज़त, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

इकाई नौ : चौथ, सरदेशमुखी, महाराष्ट्र धर्म,अष्ट-प्रधान, सेना कर्ते, पेशवा, क्षत्रपति,हिन्दू-पाद-पादशाही, मराठा-संघ, देशमुख- डॉ. जी.एम. जैसवाल, एस.एस.जे.परिसर अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

ब्लॉक तीन

इकाई दस: उपनिवेशवाद, मुक्त व्यापार, कारखाना, द्वैध शासन, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद,वाणिज्यवाद- डॉ.जी.एम. जैसवाल,एस.एस.जे.परिसर अल्मोड़ा, कुमाऊँविश्वविद्यालय

इकाई ग्यारह: महाजनी, ब्लैकहोल, दस्तक, भूस्वामी, रैयत, निलहे, ठगी प्रथा, गोद प्रथा,निस्युन्दन सिद्वान्त- डॉ. जी.एम. जैसवाल,एस.एस.जे.परिसर अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

इकाई बारह : पुनर्जागरण, अन्धविश्वास, थियोसोफिस्ट, शुद्वि आन्दोलन, देवदासी, वुड्स डिस्पैच, सिविल सेवा, गवर्नर जनरल।- डॉ. जी.एम. जैसवाल,एस.एस.जे.परिसर अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

ब्लॉक चार

इकाई तेरह : वॉयसराय, गदर परतन्त्रता, उदारवादी,गरमपन्थी, स्वराज्य, धन का निष्कासन, अग्रगामी नीति, हण्टर कमीशन- डॉ. मनोज शर्मा, इतिहास विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,नई दिल्ली

इकाई चौदह: स्वदेशी, निहिलिस्ट, अनुशीलन समिति, चरमपन्थी।- डॉ. मनोज शर्मा, इतिहास विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,नई दिल्ली

इकाई पन्द्रह : असहयोग, सविनय अवज्ञा, रामराज्य, सूती, स्वावलम्बन, राष्ट्रीय एकता।- डॉ. मनोज शर्मा, इतिहास विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,नई दिल्ली

इकाई सोलह : साम्प्रदायिकता, संविधान, विभाजन, रैडक्लिफ रेखा, गणतन्त्र, प्रजातन्त्र।- डॉ. मनोज शर्मा, इतिहास विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,नई दिल्ली

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :
Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक

सप्तसैन्धव, दशराज्ञ युद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबन तथा मकन ,बोगजकोई,मातृदेवी, सभा-समिति, यज्ञ, श्रुति, स्मृति

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3. संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

- **1.3.1 दशराज्ञ युद्ध**
- **1.3.2 मातृदेवी**
- **1.3.3 भारतवर्ष**
- **1.3.4 हरियूपिया**
- **1.3.5 दिलबन तथा मकन**
- **1.3.6 बोगजकोई**
- **1.3.7 सभा-समिति**
- **1.3.8 यज्ञ**
- **1.3.9 पंचजन**
  - **1.3.9.1 राजनीतिक संगठन में परिवर्तन**
  - **1.3.10 श्रुति**
  - **1.3.11 स्मृति**
  - **1.3.12 सप्तसैन्धव**
    - **1.3.12.1आर्य ब्रहमर्षि प्रदेश के ही मूल निवासी थे**
    - **1.3.12.2आर्यों का मूल निवास स्थान सप्त सैन्धव का मैदान था**

1.4 साराशं

1.5 तकनीकी शब्दावली

1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में हमें विभिन्न साहित्यिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इस साक्ष्यो से माध्यम से ही हम प्राचीन भारत की कला, समाज, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन साक्ष्यो के माध्यम से हमें यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार भारतीय समाज में कला, संस्कृति, व्यापार-वाणिज्य, कृषि आदि का क्रमिक विकास सम्भव हो सका।

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक परम्पराएं विचार एवं रीतियाँ प्रचलित थी जो उस समय के समाज के विविध पक्षो के उत्थान के विषय में जानकारी प्रस्तुत करती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए उस समय के समाज में व्याप्त विभिन्न संकल्पनाओं विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में आप प्राचीन भारतीय शासको, समाज, कला धर्म, संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते है। इस पाठ में इसी बात को ध्यान में रखकर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भलीभाँति अध्ययन कर पायेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाओं, विचार एवं शब्दावली के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकिंत के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाऐं।
2. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न विचार
3. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न शब्दावली

1.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

आगे आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में बारबार प्रयुक्त होने वाली कुछ संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय दिया गया है,आप इनका अध्ययन,मनन कर आत्मसात करने का प्रयत्न करें।

1.3.1 दशराज्ञ युद्ध

ऋग्वेद का अधिकांश भाग देव-स्त्रोतों में भरा हुआ है और इस प्रकार उसमें ठोस ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम मिलती है। परनतु इसके कुछ मिंत्र ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं। जैसे एक स्थान ''दस राजाओं के युद्ध'' दशराज का वर्णन आया है जो भरत कबीले के राजा सुदास के साथ हुआ था। यह ऋग्वैदिक काल की एकमात्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक धारणा है। यह युद्ध आर्यों के दो प्रमुख जनों-पुरू तथा भरत के बीच हुआ था। भरत जन का नेता सुदस था जिसके पुरोहित वशिष्ठ थें इनके विरूद्ध दस राजाओं का एक संघ था जिसमें अनु, द्रुह्यु,यदु, पुरू, तुर्वस पांच

जनों के अतिरिक्त पांच लघु जनजातियों अनिल, पक्थ, भलानासे, शिव तथा विषाणिन के राजा सम्मिलित थे। ऋषि विश्वामित्र इस संघ के पुरोहत थे। यह युद्ध परिश्चमोत्तर प्रदेश से बसे पूर्वकालीन जन तथा ब्रहमावर्त के उत्तरकालीन आर्यों के बीच उत्तराधिकार के प्रश्न पर लड़ा गया था। इसमें भरत जन के स्वामी सुदास ने रावी नदी के तट पर एक भीषण युद्ध में दस राजाओं के इस संघ को परास्त किया और इस प्रकार वह ऋग्वैदिक कालीन भारत का सर्वोपरि सम्राट बन गया। भरत जन के नाम पर ही हमारे देश का नाम ''भारत'' पड़ा। यह ऋग्वैदिक काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण जन था जो सरस्वती तथा यमुना नदियों के बीच के प्रदेश में निवास करता था।

युद्ध के समय पुरोहित राजा के साथ जाता था तथा उसकी विजय के लिये देवताओं से प्रार्थना करता था। शिक्षक, पथ-प्रदर्शक तथा मित्र के रूप में पुरोहित राजा का मुख्य साथी होता था। राजा पुरोहितों का बड़ा सम्मान करते थे। उनका प्रभाव शासन पर भी था। ऋग्वेद में वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि पुरोहितों के नाम मिलते हैं जिनकी बहुत अधिक प्रतिष्ठा थी। सेनानी, राजा के आदेशानुसार युद्ध में कार्य करता था। शान्तिकाल में संभवत उसे नागरिक कार्यों केा भी करना पड़ता था। ग्रामीण, प्रशासनिक और सैनिक कार्यों के लिए ग्राम का नेता होता था। वह ग्रामीण जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करता था।

1.3.2 मातृदेवी

सर जॉन माश्रल के अनुसार मातृदेवी के सम्प्रदाय का सैन्धव सभ्यता में प्रमुख स्थान था। इड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चान्हूदड़ों आदि स्थलों से मिट्टी की बहुसंख्यक नारी मूर्तियां मिलती हैं तथा मुहरों के उपर भी नारी आकृतियों का अंकन विविध रूपों में प्राप्त होता है। इनके सिर पर पंखे के समान फैला हुआ आभरण है, लड़ियों वाला हार, चूड़ियां, मेखला, कर्णफूल आदि पहने हुए हैं। शिराभरण के दोनों ओर दीपक जैसी आकृतियां बनी हैं जिनमें धुऐं के चिन्ह दिखाई देते हैं। मैके का विचार है कि इनमें तेलबत्ती डालकर इनका प्रयोग दीपक की तरह किया गया होगा। मोहनजोदड़ों से एक स्त्री की मूर्ति मिली है जिसे देवी कहा गया है। देवी के सिर पर पंखे के समान फैला हुआ एक आभरण है तथा वह करधनी, हार, कर्णफूल, कण्ठहार आदि आभूषण पहने हुए हैं। मैके को कुछ ऐसी मूर्तियां मिली हैं जिन पर धुएं के चिन्ह दिखाई देते हैं। सम्भव है कि देवी को प्रसन्न करने के लिए उसके सामने धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जलाये जाते रहे होंगे।व्यंकटेश महोदय, ने दक्षिणी भारत से प्राप्त ''दीपलक्ष्मी'' की मूर्तियों की पहचान मातृदेवी की मूतियों से करते हैं।

हड़प्पा से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर विशेष प्रकार की चित्रकारियां दिखाई देती हैं। एक मुद्रा पर उपर की ओर पैर तथा नीचे की ओर सिर किये हुए एक नग्न नारी का चित्र है। देवी के पैर फैले हुए हैं तथा उसके गर्भ से एक पौधा निकल रहा है। पृष्ठ भाग पर एक तरफ एक हाथ उपर उठाये हुए बैठी हुई एक नारी का चित्र तथा दूसरी तरफ हंसिये के प्रकार का चाकू लिए हुए खड़ा आदमी चित्रित किया गया है। स्पष्टतः यह मानव बलि का दृश्य है। मार्शल का विचार है कि

उस समय देवी को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यों की बलि का विधान थ। एक दूसरी मुद्रा पर पीपल के वृक्ष की दो शाखाओं के बीच एक स्त्री का चित्र है। पेड़ के नीचे मनुष्य एक बकरा लिए हुए खडा है। नीचे मनुष्यों की एक भीड़ का चित्रण है। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं- (1) बकरे की बलि मातृदेवी की उपासना से सम्बन्धित थी। (2) सम्भवतः पीपल के पेड़ की उपासना मातृदेवी की उपासना से सम्बन्ध रही होगी। मुहरों पर अंकित कुछ नारी मूर्तियों में उनकी गोद में बच्चा दिखाया गया है जिससे उनका मातृत्व सूचित हेाता है नारी मृण्मूर्तियां रौद्र रूप की भी है। इनसे सूचित होता है कि देवी के सौम्य तथा रौद्र दोनों की रूपों की कल्पना की गयी थी। हीलर के अनुसार मातृदेवी का सम्प्रदाय राजधर्म नहीं था, वरन् यह एक पारिवारिक सम्प्रदाय था।

1.3.3 भारतवर्ष

भारत एक महान देश है। इसकी सभ्यता एवं संस्कृति उतनी पुरानी है जितना स्वयं मानव। इसकी विशालता के कारण इसे उपमहाद्वीप की संज्ञा दी गयी है। यह एशिया महाद्वीप के दक्षिण भाग में स्थित है लेकिन स्वयं एक महाद्वीप है। यह विश्व का अकेला ऐसा देश है जिसका नाम हिन्द महासागर से जुड़ा है। इसका प्राचीन नाम आर्यावर्त है। इस देश का नामकरण ऋग्वेदिक काल के प्रमुख जन भरत के नाम पर रखा गया प्रतीत होता है। विष्णु पुराण में उल्लिखित है ''समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में जो स्थित है, वह भारत देश है तथ वहां की संस्कृति भारतीय है।''

सिन्धु द्वारा सिंचित प्रदेश को ''इण्डिया'' नाम सबसे पहले अखमनी ईरानियों द्वारा दिया गया। पारसियों के पवित्र ग्रन्थ ''जिन्द अवेस्ता'' में सरस्वती की सात नदियों के क्षेत्र का उल्लेख करते हुए 'सप्त सैन्धव'' शब्द का प्रयोग किया गया है। ईरानियों की पुस्तक ''मेहरेयास्त'' और ''यास्ना'' में सप्त सिन्धु के स्थान पर ''हप्त हिन्दु'' का उल्लेख मिलता है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने इण्डोस शब्द का प्रयोग परसियन साम्राज्य की ''क्षत्रपी'' के लिए किया है।

एक प्रदेश के रूप में भारत का प्रथम सुनिश्चित उल्लेख छठी-पांचवीं शताब्दी ई0पू0 की पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है। तब भारत नाम का जनपद कम्बोज से मगध तक निर्दिष्ट 22 जनपदों में से एक था। बौद्ध साहित्य में प्राचीन सप्त सिन्धु के अनुरूप सात भारत प्रदेशों का उल्लेख है। इत्सिंग ने भारत के लिए आर्य देश और ब्रहमराष्ट्र जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है।

पुराणों में भारतवर्ष शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है- ''वह देश जो समुद्र (हिन्द महासागर) क उत्तर में और बर्फीले पर्वतों (हिमालय) के दक्षिण में स्थित है, जहॉ पर सात मुख्य पर्वत श्रृंखलायें अर्थात् महेन्द्र, मलय, सहि, सुक्तिमतरिक्षि (आयोनियन) रहते हैं और इसके अपने लोग ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और हिन्दू है''। भागवत पुराण और मनुस्मृति जैसे धार्मिक ग्रन्थों में भारतवर्ष को देवताओं द्वारा निर्मित भूमि बताया गया है आौर यह कहा गया है कि देवता भी पृथ्वी के इस स्वर्ग में जन्म लेने की इच्छा रखते है।

1.3.4 हरियूपिया

व्हीलर ने हड़प्पा में अपने उत्खनन के दौरान एक टीले के चारों ओर सुरक्षा भित्ति का पता लगाया। साथ ही ऋग्वेद में उल्लिखित पुरन्दरी तथा हरियूपिया शब्दों की जानकारी उन्हें प्राप्त हुई। इस आधार पर आर्य आक्रमण का सिद्धान्त गढ़ने में उन्हें सफलता मिली क्योंकि पुरन्दर का अर्थ होता है दुर्गों का विनाशक। उन्होंने तुरन्त यह घोषणा कर दी कि सरसरी तौर पर इन्द्र को (आर्यों के प्रतीक) सैन्धव पुरों के विनाश के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। हरियूपिया का तादात्म्य हड़प्पा से स्थापित करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आर्यों ने लगभग 1500 ई0 पू0 आक्रमण करके सैन्धव नगरों केा ध्वस्त कर दिया तथा वहां के नागरिकों को मार डाला किन्तु अब आर्य आक्रमण का सिद्धान्त कल्पना की उपज सिद्ध हो गया है। मोहनजोदड़ों के जिन जन-कंकालों का विद्वानों ने उल्लेख किया है वे न तो एक ही स्तर के हैं और न ही वह इस सभ्यता का अंतिम स्तर है। ये कंकाल ऊपरी स्तर से भी नहीं मिलते। इन पर शारीरिक घाव के चिन्ह बहुत कम है। कुछ के मस्तक पर कटने के ऐसे निशान हैं जो अंशतः भर गये हे। इससे सूचित होता है कि चोट लगने तथ मृत्यु के बीच काफी अन्तराल था। जिस स्तर से ये कंकाल मिलते है।

वहॉ अथवा उसके बाद के स्तरों से युद्ध में प्रयुक्त होने वाली कोई भी सामग्री बाण, भाला, फरसा, कवच आदि नहीं प्राप्त होता है। कहीं भी इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि इतने बड़े पैमाने पर आक्रमण हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार इनमें से अधिकांश की मृत्यु प्लेग, मलेरिया जैसी बीमारियों से हुई होगी। जहॉ तक हरियूपिया के हड़प्पा से तादात्म्य का प्रश्न है, इसके लिए दोनों शब्दों में मात्र ध्वनिसाम्य के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं है। अतः अब आर्यों को सैन्धव सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

मोहनजोदड़ों क्षेत्र से प्राप्त नर-कंकालों की दशा तथा भीषण अग्नि से पिछले पाषाण अवशेष से दिमित्रिदेव के निष्कर्ष का समर्थन भी होता है। उन्होंने इस संबंध में महाभारत में उल्लिखित इसी प्रकार के विस्फोट की ओर संकेत किया है जो मोहनजोदड़ों के समीप हुआ था। सैन्धव सभ्यता का अन्त अचानक न होकर एक दीर्घकालीन प्रक्रिया का परिणाम था।

1.3.5 दिलबन तथा मकन

जैसा कि हम जानते हैं कि सिंन्धु सभ्यता का व्यापार-वाणिज्य अत्यधिक विकसित था और इस क्षेत्र में घरेलू व्यापारिक सम्पर्कों के अलावा उन्होंने विदेशों के साथ भी अपने सम्पर्क स्थापित किये थे। हमें सुमेर सभ्यता के मिथकों में दिलबन और मकन का उल्लेख भी मिलता है। पुराविदों ने इन स्थलों को सिन्धु सभ्यता के क्षेत्रों से समीकृत किया है। सुमेर के दस्तावेजों में व्यापारियों द्वारा दिलबन जाने और वहां से हाथी दांत लाने का उल्लेख मिलता है, हम जानते हैं कि सिन्धु सभ्यता अपने हाथी दांत के लिए विख्यात थी।अभिलेखों में अनेक सुमेरियाई शासकों द्वारा दिलबन के साथ सम्पर्क होने की बात भी मिलती है।

1.3.6 बोगजकोई

मध्य एशिया के बोगजकोई नामक स्थल में 14वीं सदी ईस्वी पूर्व के प्रारंभ का एक अभिलेख मिला है जिसमें हिट्टाइट और मिटानी शासकों के बीच सन्धि का उल्लेख मिलता है। सन्धि की साक्षी के रूप में ये शासक मित्र , वरूण ,इन्द्र और नासत्य जैसे देवताओं का उल्लेख करते हैं।ये देवता हमारे श्रृग्वेद में भी आये हैं । इस अभिलेख से पता चलता है कि आर्यों के भारत आगमन से पूर्व अभिलेख में वर्णित शासकों के पूर्वज और श्रृग्वेदिक लोगों के पूर्वज किसी निश्चित स्थान में दीर्घकाल तक साथ रहे थे और दोनों के धार्मिक विश्वास समान थे।

1.3.7 सभा-समिति

उत्तर वैदिक युग में सभी और समिति के अधिकारों में भी पर्याप्त वृद्धि हो गयी है। सभी और समिति नामक संस्थायें इस समय भी राजा की निरकुंशता पर रोक लगाती थी। राजा के निर्वाचन में भी जनता का हाथ होता था। अथर्ववेद में सभी और समितियों को ''प्रजापति की देा पुत्रियॉं'' कहा गया है। इन दोनों संस्थाओं के स्वरूप के विषय में विवाद है। लुडविग का विचार है सभा उच्च सदन थी जिसमें पुरोहित तथा कुलीन लोग भाग लेते थे। इसके विपरीत समिति निम्न सदन थी जिसमें सामान्य जन के प्रतिनिधि बैठते थे। जिमर का मत है कि सभा, ग्राम की संस्था थी तथा समिति सम्पूर्ण जन की केन्द्रीय समिति होती थी। हिलब्रान्ट के अनुसार समिति संस्था थी जबकि सभा उसकी बैठक स्थल थीं। के0 पी0 जायसवाल का विचार है कि समिति राष्ट्रीय संस्था थी जबकि सभा उसकी स्थायी समिति हेाती थी। अल्तेकर के अनुसार सभा प्रायः ग्राम संस्था थी और उसमें सामाजिक और राजनीतिक दोनों विषयों पर विचार किया जाता था। सभा में बहुमत से निर्णय लिए जाते थे यह न्यायालय का भी काम करती थी। समिति का स्वरूप केन्द्रीय शासन की व्यवस्थापिका सभी के समान था। सभी से बड़ी जनता की संसद होती थी। केन्द्रीय शासन और सेना पर समिति का बहुत अधिक प्रभाव था। समिति के समर्थन पर ही राजा का भविष्य निर्भर करता था। समिति के विरूद्ध हो जाने पर राजा की स्थिति संकटपूर्ण हो जाती थी किन्तु इसकी रचना एवं कार्य-पद्धति के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः इसका स्वरूप एंव कार्य-पद्धति गणराज्यों की केन्द्रीय समितियों जैसा ही रहा होगा, जिसमें सैनिक एवं कुलीन वर्ग के प्रमुख व्यक्ति भाग लेते होगें। अपनी सेवाओं के बदले राजा को अपनी प्रजा के कर तथा सेवा प्राप्त करने का अधिकार था। प्रारम्भ में यह भेंट, उपहार आदि के रूप में ऐच्छिक था, किन्तु धीरे-धीरे इसने नियमित कर का रूप प्राप्त कर लिया। करों का बोझ मुख्यतः कृषकों, व्यापारियों, कलाकारों, शिल्पियों आदि पर ही पड़ता था। ब्राहमण तथा राजन्य वर्ग के लोग अधिकांशतः राजकीय करों से मुक्त थे । संहिता और ब्राहमण काल तक आते आते समिति का प्रभाव कम हो गया और यह केवल परामर्शदायिनी परिषद् ही रह गयी।

1.3.8 यज्ञ

वैदिक काल में हवन व यज्ञ को विशेष महत्व दिया जाता था और गृहस्थ जीवन को मोक्ष के मार्ग में बाधक स्वीकार नहीं किया जाता था। पति-पत्नी दोनों यज्ञ में भाग लेते थे और यज्ञ विधि अत्यन्त सरल थी, परन्तु समय के साथ उसका स्वरूप जटिल होता गया और उसमें अनेक आडम्बरों के आ जाने के कारण वे अत्यन्त खर्चीले हो गये। सामान्यतः इतिहास में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है। प्रथम गृह यज्ञ से तात्पर्य उस यज्ञ से है जो वेद के अनुकूल हो। धीरे धीरे यज्ञों के रूप में परिवर्तन होने लगा और पौराणिक काल में यज्ञ की पूजा स्वीकार कर ली गयी। वर्तमान समाज में यज्ञ से तात्पर्य पूजा से ही है।

पूर्व वैदिक कालीन धार्मिक जीवन बड़ा सरल था। वह प्रकृति से प्रभावित होकर उसकी देव रूप में उपासना करता था। उसकी देवोपासना में भक्ति व आत्मसमर्पण प्रधान था पर उत्तर वैदिक काल में स्थिति बदली मनुष्य ने प्रकृति से स्वतंत्र हो, अपने अहंकार को संभाला और अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु देवताओं को मंत्र से मुग्ध करना चाहा। फलतः इस काल में वैदिक मंत्रों का महत्व अधिक बढ़ा। वैदिक मंत्रों के साथ तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, इंद्रजाल व वशीकरण आदि में भी लोगों का विश्वास बढ़ने लगा। इसी के साथ ही धार्मिक कर्मकाण्डों का भी विस्तार हुआ। धार्मिक कृत्यों में यज्ञ मुख्य था। पहले ये यज्ञ बडे सरल व साधारण ढंग से होते थे। यज्ञों की सादगी लुप्त हो गई और उनमें अनेक कर्मकाण्डीय जटिलताएं पैदा हो गयी। इसी के साथ यज्ञों केी संख्या एवं स्वरूप में भी विस्तार हुआ। यज्ञों की बहुलता व जटिलता से पुरोहितों अर्थात् ब्राहमणों की महत्ता बढी। जहां एक यज्ञ में 7 पुरोहित भाग लेते थे, वहीं उनकी संख्या 17 हो गयी। अब यज्ञ इतने खर्चीले हो गये कि साधारण जनता की आर्थिक शक्ति से परे हो गए। बडे- बडे यज्ञ जैसे राजसूय, बाजपेय और अश्वमेध आदि यज्ञों का विकास इसी युग में हुआ। कुछ यज्ञ तो वर्षों तक चलते रहते थे। यज्ञों को इतना अधिक महत्वशाली बना दिया गया कि देवता भी उसके अधीनस्थ माने जाने लगे। यज्ञीय विश्वास यहॉ तक दृढ़ हो गया कि यज्ञकर्ता जीवन मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। यज्ञ में बलि का महत्व भी बढा। अब भेाज्य पदार्थों के बलि के अतिरिक्त पशुबलि भी प्रचलित हो गयी। यह बलि जो पूर्व वैदिक काल में देवताओं का उपहार मानी जाती थी। अब देवता व पूर्वजों को संतुष्ट करने का साधन बन गई । इन कर्मकाण्डों में यद्यपि बाहय आडम्बर बहुत थे, फिर भी उनमें कुछ नीति के सिद्धान्त थे। इन्हीं में पंच महायज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ व भूतयज्ञ और तीन ऋणों देवऋण, ऋषिऋण व पितृऋण की कल्पना की गई थी, जिनका विकास परवर्ती कालों में हुआ।

1.3.9 पंचजन

आर्य कई जनों में विभक्त थे। इनमें पॉच जनों के नाम अक्सर मिलते है। अनु, द्रहन, यदु, पुरू, तुर्वस। इन्हें पंचनन कहा गया है। जन के अधिपति को राजा कहा गया हैं। उत्तरवैदिक काल में आर्यों के प्राचीन जनों और कबीलों

के संगठन में भारी परिवर्तन हुआ। प्राचीन जनों में कुछ अपना महत्व खो चुके थे तो कुछ की महत्ता काफी बढ गई थी। ऋग्वेद के भरतों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और उसका स्थान कुरूओं ने ले लिया था। संभवतः भरतों और कुरूओं के जन कुरूओं में मिलकर खा गये थे। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि पांचालों का जन कई जनों के मिश्रण से बना था। तत्कालीन साहित्य में मत्स्यों का उल्लेख मिलता है। ये जयपुर आपैर अलवर के आस पास फैले हुए थे। बडी बडी आर्य बस्तियां बनने लगी थी और बडे बडे जन स्थापित होने लगे थे। अतः राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक जीवन , आर्थिक जीवन तथा सांस्कृतिक चेतनाओं में युगान्तकारी परिवर्तन होने लगा। समाज में पुरोहितों और क्षत्रियों का वर्चस्व बढने लगा। अतः इन अनेक परिवर्तनों ने उत्तर वैदिक संस्कृति को भारत के इतिहासकार के प्रवेश द्वार को लांघकर ऐतिहासिक युग में खडा कर दिया।

1.3.9.1 राजनीतिक संगठन में परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल में आर्यों के राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ था। आर्य सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र के विस्तार के साथ साथ आर्यों के राजनीतिक संगठन में परिवर्तन हुआ। ऋग्वैदिक काल में राज्यों की निश्चित सीमाएं नहीं थीं और अधिकतर राज्यों का संगठन जनजातियों द्वारा हुआ था, लेकिन इस काल में आकर राज्यों का प्रसार दूर-दूर तक हुआ और बडे-बडे राज्यों की स्थापना हुई। उत्तर वैदिक काल को राजनीतिक परम्परा में सार्वभौम और अधिराज्य आदि विविध सत्ताओं का उदय हुआ।

उत्तर वैदिक काल में प्राचीन कबीलों का अस्तित्व भंग होने लगा। उनकी जगह बडे बड जन होने लगे। जन के स्वरूप से नृपतंत्र के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा। राजा या राज्य की उत्पत्ति के युद्धमूलक सिद्धान्त की जगह राजा या राज्य की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त प्रकट होने लगा। ब्राहमण ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उत्तर वैदिक राजा देवता या देवता की संतान नहीं, वरन् देवताओं जैसा माना जाने लगा था। उनके लिए देवताओं के गुणों या शक्तियों को प्राप्त करना अनिवार्य था। राजा के लिए तीन प्रकार के यज्ञों का अलग से विधान किया गया था। राजसूय यज्ञ राजपद के लिए, गौमेध यज्ञ पशुधन की प्राप्ति के लिए तथा अश्वमेघ साम्राज्य विस्तार के लिए आवश्यक बन गया था।

1.3.10 श्रुति

श्रुति का शाब्दिक अर्थ है-‘ जो सुना गया है’, श्रुति साहित्य के अंतर्गत उन ग्रंथों को सम्मिलित किया जाता है जिनके मन्त्र श्रृग्वेदिक काल के मनीषियों को प्रत्यक्षतः प्रकट किये गये थे।इन ग्रंथों के अंतर्गत संहिता ग्रंथ आते हैं। संहिताओं की संख्या चार है, इनमें प्रथम तीन संहिताऐं वैदिक धर्म के यज्ञ अनुष्ठानों से संबंधित हैं यद्यपि इनमें अन्यान्य सूचनाऐं भी मिलती हैं-

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः-वेद शब्द ‘विद्‘ धातु से बना है जिसका अर्थ है ‘‘जानना‘ सामान्यतः इसका अर्थ ‘ज्ञान‘ से है। वेदों की संख्या चार है, यथा‘ ऋक, साम, यजुः और अथर्व। प्रथम तीन कभी कभी त्रयी कहे जाते हें और

सर्वप्रथम यहीं धर्म ग्रंथ माने गयें। ऋग्वेद प्राचीनतम है इसमें 10 मण्डल तथा कुल मिलाकर 1028 सूक्त है। प्रत्येक सूक्त में रचयिता ऋषि का नाम अथवा गो., स्तुति की जाने वाले देवता का ना मतथा विनियो मिलता है। होत नामक पुरोहित इनका पाठ करते थें। 2 से 7 तक मण्डल सर्वाधिक प्राचीन हैं जबकि 10 वॉ मण्डल उत्तर-वैदिक काल में जुडा प्रतीत हाता है। सामवेद में शायद ही कोई स्वतन्त्र विषय है केवल 75 मन्त्रों को छोडकर इसके सभी मन्त्र सीधे ऋग्वेद से लिये गये है। इसके मन्त्र सोमयज्ञ के अवसर पर उद्गातृ नामक एक विशेष वर्ग के पुरोहितों द्वारा गाये जाते थे। सामवेद, गायन से सम्बन्धित है और भारतीय संगीत का जन्म सामवेद से ही माना जाता हे। यजुः का अर्थ यज्ञ है, इस वेद में अनेक प्रकार की यज्ञ विधियों का प्रतिपादन किया गया है इसीलिए यह यजुर्वेद कहलाया। यजुर्वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं के अतिरिक्त मौलिक गद्य के मन्त्र भी थे जिन्हें अधवर्यु नामक पुरोहित पढते थे। इस संहिता में दो भिन्न पाढ हैं- तैत्तिरीय, मैत्रायनी और काढन पाठान्तर-ग्रन्थों में सुरक्षित कृष्णयजुर्वेदसंहिता और वाजसने थी पाठान्तरग्रन्थ में सुरक्षित शुक्लयजुर्वेद संहिता उपरोक्त संहिताआं के बहुत समय बाद अथर्ववेद ने धर्म ग्रन्थ की स्वीकृति प्राप्त की। इसमें 40 अध्ययन है। इसके विषयों में ब्रहम ज्ञान, समाज निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रु दमन, रोग निवारण , जन्त्र मन्त्र, रोना टोटका आदि सम्मिलित है। विषय विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस समय तक आर्य और अनार्य विचारधाराओं का समन्वय हो गया था।

1.3.11 स्मृति

स्मृति से तात्पर्य है वह जो स्मरण रखा गया है। इसका यह भी अर्थ लिया जाता है कि जिसे समाज ने परम्परा से स्मरण कर समाज को दिया है, इसका प्रयोग धर्मशास्त्र के लिए किया गया हैं। इन स्मृतियों के प्रधानतया तीन वर्ण विषय है- आचार, व्यवहार, प्रायश्चित। आचार का तात्पर्य आचरण से है। इसमें चारों वर्णों और चारों आश्रमों के कर्तव्य कर्मों का विधान पाया जाता है। समाज में चारों वर्णों का क्या दायित्व है इसे इसमें स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही समाज तथा व्यक्ति को आश्रमों से कैसे गुजरना है उनका क्या कर्तव्य है इसे व्यक्त किया गया है?

आचार के बाद व्यवहार एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका तात्पर्य विधि से है। व्यवहार के अन्तर्गत आज के समस्त दीवानी व फौजदारी कानून आ जाते है। विविध कानूनों की इसमें विषद व्याख्या की गयी है। तदोपरान्त प्रायश्चित का विधान है। इसमें धार्मिक एवं सामाजिक कृत्यों के न करने से या विपरीत ढंग से करने से जिन पापों का प्रादुर्भाव होता है, उसके प्रायश्चित का विधान दिया गया है। भारतीय समाज की व्यवस्था करना स्मृतिकारों का प्रमुख कार्य था, जिसे उन्होंने विविध स्मृतियों में किया है। स्मृतिकारों को यह ज्ञान था कि समाज और व्यक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। समाज की उन्नति व्यक्ति पर निर्भर है तो व्यक्ति की उन्नति समाज पर। इन सबकों दृष्टि में रखते हुए स्मृतियों ने समाज के अभ्युदय के निर्मित अनेक व्यापक नियमों का निर्माण किया है, जिनसे समाज के साथ ही व्यक्ति का विकास भी सम्भव है।

स्मृति ग्रन्थ पद्य में लिखे गये है। स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक मानी जाती है। व्यूहलर के अनुसार इसकी रचना ई0 पू0 दूसरी शताब्दी से लेकर ई0 की दूसरी शताब्दी के मध्य हुई थी। अन्य स्मृतियों में याज्ञवल्क्य, नार, बृहस्पति, कात्यायन, देवल आदि की स्मृतियां उल्लेखनीय है। मनुस्मृति को शुंग काल का मानक ग्रन्थ माना जाता है। इसके अध्ययन से शंगकालन भारत की राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक दशा का बोध होता है। नारद स्मृति गुप्त युग के विषय में महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करती हैं कालान्तर में इन पर अनेक विद्वानों द्वारा टीकायें लिखी गयी। मनुस्मृति के प्रमुख टीकाकार वरूरूचि, मेधतिथि, गोविन्दराज तथा कुल्लूक भट्ट हैं। विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, तथा अपरार्क, याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रमुख टीकाकार है। इन टीकाओं से भी हम हिन्दू समाज के विविध पक्षों के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त करते है।

1.3.12 सप्तसैन्धव

सिन्धु घाटी की सभ्यता के पतन के उपरान्त भारत में सिन्धु और उसके आस पास के मैदान में एक भिन्न ग्रामीण संस्कृति का आभिर्भाव हुआ उसे साहित्य के आधार पर ''वैदिक सभ्यता'' पुरातात्विक खोज के आधार पर ''हडप्पोतर ताम्र पाषाण सभ्यता'' और संस्कृति निर्माता के आधार पर ''आर्य सभ्यता'' के नाम से जाना जाता है चूंकि इस सभ्यता के निर्माता आर्य थे और इस सभ्यता की जानकारी हमें ऋग्वेद में मिलती है यही कारण है कि इस सभ्यता को ''आर्य सभ्यता'' या ''वैदिक सभ्यता'' कहा जाता है।

आर्यों का निवास स्थान कहां था? यह प्राचीन भारतीय इतिहास का सबसे विवादास्पद पक्ष माना जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों ने पॉच प्रमुख साधानों का सहारा लिया है, यथा इतिहास, पुरातत्व, शरीर रचना शास्त्र, भाषा शास्त्र और शब्द विकास शास्त्र किन्तु इन साधनों से निष्कर्ष इतने अलग अलग लिये गये हैं कि किसी एक मत पर पहुंचना असंभव सा प्रतीत होता है। अतः इस सम्बन्ध में प्रचलित मतों को मोटे तौर पर दो भागों में बांटकर अध्ययन किया जाता हैः-

आर्य भारत के ही मूल निवासी थे।

आर्य भारत से बाहर के निवासी थे।

1.3.12.1 आर्य ब्रहमर्षि प्रदेश के ही मूल निवासी थे

इस मत के समर्थक डॉ0 गंगानाथ झा का मानना है कि ऋग्वेद में आर्यों के कहीं बाहर से आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इसलिए वैदिक साहित्य में आर्य जाति के लोग भारत के ही मूल निवासी थे। जिन नदियों एवं स्थानों के नाम का विवरण ऋग्वेद में मिलता है उनकी पहचान का विवरण ऋग्वेद में मिलता है, उनकी पहचान भारतीय नदियों और स्थानों से की जाती है।

1.3.12.2 आर्यों का मूल निवास स्थान सप्त सैन्धव का मैदान था

इस मत के समर्थक डॉ0 सम्पूर्णानन्द थे। उनके अनुसार आर्यों का आदि देश सप्त सैन्धव का मैदान था। इस मत का समर्थन विद्वान डॉ0 ए0 सी0 दास भट्ट करते हैं। इन विद्वानों ने अपने मत का आधार ऋग्वेद में वर्णित नदियों और स्थानों को बनाया । ऋग्वेद में सरस्वती, घाघरा, सिन्धु, झेलम, रावी, व्यास, सतलज, काबुल, कुर्रम, सप्त सिन्धु नदियों का विवरण मिलता है। ऋग्वेद में सप्त सिन्धु को आर्यों का स्वर्ग कहा गया है। भाषा के आधार पर वैदिक शब्द का प्रचलन भारतीय भाषा में सबसे अधिक सिन्धु और गंगा के मैदान में देखा गया है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. भरत जन के नाम पर ही हमारे देश का नाम ''भारत'' पड़ा
2. सिन्धु द्वारा सिंचित प्रदेश को ''इण्डिया'' नाम सबसे पहले अखमनी ईरानियों द्वारा दिया गया
3. वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है ''जानना'
4. बोगजकोई अभिलेख में हिट्टाइट और मिटानी शासकों के बीच विवाह सन्धि का उल्लेख मिलता है
5. ऋग्वैदिक कालीन धार्मिक जीवन जटिल कर्मकाण्डों से भरा था
6. स्मृतियों में मनुस्मृति सबसे नवीन तथा प्रामाणिक मानी जाती है

1.4 साराशं

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप सप्त सैन्धव, दशराज्ञ युद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबन तथा मकन,बोगजकोई, मातृदेवी, सभा- समिति, यज्ञ, श्रुति ,स्मृति आदि के बारें में प्रर्याप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंली प्रकार समझ सकते है।

1.5 तकनीकी शब्दावली

जन - यह ईरानी जन्तु शब्द से निकला है,जिसका तात्पर्य कबीले से है

श्रुति - श्रुति का शाब्दिक अर्थ है-' जो सुना गया है'

स्मृति -स्मृति से तात्पर्य है वह जो स्मरण रखा गया है।

सप्तसैन्धव- सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों का क्षेत्र

1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य

भाग 1.3.12.2 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।

के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

1.8 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3rd edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपरोक्त इकाई के आधार पर वैदिक कालीन जीवन पर प्रकाश डालिए।

इकाई दो

कर्म का सिद्वान्त ,वेदांग ,वेदांत ,सप्तांग, दण्डनीति ,नियोग ,तपस्या ,सन्देहवाद ,भौतिकवाद, आजीविक ,आस्तिकवाद , प्रमाणवाद

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3. संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

2.3.1 वेदान्त

2.3.2 कर्म का सिद्धान्त

2.3.3 नियोग

2.3.4 आजीविक

2.3.5 प्रमाणवाद

2.3.6 वेदांग

2.3.6.1 शिक्षा

2.3.6.2 कल्प

2.3.6.2.1 श्रौत सूत्र

2.3.6.2.2 गृहय सूत्र

2.3.6.2.3 धर्म सूत्र

2.3.6.3 व्याकरण

2.3.6.4 निरूक्त

2.3.6.5 छन्द

2.3.6.6 ज्योतिष

2.3.7 सप्तांग सिद्धान्त

2.3.8 तपस्या

2.3.9 संदेहवाद एवं भौतिकवाद

2.3.10 आस्तिकवाद

2.3.11 दण्ड नीति

2.4 साराशं

2.5 तकनीकी शब्दावली

2.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में हमें विभिन्न साहित्यिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इस साक्ष्यो से माध्यम से ही हम प्राचीन भारत की कला, समाज, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन साक्ष्यो के माध्यम से हमें यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार भारतीय समाज में कला, संस्कृति, व्यापार-वाणिज्य, कृषि आदि का क्रमिक विकास सम्भव हो सका।

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक परम्पराएं विचार एवं रीतियाँ प्रचलित थी जो उस समय के समाज के विविध पक्षो के उत्थान के विषय में जानकारी प्रस्तुत करती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए उस समय के समाज में व्याप्त विभिन्न संकल्पनाओं विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में आप प्राचीन भारतीय शासको, समाज, कला धर्म, संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते है। इस पाठ में इसी बात को ध्यान में रखकर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भलीभाँति अध्ययन कर पायेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाओं, विचार एवं शब्दावली के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकिंत के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाऐं।
2. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न विचार
3. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न शब्दावली

2.3.0 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

आगे आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में बारबार व्रयुक्त होने वाली कुछ संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय दिया गया है,आप इनका अध्ययन,मनन कर आत्मसात करने का प्रयत्न करें।

2.3.1 वेदान्त

वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषद् को वेदान्त कहा जाता है। उपनिषद् मुख्यतः ज्ञानमार्गी रचनायें है, जिनमें हम वैदिक चिन्तन की चरम परिणति पाते हैं। इनका मुख्य विषय ब्रहमविधा का प्रतिपदन

है। इस प्रकार उपनिषद् वह साहित्य है, जिनमें रहस्यात्मक ज्ञान एवं सिद्धान्त का संकलन है। डाउसन ने इसे रहस्यात्मक उपदेश बताया है।

मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों का उल्लेख मिलता है। शंकराचार्य ने केवल 10 उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। वे ही प्राचीनतम एवं प्रामाणिक माने जाते हें। उपनिषद् पूर्णतया दार्शनिक ग्रन्थ हैं, जिनका मुख्य ध्येय ज्ञान की खोज है। ये बहुत देववाद के स्थान पर ''परब्रहमण'' की प्रतिष्ठा करते हैं। यज्ञीय कर्मकाण्डों तथा पशुबलि की इनमें मिलती है तथा उनके स्थान पर ज्ञान यज्ञ का प्रतिपादन हुआ है। छान्दोग्यपनिषद् में ''सर्व खल्विदं ब्रहम'' अर्थात् ब्रहम ही सब कुछ हैं, कहकर अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की गयी है।

सृष्टि का सारभूत तत्व ''ब्रहमन '' तथा व्यक्ति के शरीर का सारभूत ''तत्व'' आत्मन है। उपनिषदों में इन दोनों का तादात्म्य स्थापित किया गया है। आत्मा ही ब्रहम है, वह (ब्रहम) तुम्हीं हो (तत् त्वम् असि) प्रसिद्ध औपनिषदिक उक्तियॉ मिलती है। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आत्मा या ब्रहम का साक्षात्कार है। उपनिषदों में सर्वत्र सत्य को खोजने की सच्ची उत्कण्ठा दिखाई देती है।

2.3.2 कर्म का सिद्धान्त

कर्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त का सबसे प्रथम और स्पष्ट कथन शतपथ ब्राहमण में मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि मृत्यु होने पर आत्मा शरीर के बाहर निकल जाती है और व्यक्ति के जीवन भर के संचित कर्म उसके साथ जाते हें और इसी से निर्णीत होता है कि अगले जन्म में आत्मा कौन सी योनि धारण करेगी। इसी ग्रन्थ में प्रश्नों का उत्तर देते हुये याज्ञवल्क्य ने बताया है कि मनुष्य का भावी जीवन उसी के अपने कर्मो से निर्धारित होता है। सत्कार्मों के फल अच्छे होते हैं और दुष्कार्मे के बुरे। कौशीतकी उपनिषद् के अनुसार आत्मा अपने कर्म और ज्ञान के अनुरूप अगली योनि पाती है वहीं कठोपनिषद् में बताया गया है कि आचरण और ज्ञान के अनुसार आत्मा (यथ कर्म यथा श्रुतम) नई योनि धारण कर सकती है। महाभारत में कहा गया है कि प्राणी सदैव कर्म बंधन में बंधा रहता है। आत्मा बार बार अपने संचित कर्मभार सहित जन्म पाती है और यह कर्मग्रस्त जीवन का ही फल होता है कि किसी को सुख-दुःख तथा भाव-अभाव का सामना करना पडता है। ज्ञान के सोपान का अवलम्ब लेकर ही कोई इस स्थिति को प्राप्त कर पाता है। जहॉ न दुःख है, न जन्म मरण और न पुनर्जन्म। कर्म के विषय का विवेचन स्मृतियों में भी मिलता है। मनु के अनुसार हमारे सम्पूर्ण कर्म मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होता है और अच्छे तथा बुरे परिणामों को जन्म देता है। मनुष्य के जीवन की विभिन्न गतियों के लिए ये कर्म ही कारण हेाते हैं। शुक्रनीति कहती हैं कि मनुष्य के कर्म केवल उसके भावी जन्म के भाव का ही नहीं अपितु उसके जीवन की मनःस्थिति तक का निर्धारण करते हैं। पूर्व जन्मों में किये गये कर्मो के प्रभाव के अनुरूप मनुष्य की सद्गुणों या दुर्गुणों की ओर होने वाली प्रवृत्ति का निर्माण हेाता है। पंतजलि के मतानुसार ज्ञान ही वह साधन है जिसके द्वारा कर्मों का तथा उनसे उद्भूत होने वाले जन्म मरण के उस अनन्त चक्र का

अन्त किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत कर्म और जन्म बार बार एक दूसरे को उत्पन्न करते रहते है। गीता में कहा गया है कि जीवन को वर्तमान अवस्था अतीत के जन्मों और कर्मों तथा भावी जीवनों के बीच सन्धि अवस्था है। स्वयं आत्मा न तो कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। जब शरीर मरण को प्राप्त होता है, आत्मा का मरण नहीं होता वरन् नया शरीर धारण कर लेती है। जिसने जन्म लिया है, उसका मरण भी एक दिन अवश्य होगा और यदि वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता है तो उसका फिर से जन्म भी अवश्यम्भावी है। मुक्त हुए बिना कोई मनुष्य एक क्षण भी कोई न कोई कर्म किये बिना नही रह सकता । गीता का केन्द्रीय विषय है '' अपने कर्तव्य का पालन करों, सव फल का अवलम्बन करों, अकर्मण्य मत बनों।'' हिन्दू चिन्तन धारा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य इसलिए जन्मा है, ताकि वह पुनर्जन्म के कर्मों का प्रक्षालन कर सके तथा अपने जीवन में क्रिया कलापों के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सकें।

2.3.3 नियोग

भारतीय इतिहास में नियोग प्रथा वैदिककालीन है। जब पति विहीन स्त्री किसी विशेष पुरूष से सम्बन्ध स्थापित कर विवाह करती थी तब ऐसा विवाह नियोग के नाम से अभिहित किया गया था। वैदिक काल में विवाह पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। ऋग्वेद की एक दाह संस्कार सम्बन्धी ऋचा में अपने मृत पति की चिता से निकल कर बैठी विधवा के लिए यह निर्देश किया गया है कि जिसके पास तुम बैठी हो, वह निजीव है जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा और प्रेम किया, उस पति के प्रति तुम्हारा ''पत्नीत्व'' पूरा हो चुका है। देवर को पति के रूप में वरण करने के लिए विधवा को परामर्श किया गया है।

उत्तर वैदिककालीन अनेक ग्रन्थों में ऐसी पुत्रहीन विधवाओं का उल्लेख है जो पुत्र प्राप्ति के लिए अपने देवर को पति बनाती हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि उसके निकट जाओं जो तुम्हारा हाथ पकडता है और तुम्हें प्रेम करता है। तुम अब उससे पति पत्नी के सम्बन्ध में प्रविष्ट हो चुकी है। इस सम्बन्ध में गौतम का कथन है कि पतिहीन स्त्री यदि पुत्र की कामना करती है तो उसे देवर से प्राप्त करें। मनु ने लिखा है कि सन्तान की इच्छा रखने वाली विधवा मृत पति के भाई अथवा सपिण्ड से गमन कर सकती है। उसके अनुसार नियोग से सन्तान उत्पन्न करने वाली नारी क्षेत्र थी। उसमें नियोग से पैदा होने वाला पुत्र ''क्षेत्रक'' विधवा के मृत पति को क्षेत्रीय या क्षेत्रिक तथा पुत्र उत्पन्न करने के लिए नियुक्त देवर आदि सपिण्ड पुरूष नियोगी है। महाभारत में नारी को पति के अभाव में अपने देवर को पति बनाने का निदेश दिया है। इसी तरह का मत याज्ञवल्क्य, नारद, बौधयन आदि धर्मशास्त्रकारों ने व्यक्त किया है। कभी-कभी रूग्ण अथवा नपुंसक पति के कारण पुत्र की लालसा के लिए स्त्री द्वारा नियोग किया जता था। सम्भोग की दृष्टि से किया गया नियोग निन्दनीय था तथा इससे उत्पन्न पुत्र ''जारज'' कहा जाता था, जिसे सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था। कौटिल्य के अनुसार पुत्रहीन विधवा ब्राहमणी अन्य सगोत्र का मातृ बन्धु पुरूष से सम्बन्ध स्थापित कर क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कर सकती थी, जो उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता था।

महाभारत में नियोग प्रथा को पुत्र प्राप्ति के लिए धर्म सम्मत माना गया है। महर्षि व्यास ने सत्यवती की विधवा पुत्र बधुओं के साथ नियोग किया था। परशुराम ने जब अनेकानेक क्षत्रियों का बध कर डाला तब बहुत सी क्षत्रिय नारियॉ ब्राहमणों के यहॉ पुत्र उत्पन्न करने गई थीं । बौद्ध साहित्य से भी नियोग प्रथा पर प्रकाश पडता है। एक जातक के अनुसार एक राजा के मरने पर उसकी पत्नी ने राया पुरोहित से विवाह कर लिया। उस युग में स्त्रियों की अवस्था नैतिक दृष्टि से अत्यन्त निम्न हो गयी थी। एक स्त्री ने राजा केा उत्तर दिया था, पुत्र तो गोद में है, पति रास्ते रास्ते सुलभ है। इस प्रकार उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में उनका नैतिक पतन हो चुका था तथा उन पर कोई नियन्त्रण और बन्धन हीं रह गया था।

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने समाज की व्यवस्था को सुदृढता और स्वच्छता प्रदान की तथा उसे पतन की ओर अूसर होने से रोका। स्मृतिकारों ने इस प्रथा को सामाजिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त निम्न माना तथा समाज में इसके व्यवहार को निषिद्ध कर दिया। हिन्दू समाज में पतिहीन स्त्री के लिए अनुचरण का जीवन ही श्रेयस्कर और आदर्श माना गया है। व्यावहारिक रूप से भी स्त्री स्वयं नियोग को अस्वीकार करती रही तथा अपना जीवन पूर्णतः धार्मिक और नैतिक मार्ग पर अग्रसर करती रहीं।

2.3.4 आजीविक

भारत में छठी सदी ई0 पू0 के समय जैन और बौद्ध धर्म के समसामयिक आजीवक धर्म का उत्कर्ष हुआ, जिसमें उत्तर भारत के तत्कालीन समाज की अपने सिद्धान्तों और मतों से आजीवक धर्म भी था। इस धर्म के उदय में नन्दवच्छ नामक भिक्षु का प्रधान हाथ था। वैसे मक्खलि गोशाल आजीवक सम्प्रदाय के प्रवर्तक और उन्नायक थे। वे बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। सुमंगल विलासिनी नामक ग्रन्थ से विदित होंता है कि वे दास पुत्र थे। उनका नाम मक्खल गोशाल इसलिए पडा क्योंकि उनके पिता गौशाला में नियुक्त किये गये थे और वहीं गोशाल का जन्म हुआ था। पाणिनि के अनुसार गोशाल परिवा्रजक थे और उनके अनुयायी दैष्टिक। वे महावीर के मित्र भी थे और छह वर्षों तक उनके साथ थे। महावीर और बुद्ध की तरह उन्होंने भी पूर्ववर्ती भिक्षुओं, आचार्यों और उनके सम्प्रदायों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया था। बौद्ध और जैन अनुश्रुतियों से विदित होता है कि गोशाल की मृत्यु बुद्ध की मृत्यु के एक वर्ष पहले 484 ई0पू0 के लगभग हुई थी। आजीवक का अर्थ था जीविका के लिए भिक्षु बनना। इस धर्म का प्रचार प्रसार जैन और बौद्ध धर्म के साथ समाज में होने लगा। साथ ही इस धर्म के सिद्धान्त भी समाज के अन्य वर्ग के लोग मानने लगे जिनका प्रसार पश्चिम में सौराष्ट्र से लेकर पूरब में अंग तक था। कालान्तर में समा्रट अशोक और दशरथ दोनों ने इसके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की, इस धर्म को अपना संरक्षण प्रदान किया तथा आजीविकों को गुहायें प्रदान की। अशोक ने बराबर की पहाडी में इनके लिए गुहाओं का निर्माण करवाया है तथा अपने 7 वें स्तम्भ लेख में अन्य सम्प्रदायों के साथ आजीवक सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया है। मौर्य शासक दशरथ की भी आजीविकों के प्रति

सद्भावना और उदारता थी। उसने नागार्जुनी पहाड़ी में आजीवकों के लिए तीन गुहाएं निर्मित कराई थी। छठी सदी के लेखक वराहमिहिर ने भी आजीवक सम्प्रदाय का वर्णन किया है।

गोशाल की अपने अनुयायियों के लिए शिक्षा थी कि अच्छे या बुरे किसी प्रकार के कर्म का कोई परिणाम नहीं होता। बुराई से मुक्ति मनुष्य को अपने कर्मों से नहीं बल्कि जीवन और मृत्यु से निरन्तर गतिशील चक्र से मिलती है। उनका सिद्धान्त कर्म और कर्मफल दोनों का निराकरण था। वे भाग्यवाद में विश्वास करते थे। उनके अनुसार जीवन नियति के वश में है न उसमें शक्ति है और न ऐश्वर्य। वे अपने बल पर कुछ नहीं कर सकते । वे अकर्मण्य हैं। भाग्य और संयोग से ही उनका जन्म होता है।

आजीवक मतानुयायी नग्न रहा करते थे और एकान्तवास करते थे उनके रहन सहन, आचार विचार जैनियों से मिलते थे, लेकिन बाद में दोनों धर्मों में मतभेद बढ़ता गया। गोशाल ने अपने प्रचार का प्रमुख केन्द्र श्रावस्ती बनाया और विभिन्न स्थानों पर जाकर अपने मत का प्रचार किया। जातकों से विदित होता है कि आजीवक मत का प्रचार सर्वप्रथम मागधी एवं प्राकृत भाषा में हुआ था। परवर्तीकाल में आजीवक सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया, एक उपासक और दूसरा तापस।

महानारद जातक में नियतिवाद की विस्तृत चर्चा मिलती है। आजीवक भिक्षुओं का जीवन कठोर नियम और आचार में बंधा हुआ था। ये बौद्धों और निग्रन्थों की तरह सामुदायिक आधार पर रहा करते थे। विनयपिटक के अनुसार उनके आवास का नाम ''सेम्य'' था। आजीवक शुद्ध और पावन आचार तथा नियम पर आधारित था अघोर और घृणित कार्य के लिए इसमें कोई स्थान नहीं था।

2.3.5 प्रमाणवाद

प्रभाकर के अनुसार प्रमा अनुभूति है। अनुभूति स्वतः प्रकाश होती है। अर्थ की अनुभूति सदा यथार्थ होती है और स्वतः प्रमाण होती है। कुमारिल के अनुसार प्रमा दोषरहित कारण सामग्री से उत्पन्न अवाधित अर्थज्ञान है। प्रमा अज्ञात तथ सत्य पदार्थ का ज्ञान है। प्रमा के कारण को प्रमाण करते हें। पार्थसारथि मिश्र के अनुसार प्रमा को कारण दोषरहित, बाधक ज्ञानरहित, अग्रहीतग्राहि और यथार्थ होना चाहिए। जिस ज्ञान की उत्पन्न करने वाली सामग्री में कोई दोष न हो, जो ज्ञान अन्य ज्ञान द्वारा बाधित न हो, जिस ज्ञान में पूर्व में अज्ञात वस्तु की अनुभूति न हो, जो ज्ञान सत्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो, वह ज्ञान प्रमा है और उसका कारण प्रमाण है।

मीमांसक स्वतः प्रामाण्यवाद को मानते हैं। ज्ञान स्वतः प्रमाण होता है। प्रभाकर और कुमारिल दोनों स्वतः प्रामाण्यवादी हैं। ज्ञान का प्रमाण्य बाहर से नहीं आता। ज्ञान की प्रमाणिकता अन्य ज्ञान से सिद्ध नहीं होती। कुमारिल के अनुसार ज्ञान कारण दोषरहित एवं बाधक ज्ञानरहित सत्य वस्तु का ज्ञान होता है और जो सामग्री इस ज्ञान को उत्पन्न करती है वहीं सामग्री साथ ही इस ज्ञान के प्रामाण्य को भी उत्पन्न करती है। मीमांसकों के अनुसार प्रामाण्य की उत्पत्ति

और प्रामाण्य का ज्ञान दोनों स्वतः होते है। ज्ञान का प्रामाण्य और इस प्रामाण्य का ज्ञान दोनों ज्ञान के साथ ही उदित होते हैं और उसी सामग्री से उत्पन्न होते है जिससे ज्ञान उत्पन्न हेाता है। ज्ञान का अप्रामाण्य ''परतः'' होता हे, बाहर से आता है। लोक व्यवहार ज्ञान को सवतः प्रमाण और यथार्थ मान कर ही चलता है। सत्य सामान्य व्यवहार है, भ्रम असामान्य है, प्रामाण्य स्वाभाविक है, अप्रामाण्य अपवाद है।

प्रामाण्यवाद के विषय में वैचारिक संघर्ष दिखाई देता है। मीमांसक स्वतः प्रामाण्यवादी है और नैयाचिक परतः प्रामाण्यवादी। नैयाचिकों के अनुसार उत्पत्ति के समय ही ज्ञान उत्पन्न होता है। उस समय यह प्रामाण्य और अप्रामाण्य से विरहित तटस्थ रूप में होता है।

न्याय के अनुसार ''यथार्थता'' ज्ञान का स्वरूप है। ज्ञान की यथार्थता के विषय कैसे पता चले? यदि ज्ञान में सफल प्रवृत्ति सामर्थ्य है तो उसमें प्रामाण्य और यदि यह सामर्थ्य नहीं है तो उसमें अप्रामाण्य है। घट ज्ञान के परीक्षण के लिए यदि उसमें पानी भर जाये तो वह घट है अन्यथा घट नहीं है। सफल प्रवृत्ति सामर्थ्य से ज्ञान में प्रामाण्य का अनुदान और असामर्थ्य से अप्रामाण्य का अनुमान किया जता है। ज्ञान को उत्पन्न करने वाली कारण सामग्री के गुण के कारण ज्ञान में प्रामाण्य और कारण सामग्री के दोष के कारण ज्ञान में अप्रामाण्य उत्पनन होता है।

मीमांसकों के अनुसार यदि ज्ञान में स्वतः प्रामाण्य न हो तो ज्ञान कभी भी प्रामाणिक नहीं हो सकता । ज्ञान में स्वतः प्रामाण्य स्वीकार करना अनिवार्य है। कारण गुण, यथार्थता एवं सफल प्रवृत्ति जिनहें न्याय ने प्रामाण्य की उत्पत्ति का कारण माना है, वस्तुतः ज्ञान की कारण सामग्री में अन्तर्मुक्त है। कारण गुण वास्तव में कारण दोष रहितता है। यथार्थता ज्ञान का स्वरूप है। यह कारण सामग्री ज्ञान को उत्पन्न करती है और उसके साथ ही उसके प्रामाण्य को तथा उस प्रामाण्य के ज्ञान केा भी उत्पन्न करती है। ज्ञान को स्वतः प्रमाण माना है एवं ज्ञान को अपरोक्ष अनुभूति स्वीकार किया है।

2.3.6 वेदांग

वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल तथा कठिन था इसे समझना सामान्य बुद्धि से परे था। वेद के अर्थ को सरलता से समझनें तथा वैदिक कर्मकाण्डों के प्रतिपादन में सहायता देने के निमित्त एक नवीन साहित्य की रचना हुई जिसे ''वेदांग'' कहा जाता है। इसकी संख्या छः हैं।

2.3.6.1 शिक्षा

सायण के अनुसार ''जो स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण के प्रकार का उपदेश देते हैं वह विद्या शिक्षा है इसे वेदरूपी पुरूष की नाक कहा गया है। '' प्राचीन युग में वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण तथ स्वरों के ज्ञान का बड़ा महत्व था। पाणिनीय शिक्षा में वर्णित हैं कि 'स्वर' अथवा वर्ण से हीन मन्त्र मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण सही अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। अपितु वह वाकवज्र बनकर यजमान का ही नाश कर डालता है।

2.3.6.2 कल्प

वैदिक यज्ञों की व्याख्या तथा गृहस्थाश्रम के लिए उपयोगी कर्मों के प्रतिपादन करने के निमित्त 'कल्प' नाक वेदांग का प्रणायन हुआ। छोटे छोटे वाक्यों में सूत्र बनाकर सभी महत्वपूर्ण विधि विधानों को प्रस्तुत किया गया। सूत्र ग्रन्थों को ही कल्प कहा जता है। इनकी रचना वैदिक साहित्य के अत्यन्त विस्तृत होने के कारण यज्ञीय नियमों को व्यावहारिक उपयोग के लिए संक्षिप्त बनाने के उद्देश्य से की गयी थी। कल्प सूत्र मुख्यतः चार प्रकार के हैं-

2.3.6.2.1 श्रौत सूत्र

इस सूत्र से यज्ञ के बारे में जानकारी मिलती है। श्रौत सूत्र का एक भाग शुल्व सूत्र हैं, जिसमें यज्ञ वेदियों के नापने आदि का उल्लेख हें। इसी से रेखागणित का प्रारम्भ माना जाता है।

2.3.6.2.2 गृहय सूत्र

इनमें गृहस्थाश्रम से सम्बन्धित धार्मिक अनुष्ठानों तथा कर्तव्यों का वर्णन मिलता है। गृहस्थाश्रम के संस्कारों, यज्ञों आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन इसमें मिलता है। कौशिक गृहम सूत्र में चिकित्सा तथा देवी आपदाओं के निवारण के लिए मंत्र दिये गये है।

2.3.6.2.3 धर्म सूत्र

इसमें सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक कर्तव्यों का विवरण संग्रहीत है। धर्म सूत्र से सामाजिक व्यवस्था जैसे वर्णश्रम, पुरूषार्थ आदिकी जानकारी मिलती है। धर्मसूत्र के प्रणेता आपस्तम्ब माने जाते है। प्रमुख धर्मसूत्रों वशिष्ठ, मानव, आपस्तम्ब, बोधायन, गौतम धर्मसूत्र इन्हीं से आगे चलकर स्मृति ग्रन्थों का विकास हुआ।

2.3.6.3 व्याकरण

व्याकरण का कार्य भाषा को वैज्ञानिक शैली प्रदान करना है। व्याकरण का प्राचीनतम ग्रन्थ पाणिनि कृत अष्टाध्यायी है। पंतजलि ने महाभाष्य और कात्यायन ने कार्तिक लिखा है। शब्दों की मीमांसा करने वाले शास्त्र को व्याकरण कहा गया हे। इसके बाद 7 वीं शताब्दी में गयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर ''काशिका' नामक टीका लिखी गयी।

2.3.6.4 निरूक्त

वेद के कठिन शब्दों का संकलन 'निघण्टु' नामक ग्रन्थ में हुआ है। इन्हीं की व्याख्या करने के लिए चरक ने 'निरूक्त की रचना की थी। निरूक्त के प्रथम आचार्य कश्यप ऋषि हैं। वेद के अर्थ को जानने के लिए निरूक्त का ज्ञान आवश्यक है।

2.3.6.5 छन्द

पद्यों को चरणों में सूत्रबद्ध करने के लिए छनद की रचना की गई है। इसे चतुष्पदीवृत्त भी कहा जाता है। पाणिनीय शिक्षा में छन्दों को ''वेदों का पैर'' बताया गया है। पिंगल द्वारा रचित ग्रन्थ छन्द शास्त्र इसका प्राचीनतम ग्रन्थ है।

2.3.6.6 ज्योतिष

ब्रहाण्ड एवं नक्षत्रों के विषय में भविष्यवाणी ज्योतिष का विषय है। ज्योतिष की सर्वप्राचीन रचना लगधमुनि कृत ''वेदांग ज्योतिष' है। वेदांग ज्योतिष ही भारतीय ज्योतिष शास्त्र का मूलाधार है।

2.3.7 सप्तांग सिद्धान्त

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य को सात अंगों से युक्त संस्था बताया गया है। ये सात अंग हैं, 'स्वामी', 'अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष ,दण्ड और मित्र । राज्य व्यवस्था सम्बन्धी अधिकांश ग्रन्थों में इन सात अंगों का उल्लेख मिलता है। स्वामी का अर्थ है प्रधान या अधिपति। सम्भवतः राजतंत्र और गणतंत्र दोनों के प्रधान को राजा की संज्ञा दी गयी है क्योंकि कौटिल्य ने राजा पर आने वाली विपत्तियों को बताते समय राजा रहित राज्य की कमजोरियों का भी उल्लेख किया है। अभिलेखों में स्वामी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शक अभिलेखों में हुआ है। अर्थशास्त्र के अनुसार स्वामी को अभिजात्य प्रज्ञा, उत्साह तथा वैयक्तिक गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। दूसरा अंग है अमात्य इसका उल्लेख भी सभा ग्रन्थों में इसी रूप में मिलता हैं अर्थशास्त्र में अमात्य एक स्थायी सेवा संवर्ग के सदस्य है। इसी संवर्ग से प्रधान पुरोहित, मंत्री, समाहर्ता, कोषपाल, दीवानी और फौजदारी मामलों की देख रेख के लिए उत्तरदायी अधिकारी अंतःपुर का प्रबन्ध करने वाले अधिकारी, दूत, विभिन्न विभागों के अधीक्षक आदि उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी थी। अमात्य परिषद् पर प्रकाश डालते हुए कौटिल्य मंत्रियों और अमात्यों के अन्तर का ध्यान रखता हैं वह संप्रियों की संख्या तीन या चार तक सीमित रखता है लेकिन अमात्यों के सम्बन्ध में कहता है कि इनकी संख्या इनके नियोक्ता की क्षमता पर निर्भर करती है। देश काल और कार्य की आवश्यकता के अनुरूप किसी को भी अमात्य नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन यह बात मंत्रियों पर लागू नहीं की जा सकती। तीसरा अंग जनपद है। इसका शाब्दिक अर्थ जनजातीय बस्ती है। अर्थशास्त्र में परिभाषित जनपद शब्द का तात्पर्य भू भाग और जनसंख्या दोनों से है। उसमें कहा गया है कि भू भाग में अच्छी जलवायु, प्शुओं के लिए चरागाह और कम मेहनत से अधिक उपज देने वाली भूमि होनी चाहिए। इसमें परिश्रमी कृषक, बुद्धिमान मालिक, निम्न वर्गों की बहुलता प्रजा स्वामिभक्त तथा निष्ठावान होनी चाहिए। कौटिल्य द्वारा उल्लिखित चौथा अंग 'दुर्ग' है। 'दुर्ग' से किले का बोध हेाता हें। कौटिल्य ने दुर्ग विधान में किले के निर्माण पर तथ दुर्ग निवेश में राजधानी की योजना और विन्यास पर प्रकाश डाला है। कौटिल्य के अनुसार राजधानी केन्द्रीय स्थान पर बनाई जानी चाहिए। इसकी योजना बनाने के समय विभिन्न वर्णों के लोगों, कारीगरों और देवताओं के लिए अलग-अलग क्षेत्र छोड़े जाने चाहिए। 'कोष' कौटिल्य के ग्रन्थ और अन्य स्त्रोतों में भी पॉचवें अंग

के रूप में आया है। कौटिल्य के अनुसार राजा को वैध कोश के अभाव में सेना रखना और उ सकी निष्ठा का पात्र बने रहना सम्भव नहीं।

2.3.8 तपस्या

ऋग्वेद के एक उत्तरार्द्रीय मंत्र ब्राहमण से भिन्न पूज्य व्यक्तियों के एक वर्ण का उल्लेख मिलता है। वे व्यक्ति मुनि मौन थे जो वायु को मेखला रूप धारण करते थे और अपने मौन में मग्न पवन परी आरूढ़ हुआ करते थे। एक मुनि, मनुष्य के सभी विचारों से अवगत होता था क्योंकि उसने रूद्र के ऐन्द्रिजालिक पात्र का पान किया है जो सामान्य मानव के लिए गरल है।

अथर्ववेद में एक वर्ग 'वृत्य' का प्रायः उल्लेख हैं 'वृत्य' अवैदिक उर्वरण शक्ति धर्मास्था का पुजारी था जिसमें धार्मिक संस्कार, नृत्य तथा कशाघात सम्मिलित था। उपनिषद काल तक तपस्या का प्रचलन दूर दूर तक हो गया और यज्ञ के रूढिवादी पुरोहित की अपेक्षा तपस्वियों के प्रभाव से नवीन शिक्षाओं का विकास एवं प्रसार हुआ।

कुछ तपस्वी मनोविकृतियों से पीड़ित एकान्तवासी थे जो गहन अरण्यों के गर्भ में निवास करते थे और क्षुधा, आतप, तृषा, शीत तथा वर्षा की स्वयं प्रदत्त यन्त्रणाओं का उपयोग करते थे। अन्य तपस्वी उपनगरीय तपोभूमियों में निवास करते थे और कालान्तर में कुछ अल्प विख्यात मुनियों की तरह वहॉ वह स्वेच्छा वैचित्रपूर्ण आत्मोत्पीड़न में संलग्न रहते थे। ग्रीष्म कालीन सूर्य के नीचे धधकती हुई अग्नि ज्वालाअें के मध्य बैठते कंटकों तथा कीलों की शैयाओं पर लेटते, वृक्ष की शाखाओं से अधाशिर घंटों यहॉ तक कि वे निराहार क्षीण हो जाते थे।

जो भी हो विचारों के नये विकास अधिकांश ऐसे तपस्वियों से आये जिनका आत्मानुशासन अपेक्षाकृत कम कठोर था तथा जिनकी प्रधान क्रियायें ध्यान में मानसिक तथ आध्यात्मिक अभ्यास से सम्बन्धित थीं इनमें से कुछ ग्राम तथा नगरों के उपवर्ति क्षेत्रों में एकाकी रहते औरकुछ कुटियों के समूह में किसी वयस्क के नेतृत्व में निवास करते थे।

तपस्वी के रहस्यात्मक ज्ञान की आध्यात्मिक व्याख्या भिन्न भिन्न सम्प्रदाय भिन्न भिन्न प्रकार से किया करते थे, किन्तु आधारभूत अनुभव एक ही होता था। वह व्याख्या पश्चिमी साधुओं एवं रहस्यवादियों से अधिक भिन्न न थी चाहे वे यूनानी, यहूदी, ईसाई अथवा यवन हो, किन्तु भारतीय रहस्यवाद आनन्दानुभूति के निमित्त अपनी विस्तृत पद्धतियों की दृष्टि से अद्वितीय था और जटिल आध्यात्मिक विधान में उस अनुभव की व्याख्याओं पर आश्रित था। जबकि अन्य धर्मों में रहस्यवाद की महत्ता स्थिर नहीं है, भारत वर्ष के धर्मों में वह सर्वथा मौलिक है। वस्तुतः तप संन्यास दुःखमय एवं असनतोषपूर्ण से पलायन का साधनमात्र नहीं था। इसका सकारात्मक प्रभाव थ। अंशरूप में इसकी प्रेरणा ज्ञान की पिपासा उस पाण्डित्य की पिपासा थी जो चारों वेद मात्र का नहीं वरन् ज्ञान की पिपासा का भी माप था, जिसका अनुभव उस समय किया जा रहा था। भारतवर्ष के लिए यह सम्पूर्णता न्यायोचित नहीं है कि वह अपने पुरातन पाण्डित्य को केवल जीवन का निषेध कहकर उसकी निन्दा करें।

2.3.9 संदेहवाद एवं भौतिकवाद

संभवतः नाचिकेता सर्वप्रथम संदेहवादी था जिसका उल्लेख हमें कठोपनिषद के आख्यान में मिलता है। नाचिकेता यहां मृत्यु के देवता यम से संदेहात्मक प्रश्न करता है कि - मृत मनुष्य की अवस्था के विषय में संदेह मिलता है- कुछ के अनुसार वह है,जबकि कुछ के अनुसार वह नहीं हैं इस प्रश्न पर यमराज कहते हैं कि पहले देवताओं को भी संदेह था,यह ज्ञान सरल नहीं है। स्पष्टतः नाचिकेता अपने युग में प्रचलित संदेहवाद का प्रतिनिधित्व कर रहे था। इसी काल के आसपास हमें अजित केशकंबलिन का उल्लेख मिलता है जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था और भौतिकवाद का प्रवर्तक था।उसका मानना था कि ,दान देने की शिक्षा देनेवाले मूर्ख होते हैं क्योंकि अभौतिक श्रेणियों का अस्तित्व नहीं होता है,शरीर की मृत्यु होती है,और मूर्ख तथा बुद्धिमान दोनों समान रूप् से नष्ट हो जाते हैं,मृत्यु के बाद इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता हैं।हमें ऐतिहासिक काल में अनेक भौतिकवादी संप्रदाय मिलते हैं।इनमें चार्वाक एवं लोकायतिक महत्वपूर्ण थे। भौतिकवादियों का मानना था कि सभी धार्मिक साधनाएं तथा सदाचार शास्त्र व्यर्थ हैं मनुष्य को जीवन में यथासंभव आनंद की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। उनका मानना था कि-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्,ऋण कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात जब तक जीवित रहे मनुष्य को सुख से रहना चाहिए। ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए, क्योंकि शरीर के भस्म हो जाने पर पुनः आगमन कैसे हो सकता है।

2.3.10 आस्तिकवाद

आस्तिकवाद का तात्पर्य ईश्वर के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास से है।यद्यपि हमें अति प्राचीन काल से ही मानव की अलौकिक शक्तियों पर विश्वास के उदाहरण मृण्मूर्तियों एवं गुहाचित्रों के रूप में मिलते हैं। सिंधु सभ्यता में हमें मातृदेवी एवं पशुपति के अलावा अनेक पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों पर श्रृद्धा के उदाहरण मिलते हैं। वैदिककालीन लोग भी प्रकृति की शक्तियों पर आस्था रखते थे, उन्होंने प्रकृति की शक्तियों का मानवीयकरण किया था,लेकिन संगठित रूप से संप्रदाय के रूप में ईश्वर पर पूर्ण विश्वास के उदाहरण हमें सर्वप्रथम भागवत-वासुदेव संप्रदाय और फिर पाशुपत संप्रदाय के रूप में मिलते हैं।आज भी आस्तिक लोग किसी न किसी शक्ति पर विश्वास करते देखे जा सकते हैं।

2.3.11 दण्ड नीति

राजव्यवस्था एवं समाज व्यवस्था को बनाये रखने के लिए दण्ड विधान या दण्ड नीति आवश्यक है। प्राचीन भारत में हमें इसके दर्शन सर्वप्रथम स्मृतिशास्त्रों में मिलते हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर रचित स्मृतियां वस्तुतः कानून की किताबें हैं जिनमें हमें विभिन्न काल-खण्डों में प्रचलित दण्डविधियों एवं दण्डों के स्वरूप की जानकारी मिलती है। स्मृतियों में हमें वर्ण के आधार पर दण्ड निर्धारण का प्रावधान मिलता है। राज्य-न्यायालयों के

अलावा पंचायतों का उल्लेख भी मिलता है जो झगड़ों का निर्णय करने के साथ-साथ छोटे-छोटे अपराधों का निबटारा भी करती थीं।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. मनु के अनुसार हमारे सम्पूर्ण कर्म मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होता है(सत्य/असत्य)
2. मौर्य शासक दशरथ ने नागार्जुनी पहाड़ी में आजीवकों के लिए तीन गुहाएं निर्मित कराई थी(सत्य/असत्य)
3. न्याय के अनुसार ''यथार्थता'' ज्ञान का स्वरूप है(सत्य/असत्य)
4. गृह्य सूत्र का एक भाग शुल्व सूत्र हैं(सत्य/असत्य)
5. ब्रहाण्ड एवं नक्षत्रों के विषय में भविष्यवाणी निरूक्त का विषय है(सत्य/असत्य)
6. अर्थशास्त्र में राज्य को आठ अंगों से युक्त संस्था बताया गया है(सत्य/असत्य)

2.4 साराशं

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप सप्त सैन्धव, दशराज्ञ युद्ध, भारतवर्ष, पंचजन, हरयूपिया, दिलबन तथा मकन,बोगजकोई, मातृदेवी, सभा- समिति, यज्ञ, श्रुति ,स्मृति आदि के बारें में प्रर्याप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंली प्रकार समझ सकते है।

2.5 तकनीकी शब्दावली

जातक- महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित कहानियां

नियति- भाग्य

चतुष्पदी - चार पैरों वाला

सप्तांग - सात अंग वाला

2.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 2.3.12.2 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य

भाग 2.3.12.2 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य

भाग 2.3.12.2 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य

भाग 2.3.12.2 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य

भाग 2.3.12.2 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य

भाग 2.3.12.2 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।

के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

2.8 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3rd edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपरोक्त इकाई के आधार पर भारतीय दर्शन पर प्रकाश डालिए।

इकाई तीन

धर्म विजय, स्तूप ,चैत्य,नीतिशास्त्र, धर्मसूत्र, तमिल संगम, पाली ,प्राकृत, लौकिक संस्कृत, यवन, बोधिसत्व, तीर्थंकर, तमिलाहम, हलदण्ड

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 संकल्पनाए विचार तथा शब्दावली

3.3.1 धर्मविजय

3.3.2 स्तूप

3.3.3 चैत्य

3.3.4 नीति शास्त्र

3.3.5 धर्मसूत्र

3.3.6 तमिल संगम

3.3.7 पाली

3.3.8 प्राकृत

3.3.9 लौकिक साहित्य

3.3.10 यवन

3.3.11 वोधिसत्व

3.3.12 तीर्थंकर

3.4 सारांश

3.5. तकनीकी शब्दावली

3.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में हमें विभिन्न साहित्यिक, पुरातात्विक एवं धार्मिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इस साक्ष्यो से माध्यम से ही हम प्राचीन भारत की कला, समाज, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक

जीवन, धार्मिक जीवन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन साक्ष्यो के माध्यम से हमें यह भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार भारतीय समाज में कला, संस्कृति, व्यापार-वाणिज्य, कृषि आदि का क्रमिक विकास सम्भव हो सका।

प्राचीन भारतीय समाज में अनेक परम्पराएं विचार एवं रीतियाँ प्रचलित थी जो उस समय के समाज के विविध पक्षो के उत्थान के विषय में जानकारी प्रस्तुत करती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए उस समय के समाज में व्याप्त विभिन्न संकल्पनाओं विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में आप प्राचीन भारतीय शासको, समाज, कला धर्म, संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते है। इस पाठ में इसी बात को ध्यान में रखकर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भलीभाँति अध्ययन कर पायेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस पाठ/इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राचीन में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाओं, विचार एवं शब्दावली के ज्ञान से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रकिंत के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न संकल्पनाए।
2. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न विचार
3. प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न शब्दावली

3.3 संकल्पनाए विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

3.3.1 धर्मविजय

तेरहवें शिलालेख में धर्म-विजय की चर्चा करते हुए अशोक कहता है कि देवताओं का प्रिय 'धम्म विजय' को सबसे मुख्य विजय समझता है। यह विजय उसे अपने राज्य में तथा सब सीमान्त प्रदेशों में छह सौ योजन तक जिसमें अन्तियोक नामक यवन राजा तथा अन्य चार राजा तुरमय, अन्तिकिन, मग और अलिक सुन्दर है तथा दक्षिण की ओर चोल, पाण्डय और ताम्रपर्णि तक में प्राप्त हुई है। उसी तरह यहाँ राजा के राज्य में यवनों और कम्बोजों में, नभ पक्तियों और नाभक में, वंशानुगत मानते है। जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते, वहाँ भी लोग धर्मा देशों और धर्म विधान को सुनकर धर्मा चरण करते है और करते रहेंगे। इस प्रकार प्राप्त विजय सर्वत्र प्रेम से सुरभित होती है। वह प्रेम धर्म विजय से प्राप्त होता है। पर वह तुक्ष वस्तु है। देवताओं का प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ा समझता है। यह धर्म लेख इसलिए लिखवाया गया ताकि मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र नये देश विजय करने की इच्छा त्याग दे और जो विजय सिर्फ तीर से प्राप्त हो सकती है उसमें भी वे सहिष्णुता तथा मृत्युदण्ड का ध्यान रखे और वे धर्म विजय को ही वास्तविक

विजय समझे। यह इहलोक तथा परलोक दोनों के लिए मंगलकारी है। निःसन्देह अशोक की धम्मविजय सम्बन्धी उपर्युक्त अवधारणा ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों की एत्दविषयक अवधारणाओं से भिन्न है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, महाभारत, कालिदास के रघु वंश आदि में धर्म-विजय का जो विवरण प्राप्त होता है उससे यह स्पष्ट है कि यह एक निश्चित साम्राज्यवादी नीति थी। ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों की धम्म विजय का तात्पर्य राजनैतिक है। इसमें धर्म विजयी शासक का राजनैतिक प्रभुत्व उसके प्रतिद्वन्दी स्वीकार करते है। वह अधीन राजाओं से उपहारदि लेकर ही संतुष्ट हो जाता है तथा उसके राज्य अथवा कोष के ऊपर अधिकार नहीं करता। समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ विजय तथा हर्ष की सिन्ध विजय को इसी अर्थ में धर्म विजय कहा गया है।

कालिदास ने रघु वंश में रघु की धर्म विजय के प्रसंग में बताया है कि उसने महेन्द्र नाथ की लक्ष्मी का अधिग्रहण किया, उसके राज्य का नही। बौद्ध साहित्य में भी हम धर्म विजय का स्वरूप राजनैतिक ही पाते है। अन्तर मात्र यह है कि बौद्ध धर्म-विजयी युद्ध अथवा दबाब के स्थान पर अपनी उत्कृष्ट नैतिक शक्ति द्वारा सार्वभौम साम्राज्य का स्वामी बन जाता है। विजित शासक उसकी प्रभुसत्ता को स्वीकार करते हुए उसके सामन्त वन जाते है। उसकी विजय तथा साम्राज्य वास्तविक होते है। यद्यपि उसका स्वरूप मृदु तथा लोकोपकारी होता है। किन्तु अशोक की 'धम्म विजय' इस अर्थ में कदापि नहीं की गयी। तेहरवें अभिलेख में अशोक यह दावा करता है कि उसने अपने तथा अपने पड़ोसी राज्यों में 'धम्म विजय' प्राप्त किया है। अर्थ मात्र यही है कि उसने स्वदेशी तथा विदेशी राज्यों में धम्म विजय का प्रचार किया तथा धम्म प्रचार को उन राज्यों में सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार 'धम्म विजय' शुद्ध रूप से धम्म प्रचार का अभियान थी। यह भी उल्लेखनयी है कि अशोक स्वयं अपने राज्य में भी धर्म-विजय करने का दावा करता है। यदि इसका स्वरूप राजनैतिक होता तो उसके द्वारा इस प्रकार के दावे का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि उसके साम्राज्य पर उसका पूर्ण अधिकार था।अतः स्पष्ट है कि अशोक की 'धम्म विजय' में युद्ध अथवा हिंसा के लिए कोई स्थान नही था।

3.3.2 स्तूप

महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियों को आठ भागों में बाँटा गया तथा ऊपर समाधियों का निर्माण किया गया। सामान्यतः इन्ही को 'स्तूप' कहा जाता है। स्तूप के निर्माण की प्रथा बुद्ध काल के पूर्व की है। 'स्तूप का शब्दिक अर्थ होता है। 'ठेर' या 'चूहा'। चूँकि यह चिता के स्थान पर बनाया जाता था, अतः इसका एक नाम 'चैत्य' भी हो गया। 'स्तूप' का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है, जहाँ अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को स्तूप कहा गया है। बुद्ध के पहले ही स्तूप का सम्बध महापुरूष के साथ जुड़ गया था। ऐसा लगता है कि अपने मौलिक रूप में स्तूप का सम्बन्ध मृतक संस्कार था। शव-दाह के बाद बची हुई अस्थियों को किसी पात्र में रख कर मिट्टी से ढक देने की प्रथा से 'स्तूप' का जम्न हुआ, कालान्तर में बौद्धो ने इसे अपनी संघ पद्धति में अपना लिया।

सात वाहन सम्राटों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति से दक्षिण भारत में बौद्ध कला को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। इस समय नये स्तूपों का जीर्णोद्धार किया गया। उस समय के स्तूपों में अमरावती का स्तूप सर्वाधिक प्रसिद्ध था। दुर्भायवश अब यह स्तूप अपने मूल स्थान से नष्ट हो गया है, तथा इसके अवशेष कलकत्ता, मद्रास एवं लन्दन के सग्रहालयों में सुरक्षित है। सर्वप्रथम 1879 ई0 में कर्नल मैकेंजी को इस स्तूप का पता चला था। उन्होंने यहाँ से प्राप्त शिलापट्टों तथा मूर्तियों के सुन्दर रेखा चित्र तैयार किये थे। 1840 ई0 में इलियट द्वारा स्तूप के एक भाग की खुदाई की गई जिसमें कई मूर्तियाँ प्राप्त हुई। अमरावती स्तूप की न केवल वेदिका ही संगमरमर की थी, अपितु गुम्बद भी संगमरमर की ही पटियाओं से जड़ा गया था। गुम्बद के शीर्ष पर एक मंजूषा थी जिसके ऊपर लौह-छत्र लगा था। अनुमान किया जाता है कि स्तूप काफी बड़े आकार का रहा होगा। वेदिका स्तम्भों को ईट की चौकियों पर स्थापित किया गया था।

इन स्तूपों में बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों की धातु रखी जाती थी। अतः वे बौद्धों की श्रद्धा और उपासना के प्रमुख केन्द्र बन गये।

स्तूप चार प्रकार के बतायें गये है-

1. शारीरिक - इसमें बुद्ध तथा उनके शिष्यों की अस्थियां तथा उनके शरीर के विविध अंग (दन्त, नख्, केश, आदि) रखे जाते थे।
2. पारभौगिक - इनमें बुद्ध द्वारा उपयोग में लाई गयी वस्तुऐं (भिक्षा पात्र, चरण-पादुका, आसन आदि) रखी जाती थी।
3. उद्देशिक - इनमें वे स्तूप आते थे जिन्हें महात्मा बुद्ध के जीवन का घटनाओं सें सम्बन्धित अथवा उनकी मात्रा से पविल हुए स्थानों पर स्मृति रूप में निर्मित किया जाता था। ऐसे स्थान बोधगया, लुम्बिनी, सारनाथ, कुशीनगर आदि है।
4. संकल्पित - ये छोटें आकार के होते थे और इन्हें बौद्ध तीर्थ स्थलों पर श्रद्धालुओं द्वारा स्थापित किया जाता था। बौद्ध धर्म में इसे पुण्य का काम बताया गया है।

'स्तूप' का प्रारम्भिक रूप अर्द्ध गोलाकार मिलता है। इसमें एक चबूतरे (मेधि) के रूप उल्टे कटोरे की आकृति का एक थूहा बनाया जाता है जिसे 'अंड' कहते है। स्तूप की चोटी सिरे पर चपटी होती थी जिसके ऊपर धातु-पात्र रखा जाता था। इसे 'हर्मिका' कहते है। यह स्तूप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता था। हर्मिका का अर्थ देवसदन अथवा देवताओं का निवास स्थान होता है। हर्मिका के बीच में एक 'यष्टि' लगाई जाती थी। यष्टि के ऊपरी सिरे पर तीन 'छत्र' लगाये जाते थे। स्तूप को चारों ओर से बाड़ अथवा दीवाल से घेर दिया जाता था। इसे 'वेदिका' कहते है। स्तूप तथा वेदिका के बीच परिक्रमा करने के लिए जो खाली स्थान होता था उसे 'प्रदक्षिणापथ' कहा जाता था। कालान्तर में वेदिका के चारों दिशाओं में प्रवेशद्वार बनाये गये। प्रवेशद्वार पर मेहरावदार 'तोरण' बनाये जाते थे। इस प्रकार मेधि,

वेदिका, अण्ड, प्रदक्षिणापथ, हर्मिका, यष्टि, छत्र, तोरण आदि स्तूप वास्तु के प्रमुख अंग होते थे। बी0एस अग्रवाल ने स्तूप को त्रिलोक का प्रतीक बताया है अशोक के समय में स्तूपों का विस्तार पूरे देश में किया गया।

बौद्ध परम्परा में अशोक को 84 हजार स्तूपों के निर्माण का श्रेय प्रदान करती है। सातवीं शताब्दी ई0 के चीनी यात्री हुएनसांग ने तक्षशिला, श्रीनगर, थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, कौशम्बी, श्रावस्ती, वाराणसी, सारनाथ, बैशाली, गया, कपिलवस्तु आदि स्थानों में इन स्तूपों को देखा था। परन्तु दुर्भाग्यवश आज ये सभी नष्ट हो चुके है। प्रारम्भिक स्तूपों में साँची का स्तूप समूह प्रसिद्ध है। साँची की पहाड़ी, मध्य प्रदेश के रायसेन जिला मुख्यालय से 25 किमी0 की दूरी पर ऐतिहासिक नगरी 'विदिशा के समीप स्थित हैं।

3.3.3 चैत्य

बौद्ध मन्दिरों को 'चैत्य' की संज्ञा दी गयी। यह मूलतः बौद्धों का पूजा का स्थान होता था। चैत्यों के पास में ही विद्वारों को निर्मित किया जाता था जिसमें बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। और चैत्यों में पूजा उपासना करते थे। इसकी आकृति वृत्तापत होती थी, अर्थात आरम्भ का भाग आयताकार और अन्तिम अर्द्धवृत्ताकार होता था। अर्द्धवृत्त भाग में ऊपरी छत के गर्भ सूत्र के ठीक मध्य बिन्दू के नीचे चट्टान में कटाव करके ठोस अण्डाकृति स्तूप की रचना की जाती थी। अन्य स्थानों की तरह स्तूप में चतुरावलि हर्मिका और सुविधानुसार एक या दो वेदिकाओं का अलंकरण बनाया जाता था। स्तूप को 'चैत्य' भी कहते थे, बीच के लम्बे मण्डप में पूजा-पाठ और संगति के लिए भिक्षु एकत्र होते थे और दोनों ओर के प्रदक्षिणा पथ में चलकर चैत्य की परिक्रमा करते थे। यह प्रदक्षिणा पथ मण्डप के खम्बों और चैत्य ग्रह की पाषाण भित्ति के बीच का मार्ग था जो स्तूप के पीछे से घूमता था। स्तूप वाला भाग मन्दिरो के गर्भग्रह के समान था और स्वयं देवमूर्ति के तुल्य। इस प्रकार मण्डप और प्रदक्षिणापथ को मिलकार इन बौद्ध चैत्य ग्रहों में और कालान्तर में ब्राह्मण देवालपों में वास्तु-विन्यास की अदभुत समानता थी। बीच का मण्डप देखने में विशाल और भव्य जान पड़ता था। उसके दोनों ओर के ऊँचे खम्बों पर ढोलाकार छत टिकी रहती थी। यद्यपि चट्टानी कटाव में इस प्रकार के पांवो का विशेष प्रयोजन न था, क्योकि पहाड़ी छत स्वयं अपने बल पर टिकी रहती थी। पर कहीं-कहीं तो इससे भी आगे बढ़कर गोल छत के नीचे लकड़ी की बड़ी-बड़ी गोल धन्निया लगाई जाती थी। उन्हें देखकर उन कर्मान्तिको के अमित धैर्य और तक्षण का कुछ अनुमान होता है। इन गुफाओं में रहने वालो के समाने पानी की समस्या थी। इसके लिए पहाड़ के ऊपरी ढलानों से मोटी-मोटी सलिलान्तर नालियाँ का एक जाल सा बिछाकर जगह-जगह पानी की छोटी धार या मूल ले जाते थे और उस जल को गुफा के पास चट्टान में द्रोणि काट कर एकत्र करते थे। इन नालियों को पानीय पणाडी और संग्रह की गहरी द्रोणियाँ को लेखों में परनीयपोढि कहा गया।

3.3.4 नीति शास्त्र

नीतिशास्त्र के विषय के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है कि उसकी विषय वस्तु क्या है? वस्तुतः विषय वस्तु उस निश्चित सीमा से सम्बन्धित है जिसके अन्दर रहकर हम वास्तव में कोई अध्ययन करते है। इस प्रकार विषयवस्तु हमारे अध्ययन की वास्तविक सीमा है। नीतिशास्त्र की वास्तविक सीमा के अर्न्तगत वैसी समस्याओं या विषयों का विचार होता है जिसमें मानव आचरण के आदर्श की मीमांसा होती है। मानव आचरण का आदर्श नैतिक चेतना है। अतः मनुष्य की नैतिक चेतना सम्बन्धी जितनी बाते है सभी नीतिशास्त्र का विषय है। इसके अर्न्तगत मनुष्य के कर्त्तव्य, उसके कर्मो के औचित्य-अनौचित्य अर्थात उचित-अनुचित का निर्णय सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म इत्यादि का विचार भी नैतिक चेतना के अर्न्तगत किया जाता है।

प्राचीन वैदिक काल के दर्शन से समकालीन भारतीय दर्शन तक नैतिक चिन्तन की जो धारा निरन्तर चली आ रही है उसमें एक ओर भारतीय दार्शनिक, वेद, उपनिषद, और गीता के दर्शन को सनातन मानकर अपने विचारों को उसकी व्याख्या मात्र ठहराते है तो दूसरी ओर उन्होंने प्राचीन दर्शन को देश और काल के अनुरूप नवीन रूप में उपस्थित किया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वेदों से लेकर आज तक नैतिक चिंतन पर विहंगम दृष्टि डालने से ऐसा मालूम पड़ता है कि नैतिक चिन्तनधारा में यद्यपि क्रान्तिकारी परिवर्तन होते आये, फिर भी अधिकांश विचार सनातन ही रहे है। भारतीय नैतिक चिन्तन की पृष्ठभूमि विभिन्न परिवर्तनों के बावजूद एक सी ही रही है। इस विकास की तुलना मानव जीवन के शारीरिक तथा मानसिक विकास से की जा सकती है जिस पर मानव में कालक्रम से बहुमुखी विकास होने पर भी उसमें कुछ मौलिक समानता रह जाती है। पाश्चात्य से भिन्न भारतीय नीति शास्त्र की यह विशेषता रही है नये विचारों में उद्भव होने पर भी प्राचीन विचार पूर्णतः नष्ट नहीं हुए है। यहाँ तक कि पुराने विचारों ने नये विचारों के आने तक उनका विरोध नही किया और न ही उनमें विकास कार्य को ही अवरूद्ध किया। इस तरह के त्याग एवं सहिष्णुता की भावना भारतीय नीति एवं धर्म को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। अस्तु यह कहना उचिन नहीं होगा भारतीय नीतिशास्त्र पूर्णत्या परम्परावादी है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य की तुलना में वह आधुनिकता वादी कम और परम्परावादी अधिक है। भारतीय नीति में ऐतिहासिक विकास में क्रमशः, वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, धर्मसूत्र और स्मृतियाँ, रमायण, महाभारत, गीता, योग वशिष्ट, पुराण, आस्तिव एवं नास्तिक दर्शनों, नीति ग्रन्थों जैसे शुक्रनीति, चाणक्य नीति, कामंदकीय नीति और नीतिशतक आदि मध्यकालीन संतों की वाणिया उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों और बीसवीं शताब्दी के आधुनिक चिन्तकों को सम्मिलित किया जा सकता है।

3.3.5 धर्मसूत्र

इस सूत्र साहित्य में राजनीति, विधि एवं व्यवहार से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन किया है। सामान्यतः सातवीं या छठीं शताब्दी ई0पू0 से लेकर तीसरी शताब्दी ई0पू0 तक का समय 'सूत्रकाल' कहा जा सकता है। सूत्रों में

गौतम धर्मसूत्र सबसे प्राचीन माना गया है। धर्मसूत्र में केवल राजतंत्र का ही उल्लेख पाया जाता है। क्योंकि वे इसी व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे राज्य को एक धार्मिक संस्था के रूप में देखते है। जिनमें राजा एवं प्रजा दोनों दैवी इच्छानुसार अपना-अपना कार्य करते है। धर्म सूत्रों में राजा की निरंकुशता पर रोक लगायी गयी है। उनका कथन है कि अत्याचारी राजा इहलोक एवं परलोक दोनों में दण्ड पाता है। अतः राजा का कर्त्तव्य है कि वह जातियों तथा वर्गों की न्यायपूर्वक रक्षा करे। सूत्रकाल में धर्म ही राजा की सत्ता का नियामक था, सभा या समिति जैसी कोई संस्था नहीं थी। सम्राट कानूनों का निर्माता नहीं, बल्कि उसका पालक था। वह प्रजा से अपनी सेवाओं के बहले में 'कर' लेता था। जो उसकी वृत्ति थी। बौद्धायन के अनुसार 'कर' राज्य की आय का छठा भाग होना चाहिए। वशिष्ठ के अनुसार राजा अपनी प्रजा से वैधानिक करों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का धन ग्रहण करने का अधिकारी नहीं है। 'कर' को राजा की वृत्ति कहा गया है।

सम्राट ब्राह्मण पुरोहित की सलाह पर कार्य करता था। प्रशासन में ब्राह्मणों का सर्वोच्च सम्मान था। गौतम के अनुसार राजा तथा वेदज्ञ ब्राह्मण ये दोनों संसार की नीति व्यवस्था के नियामक है। यह भी कहा गया है कि राजा सभी का स्वामी होता है कि ब्राह्मण का नहीं। पुरोहितों के अतिरिक्त प्रसिद्ध ब्राह्मणों की एक परिषद भी होती थी जो धार्मिक, राजनैतिक एवं न्याय सम्बन्धी मामलों में राजा को सलाह देती थी। राजपद आनुवंशिक होते थे। राजा शुद्ध एवं पवित्र चरित्र वाले प्रथम तीन जाति के व्यक्तियों में से अधिकारियों के एक संघ की नियुक्ति करता था। ये अधिकारी अपने अधीन अधिकारियों के एक संघ की नियुक्ति करते थे, जिनका मुख्य काम नगरों तथा ग्राम की चोरों से रक्षा करना था। गौतम तथा आपस्तम्ब ने यह व्यवस्था दी, कि यदि किसी व्यक्ति के चीरी गये माल का पता नहीं लगा पाये, तो राज्य का यक कर्त्तव्य है कि वह उसकी क्षतिपूर्ति करें। शासन का एक प्रमुख विभाग का संग्रह करने के लिए होता था। गौतमसूत्र में करो की एक लम्बी सूची मिलती है। कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं, व्यापार-वाणिज्य की वस्तुओं, आयात निर्यात की वस्तुओं, पशुओं, फलों, दवाओं आदि सभी पर कर लगते थे। शिल्पियों तथा श्रमिकों को जो कर नहीं दे सकते थे माह में एक दिन राज्य के लिये 'विष्टि' (बेगार) करना पड़ता था। गौतम के अनुसार विल्टि के बदले वे राज्य से भोजन पाने के अधिकारी थे। विद्वान, ब्राह्मण, अनाथ स्त्रियाँ, विद्यार्थी, सन्यासी, वृद्ध आदि राजकीय करों से मुक्त थे। युद्धों में सम्राट स्वयं सेना का नेतृत्व करता था। ग्राम शासन की प्रारम्भिक इकाई थी। ग्रामणी गाँव का मुख्याँ होता था जो युद्ध के समय सैनिक एवं शान्ति के समय नागरिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करता था। यह स्पष्ट नहीं है कि वह राजा द्वारा नियुक्त पदाधिकारी था अथवा ग्रामीण जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता था। उसकी सहायता के लिये अन्य पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है। 'स्थपित' नामक अन्य अधिकारी का उल्लेख मिलता है। यह कार्यपालिका एवं न्याय सम्बन्धी मामलों का अध्यक्ष होता था।

सूत्रकाल में ही विकसित न्याय प्रणाली का चित्र देखने को मिलता है। वेद, स्मृति, विद्वानों के आचरण ही विधि के स्रोत माने गये है। न्याय करते समय विविध जातियों एवं कुलों की प्रथाओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि का पूरा ध्यान रखा जाता था। राजा ही मुख्य न्यायधीश होता था अपराधियों को उचित दण्ड देना उनका पवित्र कर्त्तव्य था। राजा न्याय के लिये अन्य पदाधिकारियों को भी नियुक्त करता था। गूढ़ मामले परिषद को सौपे जाते थे। सूत्रकार कठोर दण्डों के समर्थक है। किन्तु सूत्र कालीन न्याय व्यवस्था वर्ग भेद पर आधारित थी। एक ही अपराध में 'शूद्र' के लिए कठोर दण्ड तथा 'द्विज' के लिए साधारण दण्ड की व्यवस्था का।

3.3.6 तमिल संगम

तमिल संगम साहित्य के अध्ययन से हम ईसा की अरम्भिक शताब्दियों के सुदूर दक्षिण की सभ्यता का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेते है। जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस युग के राज्य परस्पर सघर्ष में उलझे हुए थे। उनकी शासन व्यवस्था का जो कुछ भी विवरण प्राप्त होता है इससे स्पष्ट है कि इस युग के राज्य परस्पर संघर्ष में उलझे हुए थे। इस युग में वशांनुगत राजतंत्र का ही प्रचलन था। इसमें राजा की शक्ति सर्वोच्च होती थी। उसके अधिकार तथा शक्तियाँ असीमित थी। इस प्रकार सिद्धान्त रूप से वह निरंकुश था। किन्तु व्यवहारिक तौर पर उसकी निरंकुशता पर कुछ रोक लगायी गयी। उसे परम्परागत नियमों का पालन करना पड़ता था उसके बुद्धिमान मंत्री तथा दरबारी कविगढ़ उसे निरंकुश होने से बचाते थे। संगम कालीन कवियो ने राजा के सदाचरण एवं नैतिकता पर बल दिया है। उसके नैतिक चरित्र का प्रजा अनुकरण करती थी। राजा प्रजाहित को सर्वोच्च प्राथमिकता देता था। राजा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपनी प्रजा के साथ पुत्रवत व्यवहार करे तथा उनके सुख-दुःख का सदा ध्यान रखे। तमिल संगम में उसे धर्म, साहित्य, कला आदि को संरक्षण प्रदान करने की सलाह दी गयी है।

तमिल संगम युग में उत्तराधिकार का नियम स्पष्ट नहीं था। इसके लिए युद्ध हुआ करते थे। कभी-कभी एक साथ कई शासक शासन करते थे। शासन कार्यों में राजा ब्राह्मणों की सहायता प्राप्त करता था।

तमिल संगम युग में कृषि तथा व्यापार-वाणिज्य दोनों ही विकसित अवस्था में थे, अतः राज्य की आय का मुख्य साधन इन्हीं पर लगायें जाने कर थे। भूमिकर नकद तथा अनाज दोनों रूपों में अदा किया जाता था। संभवतः यह उपज का छठवाँ भाग होता था।

तमिल संगम में न्याय व्यवस्था के विषय में भी कुछ ज्ञात होता है। राजा देश का प्रधान न्याय धीश तथा सभी प्रकार के मामलों की सुनवाई की अन्तिम अदालत होता था।

3.3.7 पाली

पाली एक बौद्ध कालीन भाषा है, जो बुद्ध धर्म से सम्बन्धित है। बौद्ध ग्रन्थों में ''त्रिपिटक'' सबसे महत्वपूर्ण है। बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी शिक्षाओं को संकलित कर तीन भागों में बाँटा गया। इन्हीं को त्रिपिटक कहते है। जो पाली

भाषा में लिखे गये। ये है- विनय पिटक (सघं सम्बन्धी नियम तथा अचार की शिक्षाये), सुत्त पिटक (धार्मिक सिद्धान्त अथवा धर्मोपदेश) तथा अभिधम्मपिटक (धार्मिक सिद्धान्त)। इसके अतिरिक्त निकाय तथा जातक आदि से भी हमे पाली भाषा की साम्रगी उपलब्ध होती है। पाली भाषा में लिखें गये बौद्ध-ग्रन्थों को प्रथम शताब्दी ई0पू0 का माना जाता है। त्रिपिटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बौद्ध सघों के संगठन का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते है। निकायों में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त तथा कहानियों का संग्रह है। जातको में बुद्ध के पूर्वजन्मो की कहानी है। कुछ पाली जातक ग्रन्थों से बुद्ध के समय की राजनीतिक अवस्था का परिचय भी मिलता है। इसके साथ ही साथ ये समाज और सभ्यता के विभिन्न पहलुओं के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते है। दीपवंश तथा महावंश नामक दो पाली ग्रन्थों से मौर्य कालीन इतिहास के विषय में सूचना मिलती है। 'पाली' भाषा का एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ नागसेन द्वारा रचित ''मिलिन्दपण्हों'' (मिलिन्द प्रश्न) है जिससे हिन्द यवन शासक मेनाण्डर के विषय में सूचना में मिलती है। इनके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में लिखे गये अन्य कई बौद्ध ग्रन्थ भी है जो बौद्ध धर्म के दोनों सम्प्रदायों से सम्बन्धित है। हीनयान का प्रमुख ग्रन्थ 'कथावस्तु' है जिसमें महात्मा बुद्ध का जीवनचरित अनेक कथानकों के साथ वर्णित है। महायान सम्प्रदाय के ग्रन्थ 'ललित विस्तार' दिव्यवदान आदि है। ललित विस्तार में बुद्ध को देवता मानकर उनके जीवन तथा कार्यों का चमत्कारिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जो यह सभी पाली भाषा में लिखा गया था।

3.3.8 प्राकृत

प्राकृत भाषा सातवाहन काल में दक्षिण भारत में बोली जाती थी यह सातवाहनों की राष्ट्रभाषा थी। सातवाहनों के अभिलेख इसी भाषा में लिखे गये है। यह भाषा जन सामान्य में लोक प्रिय थी। अतः शासकों द्वारा अपने अभिलेख को इसी भाषा में अंकित करवाना सर्वोपरि समझा गया।

सातवाहन नरेश स्वयं विद्वान, विद्या-प्रेमी तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। 'हाल' नामक राजा एक महान कवि था जिसने 'गाथासप्तशती' नामक प्राकृत भाषा के श्रंगार रस प्रधान गीतिकाव्य की रचना की थी। इससे कुल 700 आर्या छन्दों का संग्रह हैं। जिसका प्रत्येक पद्य मुक्तककाव्य का प्राचीनतम उदाहरण है। हाल के दरबार में गुणाढ़य तथा शर्ववर्मन जैसे उच्चकोटि के विद्वान निवास करते थे। गुणाढ़य ने वृहत्तकथा नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह मूलतः पैशाची प्राकृत में लिखा गया था, तथा इसमें करीब एक लाख पद्यों का संग्रह था। परन्तु दुर्भाग्य-वस यह ग्रन्थ आज हमें अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं है। इस ग्रन्थ में गुणाढ़य ने अपने समय की प्रचलित अनेक लोक-कथाओं का संग्रह किया। अनेक अद्भुत यात्रा विवरणों तथा प्रणय प्रसंगों का विस्तृत विवरण मिलता है। शर्ववर्मन ने 'कातन्त्र' नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की थी। वृहत्तकथा के अनुसार 'कातन्त्र' की रचना का उद्देश्य हाल को सुगमता से संस्कृत सिखाना था। इसकी रचना अत्यन्त सरल शैली में हुई। इसमें अति संक्षेप में पाणिनीय व्याकरण के सूत्र का संग्रह हुआ है। 'प्राकृत' भाषा के चिन्ह छठी शताब्दी ई0पू0 से प्राप्त होने लगते है। चन्द्र गुप्त मौर्य का शासन काल में भी दक्षिण भारत में यह

भाषा लोकप्रिय मानी गयी थी। अशोक अभिलेखों से प्राकृत भाषा के दक्षिण भारत में लोकप्रिय होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

3.3.9 लौकिक साहित्य

लौकिक साहित्य के अन्तर्गत ऐतिहासिक एवं अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा जीवनियों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। जिसमें भारतीय इतिहास जानने में काफी मदद मिलती है।

ऐतिहासिक रचनाओं में सर्वप्रथम उल्लेख 'अर्थशास्त्र' का किया जा सकता है जिसकी रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ कौटिल्य (चाणक्य) ने की थी। मौर्यकालीन, इतिहास एवं राजनीति के ज्ञान के लिए यह ग्रन्थ एक प्रमुख स्रोत है। इससे चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों को सातवीं आठवीं शताब्दी ई0 में कामन्दक ने अपने ''नीतिसार'' में संकलित किया, इस संग्रह में दसवीं शताब्दी ई0 के राजत्व सिद्धान्त तथा राजा के कर्त्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है। ऐतिहासिक रचनाओं में सर्वाधिक महत्व कश्मीरी कवि कल्हण द्वारा विरचित ''राजतरंगिणी'' का है। यह संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रथम प्रयास है। इसमें आदिकाल से लेकर 1151 ई0 के आरम्भ तक के कश्मीर के प्रत्येक शासक के काल की घटनाओं का क्रमानुसार विवरण दिया गया है। कश्मीर की ही भाँति गुजरात से भी अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ प्राप्त होते है। जिनमें सोमेश्वर कृत रसमाला तथा कीर्ति कौमदी मेरूतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणी, राजशेखर कृत प्रबन्धकोष आदि उल्लेखनीय हे। इनसे हमें गुजरात के चालुम्य वंश का इतिहास तथा उसके समय की संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार सिन्ध तथा नेपाल से भी कई इतिवृत्तियाँ मिलती है जिनसे वहाँ का इतिहास ज्ञात होता है। सिन्ध की इति वृत्तियों के आधार पर ही ''चचनामा'' नामक ग्रन्थ की रचना की गयी जिसमें अरबों की सिन्ध विजय का वृतान्त सुरक्षित है। मूलतः यह अरबी भाषा में लिखा गया तथा कालान्तर में इसका अनुवाद खुफी के द्वारा फारसी भाषा में किया गया। अरब आक्रमण के समय सिन्ध की दशा का अध्ययन करने के लिए यह सर्वप्रमुख ग्रन्थ है। नेपाल की वंशावलियों में वहाँ के शासकों का नामोल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु उनमें से अधिकांश अनैतिहासिक है। अर्द्ध-ऐतिहासिक रचनाओं में पाणिनि को अष्टाध्यायी, कात्यायन का वार्तिक, गार्गी संहिता, पंतजलि का महाभास्य, विशाखदत्त का मुद्रा राक्षस तथा कालिदास कृत मालविकाग्निमित्र आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पाणिनि तथा कात्यायन के व्याकरण-ग्रन्थों से मौर्यों के पहले के इतिहास तथा मौर्य युगीन राजनीतिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। गार्गी संहिता, यद्यपि एक ज्योतिष ग्रन्थ है तथापि इससे कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना मिलती है। इसमें भारत पर होने वाले यवन आक्रमण का उल्लेख मिलता है जिससे हमे पता चलता है कि यवनों ने साकेत, पंचाल, मथुरा तथा कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) पर आक्रमण किया था। पतंजलि पुश्यमित्र शुंग के पुरोहित थें, उनके महाभास्य के शुंगों के

इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। मुद्राराक्षस से चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में सूचना मिलती है। कालिदास कृत मालविकग्निमित्र नाटक शुंग कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक जीवनीयों में अश्वघोष कृत बुद्धचरित, वाणभट्ट का हर्षचरित, वाक्पति का गोड़बहों विल्हण का विक्रमांकदेवचरित, पद्यगुत्व का नवसाहसांकचरित, सन्ध्याकर नन्दी कृत ''रामचरित'',हेमचन्द्र कृत ''कुमारपालचरित'' जयानक कृत ''पृथ्वीराज विजय आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। ''बुद्ध चरित'' में गौतम बुद्ध के चरित का विस्तृत वर्णन हुआ है। ''हर्षचरित'' से सम्राट हर्षवर्धन के जीवन तथा तत्कालीन समाज एवं धर्म विषयक अनेक महत्व पूर्ण सूचनाए मिलती है। गौड़वहो में कन्नौज नरेश यशोवर्मन के गौड़ नरेश के ऊपर किये गये आक्रमण एवं उसके वध का वर्णन है। कुमारपालचरित से चालुक्य शासकों-जय सिंह, सिद्धराज तथा कुमार पाल का जीवन चरित्र तथा उनके समय की घटनाओं का वर्णन है। पृथ्वीराज विजय से चाहमान राजवंश के इतिहास का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त और भी जीवनियाँ है जिनसे हमें प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिल जाती है।

3.3.10 यवन

पुण्य मित्र के शासन-काल की सर्वप्रथम घटना यवनो के भारतीय आक्रमण की है। विभिन्न साक्ष्यों से पता चलता है कि यवन आक्रमणकारी बिना किसी अवरोध के पाटलिपुत्र के निकट आ पहुँचे। इस आक्रमण की चर्चा पतंजलि के महाभाष्य, गर्गी संहिता तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक में हुई है। पंतजलि, पुष्यमित्र के पुरोहित थे। अपने महाभाष्य में उन्होंने अनघतन 'लग' का प्रयोग समझाते हुए लिखा है- 'यवनों ने साकेत पर आक्रमण किया, यवनों ने माध्यमिका (चित्तौड़) पर आक्रमण किया। गर्गी संहिता में स्पष्टतः इस आक्रमण का उल्लेख हुआ है। जहाँ बताया गया है कि 'दुष्ट विक्रान्त यवनों ने साकेत, पांचाल तथा मथुरा को जीता और पाटलिपुत्र तक पहुँच गये। प्रशासन में घोर अव्यवस्था फैल गयी तथा प्रजा व्याकुल हो गयी। परन्तु उनमें आपस में ही संघर्ष छिड़ गया और वे मध्य देश में नहीं रूक सकें।

यह निश्चित नही कि इस यवन आक्रमण का नेता कौन था ? कुछ विद्वान उसका नेता डेमेट्रियस को तथा कुछ मेनाण्डर को मानते है। नगेन्द्रनाथ घोष के विचार में भारत पर दो यवन आक्रमण हुये थे - प्रथम पुष्यमित्र के शासन के प्रारम्भिक दिनों में हुआ, जिसका नेता डेमेट्रियस था तथा तथा द्वितीय उसके शासन के अन्तिम दिनों में अथवा उसकी मृत्यु के तत्काल बाद हुआ था, इसका नेता मेनाण्डर था। इसके विपरीत टार्न ने एक ही यवन आक्रमण का समर्थन किया है। उनके अनुसार इस आक्रमण का नेता डेमेट्रियस ही था, परन्तु वह अपने साथ अपने भाई एपोलोडोटस तथा सेनापति मेनाण्डर को भी लाया था। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित कर दिया। प्रथम भाग नेतृत्व उसने स्वयं ग्रहण किया। यह भाग सिन्धु को पार कर चित्तौड़ होता हुआ पाटलिपुत्र पहुँच गया। दूसरा सैन्य दल मेनाण्डर के नेतृत्व में मथुरा, पांचाल एवं साकेत के रास्ते पाटलिपुत्र पहुँचा। कैलाश चन्द्र ओझा के अनुसार मगध पर डेमेट्रियस

अथवा मेनाण्डर के समय में कोई यवन आक्रमण नहीं हुआ। मध्य गंगाघाटी में यवन इन दोनों में बहुत बाद शकों तथा पह्लवों के दबाव से प्रथम शताब्दी ईसापूर्व में आये थे। यदि इस मत को स्वीकार किया जायें तो यह मानना पड़ेगा कि पृष्य मित्र शूंग के समय भारत पर कोई आक्रमण नहीं हुआ था एक अन्य मत के अनुसार प्रथम यवन आक्रमण मौर्य नरेश ब्रहद्रथ के काल में ही हुआ था तथा सेनापति के रूप में ही पुष्यमित्र ने यवनों को परास्त किया था।

वास्तविकता जो भी, इतना तो निर्विवाद है कि आक्रमणकारी वस्त्री यवन थे और पुष्यमित्र के हाथों उन्हें परास्त होना पड़ा था। इस प्रकार उनका भारतीय अभियान असफल रहा था मालविकाग्निमित्रम् से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र के यज्ञ का घोड़ा उसके पौत्र वसुमित्र के नेतृत्व में घूमते हुए सिन्धु नदी के दक्षिणी किनारें पर यवनों द्वारा पकड़ लिया गया। इस पर दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। वसुमित्र ने यवनों पराजित किया तथा घोड़े को पाटलिपुत्र ले आया। जे0एस0 नेगी ने मालविकग्मित्रम् के अन्तः साक्ष्य से उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि सिन्धु नदी से तात्पर्य वस्तुतः पश्चिमोत्तर भारत का सिन्धु नदी ही मानते है। पुनश्च यह भी विदित होता है कि वसुमित्र की यवन विजय का वृतान्त अग्निमित्र को पुष्य मित्र द्वारा यज्ञशाला से लिखे गये पत्र के माध्यम से ज्ञात हुआ। नाटक में यह भी बताया गया है कि वसुमित्र की माता धारिणी अपने पुत्र के कुशल-क्षेम के लिए अत्यन्त चिन्तित थी। यदि वसुमित्र विदिशा के समीप ही अभियान पर होता तो उसका सम्पर्क अपने माता-पिता से अवश्य ही बना रहता यह सभी बाते सिद्ध करती है कि वसुमित्र तथा यवनों के बीच युद्ध विदिशा से बहुत दूर हुआ था। सिन्धु नदी के दक्षिणी तट से तात्पर्य उसके दाहिने किनारें से है। यवनों को परास्त करना निश्चित रूप से पुष्यमित्र शुंग की एक महान सफलता थी।

3.3.11 वोधिसत्व

हीनयान में महात्मा बुद्ध को एक महापुरूष माना जाता था। परन्तु महायान में उन्हें देवता माना गया है तथा उनकी पूजा की जाने लगी। इसी के साथ अनेक वोधिसत्वों की भी पूजा की जाने लगी। मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करने वाले वे व्यक्ति, जो मुक्ति के बाद भी मानव जाति को उसमें दुःखों से छुटकारा दिलाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे, वोधिसत्व कहे गये। प्रत्येक व्यक्ति 'वोधिसत्व' हो सकता है। निर्वाण में सभी मनुष्यों की सहायता करना वोधिसत्व का परम कर्त्तव्य है। उसमें करूणा एवं प्रज्ञा होती है। करूणा द्वारा वह जन सेवा करता है तथा प्रज्ञा से संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है। वोधिसत्वों को दस आदर्शों को प्राप्त करने का आदेश दिया गया है। इन्हें पारमिता कहा जाता है। पारामिताएँ वस्तुतः चारित्रिक पूर्णताएँ है। ये दान, शील, सहनशीलता, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, उपाय, प्रणिधान, बल, ज्ञान। इन्हें दस शील कहा जाता है। बुद्ध के बाद बुद्ध धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार प्रसार कर जनता के लौकिक पारलौकिक सुख की कामना करना या उनमें जीवनको सुखद बनाना वोधिसत्वों का परम कर्त्तव्य माना गया है। संसार में दुःख ही दुःख है, बुद्ध की इस सत्यवादी कल्पना को वोधिसत्वो द्वारा संसार या सृष्टि के कष्टों को कम करने का कार्य बुद्ध को वाद वोधिसत्व प्राप्त करने वाले व्यक्तियों ने किया।

3.3.12 तीर्थंकर

यह शब्द जैन ग्रन्थों में जैन सम्प्रदाय को चलाने वाले सन्तों के लिये प्रयुक्त किया गया है। जैन सम्प्रदाय के पहले तीर्थंकर ऋषभ देव या आदिनाथ को माना गया है। उन्होंने जैन धर्म के सिद्धान्तों की नींव रखी थी। जैन साहित्य में 24 तीर्थकरों के नाम मिलते है। महावीर स्वामी 24वें तीर्थकर थे। महावीर स्वामी के द्वारा जैन धर्म को नवचेतना एवं नयी दिशा प्राप्त हुई और यह धर्म पूरे भारत में लोकप्रिय हो गया। इनसे पहले तेईस तीर्थंकर हो चुके थे। जैन साहित्य से तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध हो चुकी है। जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों के नाम निम्नलिखित है- (1) ऋषभ देव या आदिनाथ (2) अजित नाथ (3) सम्भव (4) अभिनन्दन (5) सुमित (6) पद्मप्रथ (7) सुपार्श्व (8) चन्द्रप्रभ (9) पुश्पदत्त (10) शीतल (11) श्रेयांस (12) वासुपूज्य (13) विमल (14) अनन्त (15) धर्म (16) शान्ति (17) कुन्थु (18) अरह (19) मल्लि (20) मुनि सुव्रत (21) नमि (22) नेमि (23) पार्श्वनाथ (24) महावीर

हमें सभी तीर्थंकरों के बारे में पूर्ण जानकारी नही मिलती है लेकिन तेइसवें एवं चौबिसवें तीर्थंकरों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है चौबिसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी द्वारा जैनधर्म का प्रवर्तन तो नही कहा जा सकता किन्तु हम उन्हें छठी शताब्दी ईसापूर्व के जैन आन्दोलन का प्रर्वतक कह सकते है। वे बुद्ध के बाद भारतीय नास्तिक आचार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनका जन्म 599 ई0पू0 के लगभग वैशाली के निकट कुण्डग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था एवं माता त्रिशला। महावीर के बचपन का नाम वर्धमान था। युवावस्था में 'कुण्डिन्य गोत्र' की कन्या यशोदा के साथ उनका विवाह हो गया। कल्प सूत्र से पता चलता है कि बुद्ध के समान वर्द्धमान के विषय में भी ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे या तो चक्रवर्ती राजा बनेंगे या महान सन्यासी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए-

(क) धर्मविजय

(ख) स्तूप

(ग) धर्म सूत्र

(घ) बोधिसत्व

3.4 सारांश

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप धर्मविजय, स्तूप, चैत्य लौकिक साहित्य, धर्मसूत्र, पाली, प्राकृत, यवन, वोधिसत्व आदि के बारें में प्रर्याप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंली प्रकार समझ सकते है।

3.5. तकनीकी शब्दावली

इहलोक - प्रथ्वीलोक

चक्रवर्ती - चारों दिशाओं का स्वामी

लौकिक - इस लोक से संबंधित

3.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3 के उत्तरों के लिए देखिए

(क) देखिए – 3.3.1 धर्मविजय

(ख) देखिए - 3.3.2 स्तूप

(ग) देखिए - 3.3.5 धर्मसूत्र

(घ) देखिए - 3.3.12 वोधिसत्व

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।

के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनू पब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनू पब्लिकेशन्स,इलाहाबाद,1984

www.mohenjodaro.net/

Allchin,Raymond and Bridget : The Birth of Indus Civilisation,Penguin Books India Pvt.Ltd ,New Delhi,1993

Bisht,R.S , Dholavira New Horizons of the Indus Civilisation in Puratattva no. 20, 1989-90,pp. 71-82

Chakraborti,D.K, The External Trade of the Harappans,Munshiram Manoharlal,New Delhi,1990

Rao,S.R , Lothal and the Indus Civilisation, Asia Publishing House,New Delhi,1973

Gupta, S.P(ed),The Lost Sarasvati and the Indus Civilisation,Kusumanjali Publishers,Jodhpur,1995

Vats,M.S, Excavations at Harappa, vol.1,Archaeological Survey of India, New Delhi,1999

Wheeler,R.E.M, The Indus Civilisation,3rd edn.Cambridge University Press,Bentley House,London,1968

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) स्तूपवास्तु पर एक लेख लिखिए।

इकाई चार

विष्टि, प्रणय, सीता, स्त्री-धन, प्रतिलोम विवाह, अनुलोम विवाह, वर्ण संकर, गोत्र तथा प्रवर, राजतंत्र, गणराज्य, मत्स्य-न्याय, अग्रहार, ब्रह्मदेय ,दशमांश

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3. संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

4.3.1 विष्टि

4.3.2 सीता

4.3.3 स्त्री-धन

4.3.4 अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह

4.3.5 प्रणय

4.3.6 वर्ण संकरता

4.3.7 गोत्र/प्रवर

4.3.8 राजतन्त्र

4.3.9 गणराज्य

4.3.9.1 कपिलवस्तु के शाक्य

4.3.9.2 सुमसुमार पर्वत के भग्ग

4.3.9.3 अलकप्प के बुलि

4.3.9.4 केशपुत्त के कालाम

4.3.9.5 रामगाम के कोलिय

4.3.9.6 कुशीनारा के मल्ल

4.3.9.7 पावा के मल्ल

4.3.9.8 पिप्पलिवन के मोरिय

4.3.9.9 वैशाली के लिच्छवि

4.3.9.10 मिथिला के विदेह

4.3.10 मत्स्य न्याय

4.3.11 ब्रहमदेय

4.3.12 दशमांश

4.4 साराशं

4.5 तकनीकी शब्दावली

4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में ऐतिहासिक काल के प्रारंभ होने के उपरांत भारत और विशेषकर उत्तर भारत में शासन व्यवस्था,एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत में आज जो संस्कृति मिलती है उसकी शुरूआत इसी काल में हुई। प्राचीन भारत में संस्कृति की अनेक श्रेष्ठ परंपराओं की स्थापना हुयी, धर्म प्रचारक संतों और उनके अनुयायियों ने लोगों को निकट लाने और साथ-साथ रहने के लिए तैयार करने में अहम् भूमिका निभायी थीं।

प्राचीन काल में शासक वर्ग ने अनेक शासन प्रणालियों को भारत में प्रचलित करने हेतु समय-समय पर विभिन्न प्रयोग किये ,यहां तक कि गणतंत्रीय शासन प्रणाली का प्रथम बीजारोपण भी इसी धरा पर हुआ।समाज व्यवस्था एवं संस्कृति के साथ-साथ कृषि-वाणिज्य-व्यापार तथा व्यवसाय एवं उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की गयीं।इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक नवीन बातों का प्रचलन प्रारंभ हुआ ।

प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिए इस काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितांत आवश्यक है, इसके अभाव में इस काल के इतिहास को भली प्रकार से समझ पाना कठिन है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपको प्राचीन काल में प्रयोग की गयी अनेक संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली का विवरण दिया जा रहा है। इन तथ्यों का अध्ययन कर आप प्राचीन भारतीय इतिहास का भली प्रकार अध्ययन कर पायेंगे और इस काल की जानकारी को ठीक तरह से समझ पायेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली के ज्ञान का परिचय देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं

2- प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न विचार

3- प्राचीन भारतीय इतिहास में व्यवहृत विभिन्न शब्दावली

4.3. संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

4.3.1 विष्टि

गुप्त कालीन लेखों में विष्टि (बेगार) का भी उल्लेख मिलता है। सम्भवतः इस काल में यह एक प्रकार का कर था। किन्तु गुप्त राजाओं के किसी भी लेख में इस शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। वात्सायन के कामसूत्र से पता चलता है कि गॉवों में किसान स्त्रियों को मुखियों के घर के विविध प्रकार काम जैसे- अनाज रखना, घर की सफाई, खेतों पर काम करना, आदि करने के लिए बाध्य किया जाता था और इसके बदले में उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती थी। कुछ विद्वान इस विवरण के आधार पर गुप्तकाल में विष्टि के व्यापक रूप में प्रचलित होने का निष्कर्ष निकालते है। सामन्तवादी व्यवस्था में भी इमें 'विष्टि ' नामक कर का प्रचलन देखने को मिलता है। इसमें सामन्तों द्वारा दासों से विष्टि (बेगार) करायी जाती थी। विष्टि नामक कर में श्रम का मूल्यांकन नहीं होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी 'विष्टि' नामक कर के बारे में पता चलता है। साहित्यिक स्त्रोतों से ज्ञात होता है। कि राजा अपनपी प्रजा से रम दान करवाता था जिसके अन्तर्गत सभी प्रजा राज्य के कार्य में श्रमदान कर राजा की सहायता करते थे और बाद में यह कार्य उसके अधिकारी वर्ग भी करवाने लगे। धीरे- धीरे श्रमदान ने विष्टि (बेगार) का रूप धारण कर लिया जिसके बदले में श्रमिक को कुछ भी नहीं दिया जाता था। गौतम सूत्र में करो की एक लम्बी सूची मिलती है। कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं, व्यापार, वाणिज्य, आयात, निर्यात की वस्तुओं, पशुओं, फलों, दवाओं आदि सभी पर कर लगते थे। शिल्पियों तथा श्रमिकों को जो 'कर' नहीं दे सकते थे, उन्हें माह हमें एक दिन राज्य के लिए विष्टि (बेगार) करनी पड़ती थी। गौतम के अनुसार विष्टि के बदले वे राज्य से भोजन पाने के अधिकारी थे।

4.3.2 सीता

चन्द्रगुप्त की संसुगठित प्रशासनिक व्यवस्था वित्तीय आधार पर अवलम्बित थी। साम्राज्य के समस्त आर्थिक कार्य कलापों पर सरकार का कठोर नियंत्रण होता था। कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा अधिकारिधक भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। भूमि पर राज्य तथा कृषक दोनों का अधिकार होता था। राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी ''सीताध्यक्ष'' था जो दासों, कर्मकारों तथा वन्दियों की सहायता से खेती करवाता था। कुछ राजकीय भूमि खेती करने के लिए कृषकों को भी दे दी जाती थी। राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत भूमि कर था। यह सिद्धान्ततः उपज का 1/6 होता था परन्तु व्यवहार में आर्थिक स्थिति के अनुसार कुछ बड़ा दिया जाता था। अर्थशास्त्र तथा यूनानी प्रमाणों से पता चलाता है कि मौर्य शासन में कृषि की आय पर लोगों को 25 प्रतिशत तक कर देना पड़ता था। ऐसी भूमि से तात्पर्य राजकीय भूमि से है। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि यदि कोई किसान अपने हल बैल, उपकरण, बीज आदि लगाकर राजकीय भूमि पर खेती करता था तो उसे उपज का आधा भाग प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त किसानों के पास व्यक्तिगत भूमि भी होती थी। ऐसे लोग अपनी उपज का एक भाग राजा को कर के रूप में देते थे। भूमिकर को 'भाग' कहा जाता था। राजकीय भूमि से प्राप्त आय को 'सीता' कहा गया है। कृषकों केा सिंचाई कर भी देना पड़ता थ। नगरों में जल एवं भवन कर लगायें जाते थे। इस प्राकर प्रमुख रूप से सम्राट की अपनी व्यक्तिगत भूमि जो हुआ करती थी उस भूमि से राजा या सम्राट को जो आमदनी अथवा आय प्राप्त होती थी एसे सीता कहा जाता था।

4.3.3 स्त्री-धन

हिन्दू व्यवस्थाकारों ने स्त्री को चल सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार प्रदान किया। इसमें बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण, जवाहरात आदि वस्तुएं आती थी। चल सम्पत्ति के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं के लिए 'स्त्रीधन' की सामान्य संज्ञा प्रयुक्त की गयी। यह वह सम्पत्ति थी जिसके ऊपर सामान्य परिस्थिति में स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता था। अल्टेकर का विचार है कि स्त्रीधन का विकास कन्या मूल (शुल्क) से हुआ जो आसुर विवाह के अनतर्गत वर कन्या के पिता को प्रदान करता था। पुत्री के प्रति स्नेह के कारण माता पिता उसे शुल्क का अंश अथवा कभी कभी सम्पूर्ण भाग दे देते थे ताकि वह स्वतंत्र रूप से उसका उपयोग कर सकें। यदि कन्या की मृत्यु हो जाती और उसकी सन्तान नहीं होती तो उस दशा में सम्पूर्ण धन उसके पिता अथवा भाई को वापस किये जाने का विधान था। जहॉ कन्या 'मूल' नहीं दिया जाता था वहॉ विवाह के समय कन्या कुछ उपहार प्राप्त करती थी जिसकी वह स्वामिनी हेाती थी। वैदिक साहित्य में इसके लिए ''धरिणाह'' शब्द मिलता है। इस प्राकर के उपहारों में बहुतमूल्य वस्त्रा भूषण हुआ करते थे जिन्हें कन्या ही धारण करती थी। कालान्तर में कन्या द्वारा विवाह के उपरानत प्राप्त उपहारों को भी स्त्रीधन के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया, प्रायः सभी व्यवस्थाकार स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व स्वीकार करते हैं।

स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से हमें स्त्रीधन के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। मनु ने स्त्री धन के छ प्रकारों का निर्देष किया हैः-

1, पिता द्वारा किसी भी समय दिये गये उपहार।

2, माता द्वारा दिये गये उपहार।

3, भाई द्वारा दिये गये उपहार।

4, पति द्वारा विवाहांपरानत दिये गये उपहार।

5, किसी अन्य द्वारा विवाह के समय दिये गये उपहार।

6, विवाह के प्श्चात किसी के द्वारा भी प्रदत्त उपहार स्त्री के पति की मृत्यु के बाद जो व्यक्ति उससे छीनते है, मनु उनकी कड़ी निन्दा करते है। विष्णु ने उसके अन्तर्गत पुत्र द्वारा दिया गया उपहार तथा तलाक के समय पति द्वारा प्राप्त निर्वाह की राशि को भी शामिल किया गया है।

सातवीं शताब्दी से हम स्त्रीधन के क्षेत्र में विस्तार पाते है। देवल ने इसमें वृत्ति, आभरण, शुल्क तथा लाभ की गणना की है (वृत्रिाभरणं शुल्क लाभश्च स्त्रीधनं भवेत) विज्ञानेश्वर ने इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत कर दिया तथा इसके अनर्तगत उत्तराधिकार, क्रय विभाजन, प्रतिगृह तथा अधिग्रहण द्वारा प्राप्त की गयी सम्पत्ति कों भी समाहित कर लिया। इस प्रकार स्त्रीधन के अन्तर्गत स्त्री के अधीन प्रायः‘ हर प्रकार की सम्पत्ति को भी समाहित कर दिया गया।

प्रारम्भिक स्मृति लेखकों ने स्त्रीधन के ऊपर स्त्री का अधिकार मानते हुए भी उसमें सम्मिलित सम्पत्ति को बेचने का अधिकार उसे नहीं दिया। मनु के अनुसार पति की अनुमति बिना पत्नी निजी सम्पत्ति को भी बेच नहीं सकती। कालान्तर में स्त्रीधन के दो भाग कर दिये गये- (1) सौदायिक तथा (2) असौदायिक।

प्रथम भाग में पिता, माता अथवा पति द्वारा स्त्री को दिये गये उपहार रखे गये तथा इसे उसके पूर्ण अधिकार में कर दिया गया। शेष धन को असौदायिक की कोटि में रखा गया, जिसका स्त्री केवल उपयोग कर सकती थी, उसे बेच नहीं सकती थी। स्त्री द्वारा अचल सम्पत्ति को बेचे जाने के अधिकार के विषय में शास्त्रकार एक मत नहीं है। कात्यायन के अनुसार स्त्री अपनी सम्पत्ति को बेच सकती है अथवा उसे बन्धक रख सकती है। नारद को विचार है कि स्त्री को स्त्रीधन में निहित केवल चल सम्पत्ति को ही बेच सकने का अधिकार होता है। पूर्व मध्यकाल के लेखकों में नारद के मत का समर्थन किया है।

हिन्दू शास्त्रकार प्रायः इस मत के है कि स्त्रीधन का उपयोग स्त्री के अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्त् नहीं कर सकता। साधारणतः उसके पति का भी इस पर अधिकार नहीं होता है। परिवार के संकट में होने की स्थिति में ही पति इस धन का उपयोग कर सकता था। यहॉ कात्यायन ने यह व्यवस्था दी कि परिवार की स्थिति सुधरने पर पति को स्त्री धन लौटा देना चाहिए। यदि उसकी मृत्यु हो जाये तो उसके उत्तराधिकारियों का कर्तव्य है कि वे इसे वापस कर दें।

स्त्रीधन को उत्तराधिकार में प्राप्त करने का अधिकार पुत्री को दिया गया था। यदि स्त्री की कोई सन्तान नहीं थी तो धन उसके पिता तथा भाई के पास चला जाता था।

4.3.4 अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह

प्राचीन हिन्दू समाज में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों का भी प्रचलन था। अनुलोम में उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने ठीक नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करता था। वैदिक समाज में इस तरह के विवाह प्रायः हुआ करते थे क्योंकि वर्ण व्यवस्था के बन्धन कठोर नहीं थे। अनेक ब्राहमण ऋषियों के विवाह क्षत्रिय कन्याओं के साथ हुए थे। यवन ने सुकन्या, श्यावस्य ने रमवीति, अगस्त्य ने लोपा मुद्रा आदि क्षत्रिय कन्याओं के साथ विवाह किये थे। ब्राहमणों को सभी वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकार था। याज्ञवल्क्य के अनुसार अनुलोम से ब्राहमण तीन, क्षत्रिय दो तथा वैश्य मात्र एक वर्ण की कन्या के साथ विवाह कर सकता था। ऐतिहासिक काल में भी इस प्राकर के विवाहों के दृष्टान्त मिलते हैं शुंग शासक अग्निमित्र की पत्नी मालविका क्षत्रिय कन्या थी। राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी क्षत्रिय थी। राजतंरगिणी तथा कथासरित्सागर जैसे ग्रन्थों में इस प्रकार के कई विवाहों के उदाहरण मिलते है। इससे सिद्ध होता है कि पूर्व मध्ययुग तक इस प्राकर के मिताक्षरा तथा दायभाग भी इसी वैधता स्वीकार करते है। किन्तु वाद की ।स्मृतियों में इस प्राकर के विवाह की निन्दा की गयी है। असवर्णा पत्नी को धार्मिक कार्यों से वचिंत रखा गया तथा उत्पन्न पुत्र को सवर्ण विवाह से उत्पन्न पुत्र की तुलना बहुत कम अधिकार प्रदान किये गये। मनु ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि इस प्रकार के विवाह से समाज में वर्ण संकरता उत्पन्न होती है।

प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत उच्चवर्ण की कन्या का विवाह निम्नवर्ण के व्यक्ति के साथ होता था। इस प्रकार के विवाह को निन्दनीय माना गया है तथा समाज में इसका बहुत कम प्रचलन था। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न सन्तान को निकृष्ट एवं अस्पृश्य बताया गया है। मनु ने ब्राहमणों से उत्पन्न क्षत्रिय पुत्र को सूत, क्षत्रिया से उत्पन्न वैश्य पुत्र में मागध, ब्राहमणी से उत्पन्न वैश्य पुत्र धृणित बताया है । हिन्दू शास्त्रकारों ने निम्न वर्ण के व्यक्ति को अपने ऊँचे वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने की अनुमति प्रदान नहीं की है।

4.3.5 प्रणय

प्रणय का शाब्दिक अर्थ प्रेम प्रसंग होता है। अर्थात जहॉ नायक एवं नायिका के मध्य श्रंगार रस के संयोग एवं वियोग श्रंगार का योग होता है। वहॉ प्रणय की उत्पत्ति होती है। प्राचीन इतिहास में बहुत स लेखक एवं कवियों द्वारा प्रणय का वर्णन कहा गया है। इसके अनतर्गत नायक एवं नायिका अपनी इच्छा से विवाह के सूत्र में बधकर ग्रहस्थ आश्रम के अनुष्ठानों को पूर्ण करते हैं। स्मुतियों में वर्णित गान्धर्व विवाह प्रणय विवाह तथा जिसमें माता पिता की इच्छा के बिना ही वर कन्या एक दूसरे के गुणों पर अनुरक्त होकर अपना विवाह कर लेते थे। मनु ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है। जहॉ। वर तथा कन्या स्वेच्छया से परस्पर मिलते हैं तथा काम वश उनमें मैथुन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है वहॉ।

गान्धर्व विवाह होता है। इस विवाह का प्रचलन प्रत्येक युग में था। भारत भी राजपूत जातियों में यह सर्वाधिक प्रचलित प्रकार था। वात्सायन ने इसे सबसे अधिक पूजित बताया है। महाभारत में भी इसे सर्वोत्तम विवाह बताया गया है।

4.3.6 वर्ण संकरता

वर्ण संकरता का शाब्दिक अर्थ है सभी वर्णों का आपस में मिश्रित होना। प्राचीन हिन्दू समाज में अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों का प्रचलन था। अनुलोम में उच्चवर्ण का व्यक्ति अपने ठीक नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करता था। वैदिक समाज में इस तरह के विवाह प्रायः हुआ करते थे, च्यवन ने सुकन्या, श्यावस्य ने रथवीति, आगस्त्य ने लोपामुद्रा आदि क्षत्रिय कन्याओं के साथ अपने विवाह किये। ब्राहमणों को सभी वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकार था। याज्ञवल्क्य के अनुसार अनुलोम से ब्राहमण तीन, क्षत्रिय दो तथा वैश्य मात्र एक वर्ण की कन्याओं के साथ विवाह कर सकता था। ऐतिहासिक काल में इस प्रकार के विवाहों के प्रमाण मिलते हैं। शुंग शासक अग्निमित्र की पत्नी मालविका क्षत्रिय कन्या थी। राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी क्षत्रिय थी। राजतरगिंणी तिथा कथासरितसागर जैसे ग्रन्थौं में इस प्रकार के कई विवाहों के उदाहरण मिलते है। इससे सिद्ध होता है कि पूर्व मध्य युग तक इस प्राकर के विवाह समाज में प्रचहिलत एवं वैद्य थे। स्मृति ग्रन्थ इसकी मान्यता प्रदान करते हैं। मिताक्षरा तथा दायभाग भी इसी वैधता स्वीकार करते हैं। हिकन्तु बाद की स्मृतियों में इस प्रकार के विवाह की निन्दा की गयी हैं। असवर्णा पत्नी को धार्मिक कार्यों से वंचित रखा गया तथा उससे उत्पन्न पुत्र को सवर्ण विवाह से उत्पन्न पुत्र की तुलना बहुत कम अधिकार प्रदान किये गये। मनु ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि इस प्रकार में विवाहों से वर्ण संकरता उत्पन्न होती है।

4.3.7 गोत्र / प्रवर

''गोत्र'' का मूल अर्थ ''गौशाला'' था जो बाद में वंश अथवा कुल का बोधक बन गया। किसी परिवार में गोत्र का नामकरण उसके आदि संस्थापक ऋषि के नाम पर होता था। 'प्रवर' का शाब्दिक अर्थ आवाहन या प्रार्थना है। यज्ञ कराते समय पुरोहित अपने श्रेंष्ठ ऋषि-पूर्वजों के नाम का उच्चारण करता था। कालान्तर में यह शब्द व्यक्ति के ऋषि-पूर्वजों के नाम से सम्बन्ध हो गया। ये ऋषि गोत्र संस्थापक ऋषियों के भी पूर्वज होते थे। यज्ञादि धार्मिक कार्यों के अवसर पर उनके नाम का उच्चारण आवश्यक था। आपस्तम्ब के अनुसार प्रत्येक गोत्र में प्रायः तीन प्रवर ऋषि होते थे। 'पिण्ड' का शाब्दिक अर्थ शरीर है अतः सपिण्ड विवाह से तात्पर्य उन दो व्यक्तियों के विवाह से है जिनमें समाज शरीर का रक्त विद्यमान है। शास्त्रकारों ने पिता पक्ष में सात तथा मता पक्ष में पॉच पीढ़ियों तक के सपिण्ड को निषिद्ध माना हे। हिन्दू समाज में सवर्ण तथा अर्न्तवर्ण विवाहों का भी प्रचलन था। धर्मशास्त्रों की मान्यता है कि व्यक्ति को अपने ही वर्ण जाति में विवाह करना चाहिए। इससे लौकिक यश की प्राप्ति होती है तथा अच्छी सन्तान की उत्पन्न हेाती है। समाज गोत्र, प्रवर तथा पिण्ड से विवाह करना वर्जित था।

4.3.8 राजतन्त्र

राजतन्त्र के अर्न्तगत राजा ही प्रशासन का मुख्य अधिकारी हेाता था। राजा के अधिकार असीमित होते थे। उसका आदेश ही कानून होता था। राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में राजा का योग्य होना अत्यन्त आवश्यक होता था। चाण्क्य ने भी इस बात पर महत्व दिया है। उसने अर्थशास्त्र में लिखा है कि ''राजा का जो शील होता है वही प्रजा का भी होता है। यदि राजा परिश्रमी एवं उन्नतिशील हो तो प्रजा भी उन्नतिशील हेा जाती है औद यदि राजा दुर्व्यसनी हो तो प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। अतः चाण्क्य ने राजा में निम्नलिखित गुणों का हेाना परमावश्यक बताया है- वह राजा ऊँचे कुल का हो, उसमें दैवीय बुद्धि व शक्ति हो, वह वृद्धजनों की बात सुनने वाला हो, धार्मिक व सत्यवादी हो, परस्पर विरोधी बाते न करने वाला है, उसका लक्ष्य ऊँचा हो, उसकी परिषद छोटी न हो तथा विनयानुगामी हो।

ऋग्वैदिक काल से ही भारत में राजतंत्र/ राजनीतिक संगठन का विकास क्रमिक रूप में हुआ। परिवारों से कुल, कुलों से ग्राम, गा्रमों के समूहों से विश बने और उसके बाद जनों का निर्माण हुआ। अन्त में राष्ट्र की उत्पत्ति हुई, परिवार का मुखिया प्रधान पुरूष, कुल का कुलपति, ग्राम का ग्रामीण, विश का विशपति होता था। विश से बड़ा जन का शासक जनपति/राजा कहा जाता था, और उसके अधीनस्ता में निम्न वर्ग में अधिकारी कार्य करते थे।

राजा अपनी शासन व्यवस्था को लोक हितकारी बनाने के लिए मंत्रिपरिषद का निर्माण करता था। समय-समय पर मंत्री परिषद राजा को परामर्श आदि देती थी, लेकिन राजा मंत्रिपरिषद की परामर्श मानने को बाध्य नहीं हेाता था। राजा का पद दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त से उत्प्रेरित था। मनुस्मृति में माना गया है कि परमेश्वर ने राजा की सृष्टि की। ऐतरेय ब्राहमण में लिखा है कि प्रजा ने राजा को स्वयं चुना। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार पहला आर्य राजा वैवस्तुमनु को चुना गया था।

प्राचीन भारत में राजतंत्र का इतना प्रभाव था कि राजपद की उत्पत्ति को नागरिक समाज की उत्पत्ति मान लिया गया औश्र राजा को राज्य की आत्मा कहा गया। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार राजा प्रजा के लिए ब्रहम की देन है जिससे वह प्रजा को कष्टों से छुटकारा दिला सके। राजा विहीन समाज का जीवन कष्टपूर्ण होता है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने राजा या राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समय-समय पर अनेक विचार प्रस्तुत किये।

कौटिल्य ने राज्य (राजा) को मानव जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यक एवं कल्याणकारी संस्था माना है। उन्होंने राजतंत्र की विधिवत और क्रमबद्ध विवेचना नहीं की, लेकिन अर्थशास्त्र में यत्र-तत्र विचारों के आधार पर यह कहाह जा सकता है कि कौटिल्य राजा की उत्पत्ति सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं।

4.3.9 गणराज्य

प्रारम्भ में अधिकांश इतिहासकारों की धारणा थी कि प्राचीन भारत में केवल राजतंत्र ही थे परन्तु बाद की खोजों से यह तथ्य प्रकाश में आया कि भारत में राजतंत्रों के साथ-साथ गणराज्य अथवा संघ राज्यों का भी अस्तित्व था।

सर्वप्रथम 1903 में रिज डेविड्स ने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को चुनौती देने के लिए गणराज्यों की खोज की थी। अवदान शतक से पता चलता है कि मध्य प्रदेश के कुछ व्यापारी दक्षिण गये,जो के लोगों ने उनसे उत्तर भारत की शासन व्यवस्था के विषय में पूछा, उत्तर में उन्होंने बताया कि कुछ देश गणों के अधीन है तथा कुछ राजाओं के (केचिददेशाः गणाधीना के चिद्राजा धीनाः) आचारांग सूत्र जैन भिक्षु को चेतावनी देता है कि उसे उस स्थान में नहीं जाना चाहिए जहॉ गणतंत्र का शासन हों पाणिनी ने राजतंत्र को संघ से भिन्न बताया है (क्षत्रियोदक राजात संघ प्रतिषेधाश्रकम्) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दो प्रकार के संघ राज्यों का उल्लेख मिलता है- वार्ताशास्त्रोपजीवी तथा राज शब्दोपजीवी। प्रथम के अर्न्तगत कम्बोज, सुराष्ट्र आदि तथा दूसरे के अर्न्तगत लिच्छवी, वाज्जे, मल्ल, मद्र, कुकुर, पांचाल आदि की गणना की गयी है। स्पष्टतः यहॉ। 'राज शब्दोपजीवी' संघ से तात्पर्य उन गणराज्यों से है जो राजा की उपाधि का प्रयोग करते थे। महाभारत में भी गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। साहित्य के अतिरिक्त यूनानी-रोमन लेखकों के विवरण से भी प्राचीन भारत में गणराज्यों का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। मुद्रा सम्बन्धी प्रमाणों से भी गणराज्यों का अस्तित्व सिद्ध होता है। मालव, यौधेय, अर्जुनायन आदि अनेक गणराज्यों के सिक्के ''राजा'' का उल्लेख न कर ''गण'' का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि प्राचीन भारत में गणराज्य थे और वे राजतंत्रों से इस अर्थ में भिन्न थे कि उनका शासन किसी वंशानुगत राजा के हाथ में न होकर ''गण'' अथवा ''संघ'' के हाथ में था।

बुद्धकाल में गंगाघाटी में कई गणराज्यों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते है जो इस प्रकार हैः-

4.3.9.1 कपिलवस्तु के शाक्य

यह गणराज्य नेपाल की तराई में स्थित था जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। शाक्य गणराज्य के उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में रोहिणी नदी तथा दक्षिण एवं पश्चिम राप्ती नदी स्थित थी। कपिलवस्तु की पहिचान नेपाल में स्थित आधुनिक तिलौराकोट से की जाती है। कुछ विद्वान इसकी पहिचान बस्ती जिले के पिपरहवा नामक स्थान से करते हैं।

4.3.9.2 सुंसुमार पर्वत के भग्ग

सुंसुमार पर्वत का समीकरण मिर्जापुर जिले में स्थित वर्तमान 'चुनार'' से किया गया है। ऐसा लगता है कि भग्ग ऐतरेय ब्राहमण में उल्लखित भर्ग वंश से सम्बन्धित थे। भग्ग गणराज्य के अधिकार क्षेत्र में विन्ध्य क्षेत्र की यमुना तथा सोन नदियों के बीच का प्रदेश सम्मिलित था। भग्ग लोग वत्सों की अधीनता स्वीकार करते थे ज्ञात होता है कि सुंसुमार पर्वत पर वत्सराज उदयन का पुत्र बोध निवास करता था।

4.3.9.3 अलकप्प के बुलि

यह गणराज्य आधुनिक बिहार प्रान्त के शाहाबद, आरा और मुजफफरपुर जिलों के बीच में स्थित था। बुलिया का वेठद्वीप (वेतिया) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। सम्भवतः यह उनकी राजधानी थी।

4.3.9.4 केशपुत्त के कालाम

केशपुत्त का निश्चित रूप में समीकरण स्थापित कर सकना कठिन है। यह गणराज्य कौशल के पश्चिम में स्थित था। सम्भवतः यह राज्य सुल्तान पुर जिले के कुडंवार से लेकर पालिया नामक स्थान तक फैला हुआ था। इसी गणराज्य के आलारकालाम नामक आचार्य से जो उरूवेला के समीप रहते थे, महात्मा बुद्ध ने गृह त्याग करने के बाद सर्वप्रथम उपदेश ग्रहण किया था।

4.3.9.5 रामगाम के कोलिय

यह शाक्य गणराज्य के पूर्व में स्थित था। दक्षिण में यह गणराज्य सरयू नदी तक विस्तृत था। शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच राहिणी नदी बहती थी। दोनों राज्यों के बीच सिंचाई के लिये इसी नदी के जल पर निर्भर करते थे।

4.3.9.6 कुशीनारा के मल्ल

कुशीनारा की पहिचान देवरिया जिले में स्थित वर्तमान ''कसया'' नामक स्थान से की जाती है। बालमीकि रामायण में मल्लों को लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु मल्ल का वंशज कहा गया है।

4.3.9.7 पावा के मल्ल

पावा आधुनिक देवरिया जिले में स्थित पडरौना नामक स्थान था। मल्ल लोग सैनिक प्रवृत्ति के लोग थे। जैन साहित्य से पता चलता है कि मगध नरेश अजातशत्रु के रूप से मल्लों ने लिच्छवियों के साथ मिलकर एक संघ बनाया था। अजात शत्रु ने लिच्छवियों को पराजित कर मल्लों को भी जीत लिया था।

4.3.9.8 पिप्पलिवन के मोरिय

मोरिय गणराज्य के लोग शाक्यों की एक शाखा थे। मंहावंश ठीका से पता चलता है कि कौशल नरेश विडूडभ के अत्याचारों से बचने के लिये वे हिमालय प्रदेश में भाग गये जहॉ उनहोंने मोरों की कूक से गुंजायमान स्थान में पिप्पलिवन नामक नगर बसा लिया। मोरों के प्रदेश के निवासी होने के कारण ही वे मोरिय कहे गये।

4.3.9.9 वैशाली के लिच्छवि

यह बुद्ध काल का सबसे बडा तथा शक्तिशाली गणराज्य था। लिच्छवि बज्जि संघ में सर्वप्रमुख थे। उनकी राजधानी वैशाली मुजफफरपुर जिले के बसाढ़ नामक स्थान में स्थित थीं। महावाग जातक में वैशाली को एक धनी, समृद्धशाली तथा घनी आबादी वाला नगर कहा गया है। एक पण्य जातक से पता चलता है कि वैशाली नगर चारों ओर से तीन दीवारों से घिरा हुआ था।

4.3.9.10 मिथिला के विदेह

बिहार के भागलपुर तथा दरभंगा जिलों के भू-भाग में विदेह गणराज्य स्थित था। प्रारम्भ में यह राजतंत्र था। यहॉ के राजा जनक अपनी शक्ति एवं दार्शनिक ज्ञान के लिए विख्यात थे । परनतु बुद्ध के समय में यह बज्जि संघ का राज्य बन गया। विदेह के लोग भी वज्जि संघ के सदस्य थे। उनकी राजधनी ''मिथिला'' की पहिचान ''जनकपुर'' से की जाती है। बुद्ध के समय मिथिला एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था, जहॉ श्रावस्ती के व्यापारी अपना माल लेकर आते थे।

4.3.10 मत्स्य न्याय

मत्स्य न्याय का शाब्दिक अर्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्पष्ट किया गया है जिसका अर्थ है कि जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है ठीक उसी प्रकार समाज के कुलीन वर्ग के लोगों ने निम्न वर्गीय लोगों का शोषण, अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया था। इससे समाज बुरी तरह से प्रभावित होता था। मत्स्य न्याय को समाप्त करने के लिये कौटिल्य ने राज्य एवं राजा की कल्पना को अनिवार्य माना है। जिसे द्वारा समाज को व्यवस्थित किया जाये।

आचार्य कौटिल्य ने अराज्य की दशा में अन्याय पर आधारित ''मत्स्य न्याय'' फैलने के प्रति चिन्ता प्रकट करते हुए राज्य को अनिवार्य माना है। इसी प्रकार आर्चाय ''शुक्र'' ने स्वीकार किया है कि धर्म और राज्य के अभाव में शक्तिशालियों द्वारा निर्बलों पर अत्याचार किये जाते हैं। सेना अपने ही राज्य की प्रजा को लूटने लगती है। दोनों आचार्यों द्वारा व्यक्त् उक्त मत चिरंतन सत्य प्रतीत हेाते है। आधुनिक समय में भी जब भी जहॉ कही भी राज्य व्यवस्था कमजोर हेाती है या अराज्य की स्थिति उत्पन्न होती है, अराजकता फैलने लगती है जिसकी लाठी उसकी भैस कहावत चरितार्थ होती है। कमजोर अस्थिर सरकार के होने पर देश में कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अपराध बढ़ जाते है। समाज व्यवस्था और अर्थव्यवस्था चरमराने लगती है। अतः आचार्यों के निर्देश के अनुसार राज्य को शक्तिशाली बनाये रखना चाहिए जिसके लिए स्थायी सरकार जरूरी है। प्रजातन्त्र में सरकार बनाना प्रजा के हाथ में होता हैं प्रजा को विवके के आधार पर मताधिकार का प्रयोग करके स्थायी सरकार बनानी चाहिए।

4.3.11 ब्रहमदेय

ब्राहमणों को दान में दी जाने वाली भूमि को ''ब्रहमदेय'' कहा जाता था। भूमि दान ब्राहमणों के लिये सर्वोत्तम दान समझा जाता था। समाज में ब्राहमणों का स्थान सर्वोत्तम था। ब्राहमणों के छः प्रधान कर्मों का उल्लेख मिलता हैः- (1) अध्ययन (2) अध्यापन (3) यज्ञ करना (4) यज्ञ कराना (5) दान देना तथा (6) दान लेना। महाभारत में अध्यापन, आत्म नियन्त्रण तथा तप को ब्राहमण का विशिष्ट धर्म बताया गया है। गीता में शम (अंतःकरण का निग्रह) दम (इन्द्रियों का दमन) शुद्धि, तप, क्षमाभाव, सरलता , ज्ञान विज्ञान, आस्तिकता को ब्राहमण का स्वाभाविक कर्म कहा गया है। मनु स्मृति में ब्राहमण का विशिष्ट कर्म अध्ययन एवं अध्यापन हो गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि

ब्राहमण अपने ज्ञान के बल पर ही सामाजिक श्रेष्ठता का अधिकारी था। समस्त धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन इसी के द्वारा किया जाता था।

गौतम धर्म सूत्र में राजा को सलाह दी गयी है कि वह ब्राहमण को छः प्रकार के दण्डों से मुक्त रखें- शारीरिक यातना, कारावास, जुर्माना, देश निष्कासन, अपमान तथा मृत्युदण्ड। कौटिल्य ने भी व्यवस्था दी है कि किसी भी प्रकार का अपराध करने वाले ब्राहमण को मृत्यु अथवा प्रताडना का दण्ड न दिया जाये। दण्ड के स्थान पर सम्बन्ध अपराध को सूचित करने वाला चिन्ह ब्राहमण के मस्तक पर अंकित किये जाने का विधान करता है।

ब्राहमण के आ पद्धधर्म का भी उल्लेख प्राचीन साहित्य से प्राप्त होता है। संकट काल में वह क्षत्रिय एवं वैश्य के कर्तव्यों को अपना समका था उसे शस्त्र ग्रहण करने तथा शासन करने का अधिकार था। यदि इससे भी उसकी जीविका का निर्वाहन हो तो वह वैश्यवृत्ति अर्थात कृषि पशुपालन एवं व्यापारादि के द्वारा अपना जीवन निर्वाह कर सकता था। पूर्व मध्ययुग में परम्परागत वर्षों के कर्तव्यों का नये सिरं से निर्धारण हुआ तथा प्रथम बार पाराशर स्मृति में कृषि को ब्राहमण वर्ण की वृत्ति निरूपित किया गया। इससे पता चलता है कि अधिकांश ब्राहमणों ने कृषि करना या कराना प्रारम्भ कर दिया था। और यज्ञादि के बदले में राजाअें द्वारा बडे-बडे भूखण्ड ब्राहमणों को दान दिये जाने लगे। अतः राजाओं द्वारा ब्राहमणों को दान की गयी भूमि को ''ब्रहमदेय'' नाम से पुकारा गया था।

4.3.12 दशमांश

इस का शाब्दिक अर्थ है दसवा अंश अर्थात यह प्राचीन समय में प्रचलित कर था जो कि उत्पादन का दसवां भाग के रूप में लिया जाता था। यह कर सम्राटों द्वारा अपने अधीन राजाओं की आय का दसवां भाग होता था। राजा जिस राज्य को जीत लेता था और फिर वह राज्य वहॉं के राजा को ही वापस कर देता था अर्थात उसे अपने अधीन कर लेता था। त बवह इस राज्य से उसकी आय का दशमांश प्राप्त करता था। इस कर को प्राप्त करने वाले प्राचीन शासक चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, गुप्त शासक हर्ष आदि थे। अधीन शसक को उन्हें उनका राज्य वापस कर देने की नीति को प्राचीन इतिहास में ''धर्म विजय के नाम से जाना जात था। प्राचीन काल की धर्म विजय अर्थात अधीन शासकों से लिये जाने वाले कर दशमांश के आधार आधुनिक काल में शिवाजी ने अपने अधीन शासकों से ''सरदेशमुखी'' नामक कर को प्राप्त किया, यह ''कर'' शिवाजी की आय का प्रमुख साधन था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए (सत्य/असत्य)

1. विष्टि नामक कर में श्रम का मूल्यांकन नहीं होता था(सत्य/असत्य)
2. राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी ''सीताध्यक्ष'' था(सत्य/असत्य)
3. प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत उच्चवर्ण की कन्या का विवाह निम्नवर्ण के व्यक्ति के साथ होता(सत्य/असत्य)

4. वर्ण संकरता का शाब्दिक अर्थ है सभी वर्णों का आपस में दूर-दूर होना(सत्य/असत्य)

5. राजतन्त्र के अन्तर्गत जनता ही प्रशासन का मुख्य हेाती थी(सत्य/असत्य)

6. क्षत्रियों को दान में दी जाने वाली भूमि को ''ब्रहमदेय'' कहा जाता था(सत्य/असत्य)

4.4 साराशं

उपरोक्त विविध शीर्षको के अन्तर्गत आपको प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रचलित अनेक विचार, संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप विष्टि,प्रणय,सीता,स्त्री-धन,प्रतिलोम विवाह,अनुलोम विवाह,वर्ण संकर,गोत्र तथा प्रवर,राजतंत्र, गणराज्य,मत्स्य-न्याय,अग्रहार,ब्रह्मदेय,दशमांश आदि के बारें में प्रर्याप्त जानकारी रखते और प्राचीन भारतीय इतिहास को भंली प्रकार समझ सकते है।

4.5 तकनीकी शब्दावली

वर्ण संकरता - दो वर्णों के मेल से उत्पन्न सन्तान

गणराज्य - जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासित राज्य

विष्टि - प्राचीन भारत का वह कर जिसके अंतर्गत बेगार करनी पड़ती थी।

गोत्र - गोत्र'' का मूल अर्थ ''गौशाला'' था जो बाद में वंश अथवा कुल का बोधक बन गया।

4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 4.3.12.2 के प्रश्न 1 का उत्तर- सत्य

भाग 4.3.12.2 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य

भाग 4.3.12.2 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य

भाग 4.3.12.2 के प्रश्न 4 का उत्तर- असत्य

भाग 4.3.12.2 के प्रश्न 5 का उत्तर- असत्य

भाग 4.3.12.2 के प्रश्न 6 का उत्तर- असत्य

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास।

के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति।

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्माःप्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद, 1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

www.mohenjodaro.net/

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

रामशरण शर्मा: प्रारंभिक भारत का परिचय,ओरियंट बलैकस्वान प्रा0लि0,नई दिल्ली,2010

वी.डी.महाजन: प्राचीन भारत का इतिहास,एस0चन्द एण्ड कम्पनी,नई दिल्ली,2005

ईश्वरीप्रसाद,शैलेन्द्रशर्मा:प्राचीनभारतीयसंस्कृति,कला,राजनीति,धर्म,दर्शन,मीनूपब्लिकेशन्स,इलाहाबाद, 1984

ए.एलबाशम: अद्भुत भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,1972

सिंह, उपिन्दर, ए हिस्टरी ऑव एंशियण्ट एण्ड अर्ली मेडीएवल इण्डिया, दिल्ली, 2009.

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपरोक्त इकाई के आधार पर प्राचीन गणराज्यों पर निबंध लिखिए।

इकाई पांच

-इक्ता, खिलाफत, इनाम, वतन, अमरम, जजिया, जकात, खम्स, खराज, मदद-ए -मास, हरम, परगना, तुर्काने -चहलगानी, जिम्मी, शरियत, परदा, उलेमा, खिदमती, शहना ए-मंडी

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

5.3.1 इक्ता

5.3.1.1 इक्ता का क्षेत्रीय वितरण

5.3.1.2 इक्ता लागू करने का उद्देश्य

5.3.2 जजिया

5.3.3 जकात

5.3.4 खम्स

5.3.5 खिदमती

5.3.6 इनाम

5.3.7 जिम्मी

5.3.8 वतन

5.3.9 अमरम

5.3.10 मदद-ए-माश

5.3.11 शरीयत

5.3.12 हरम

5.3.13 तुर्कान-ए-चहलगानी

5.3.14 शहना-ए-मण्डी

5.3.15 परदा

5.3.16 खिलाफत

5.3.17 परगना

5.3.18 उलेमा

5.4 साराशं

5.5 तकनीकी शब्दावली

5.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

5.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के उपरांत भारत और विशेषकर उत्तर भारत में शासन व्यवस्था,एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत में आज जो समन्वित संस्कृति मिलती है उसकी शुरूआत इसी काल में हुई। मुगलकाल में समन्वित संस्कृति की अनेक श्रेष्ठ परंपराओं की स्थापना हुयी, सूफी और उनके अनुनायियों तथा भक्तिकालीन संतों ने दो भिन्न-भिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के लोगों को निकट लाने और साथ-साथ रहने के लिए तैयार करने में अहम् भूमिका निभायी थीं।

सल्तनत काल में शासक वर्ग ने मध्य एशिया,ईरान एवं अरब जगत की अनेक परंपराओं, विचारों एवं रीतियों को भारत में प्रचलित किया। इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक नवीन बातों का प्रचलन प्रारंभ हुआ और समाज व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए।

मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन के लिए मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितांत आवश्यक है, इसके अभाव में इस काल के इतिहास को भली प्रकार से समझ पाना कठिन है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपको सल्तनत एवं मुगल काल में प्रयोग की गयी अनेक संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली का विवरण दिया जा रहा है। इन तथ्यों का अध्ययन कर आप मध्यकालीन इतिहास का भली प्रकार अध्ययन कर पायेंगे और इस काल की जानकारी को ठीक तरह से समझ पायेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली के ज्ञान का परिचय देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं

2- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न विचार

3- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न शब्दावली

5.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

5.3.1 इक्ता

इक्ता या अक्ता अरबी भाषा का शब्द है। प्रारम्भ में इस प्रथा के अन्तर्गत भूमि के विशेष खण्डों के राजस्व का अधिकार सैनिकों में उनके वेतन के रूप में बांटा जाता था। इस प्रथा का आरम्भ इस्लाम धर्म के साथ ही सेवा करने के बदले पुरस्कार प्रदान करने के साथ हो चुका था। तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली सल्तन्त के सुल्तानों में इल्तुतमिश ही पहला सुल्तान था जिसने भारत में सांमती प्रथा को समाप्त करने, सामा्रज्य के दूर-दराज के क्षेत्रों को केन्द्र से जोडने के लिए 'इक्ता प्रणाली 'की शुरूवात की । इस प्रणाली के प्रारम्भ होने से तुर्की शासक वर्ग की धन से सम्बन्धित लिप्सा की समाप्ति हुई। साथ ही नये विजित प्रदेशों में कानून व्यवस्था की बहाली के साथ ही राजस्व वसूली की समस्या का समाधान हुआ। मोहम्मद गोरी की विजयों के पश्चात् शीघ्र ही उत्तर-भारत में इक्ता प्रथा शुरू हुई। सन् 1210 में इल्तुतमिश के साथ इक्ता प्रणाली स्थापित हुई उसके शासनकाल के 26 वर्षो में (1211-1236) मुल्तान से लखनौती के मध्य सम्पूर्ण सल्तनत बड़े तथा छोटे भू- भागों में विभक्त हो गये, जिन्हें इक्ता कहा जाता था और जो मुक्ता नामक अधिकारियों को दी गयीं थीं।

इल्तुतमिश के समय में इक्ता की दो श्रेणियां प्रचलन में थी। खालसा भूमि से बाहर प्रान्तीय स्तर की इक्ता जो उच्च वर्ग के अमीरों को प्रदान की जाती थी जिनके पास राजस्व से सम्बन्धित एवं प्रशासकीय दोनों तरह के अधिकार होते थे। इस तरह की इक्ता प्राप्त करने वालों को 'मुक्ता' कहा जाता था। गांवों को जोडकर बनी छोटी इक्ताओं को सुल्तान अपने सैनिकों को वेतन के रूप में देता था जो खालसा का हिस्सा माना जाता था। इन इक्ताओं के पास प्रशासकीय एवं आर्थिक अधिकार नहीं होते थे। सल्तनत काल में इक्ता प्राप्त करने वालों को मुक्ता, अमीर तथा मलिक कहा जाता था।

बलवन ने इक्ता को जीवन भर के लिए प्रदान करने तथा अपने उत्तराधिकारों को हस्तांतरित करने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। उसने मुक्ता के साथ ख्वाजा की नियुक्ति की। अलाउद्दीन के समय में इक्ता के असीमित विस्तार को रोक दिया। सैनिकों को नकद वेतन दिया गया। सेनापतियों को अलाउद्दीन खिलजी के समय में इक्तायें प्रदान की गई। तुगलक वंश के शासकों में गयासुद्दीन तुगलक ने इक्ता प्राप्त अधिकारियों की स्थिति में कुछ परिवर्तन किया। मुक्ता की व्यक्तिगत

आय तथा उसके अधीन सैनिक रखे गये। सैनिकों के वेतन में प्रत्यक्ष रूप से विभाजन किया गया। मुहम्मद तुगलक ने इक्ता व्यवस्था में सुधार करते हुए मुक्ता तथा राजस्व से जुड़े अधिकार लेकर नये अधिकारी वली-उल-खराज को दे दिया। फिरोज तुगलक के शासनकाल में इक्ता पर से केन्द्रीय नियंत्रण समाप्त हो गया। इक्ता पर उत्तराधिकार को मान्यता, नियुक्तियों के हस्तांतरण पर रोक , भूमि अनुदान के रूप में सैनिकों को वेतन प्रदान करने की प्रथा को पुनः प्रारम्भ करने आदि इक्ता व्यवस्था में आये परिवर्तन का श्रेय फिरोज तुगलक को दिया जाता है। लोदियों के शासनकाल में भूमि हस्तांतरण प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। सर्वाधिक भूमि अनुदान फिरोज तुगलक ने बांटा था।

5.3.1.1 इक्ता का क्षेत्रीय वितरण

छोटी इक्ता के अधिकारियों को इक्तादार तथा बड़ी इक्ता के पदाधिकारियों को मुक्ता या वली कहा जाता था। इनका हिसाब, दिवाने-विजारत में तय होता था। जनसाधारण में यह पदाधिकारी मुक्ता, हाकिम और अमीर के नाम से प्रसिद्व हुए। इस्लाम शाह के सिंहासनरूढ़ होने पर बडे पैमाने पर अमीरों को उनकी इक्ता से स्थानांतरित किया गया।

इस्लाम धर्म के प्रारम्भ से ही राज्य की सेवा करने के बदले पुरस्कार स्वरूप इक्ता प्रदान करने का प्रचलन हो चुका था। अक्ता या इक्ता प्राप्त व्यक्ति उक्त भू-खण्डों के मालिक नहीं थे वरन् केवल उसके लगान का ही उपयोग कर सकते थे।सैनिकों को विशेष अनुदान देने की यह प्रथा अक्ता(इक्ता) नाम से विख्यात हुई ।राज्य द्वारा, व्यक्ति विशेष को प्रदत्त भू-संपत्तियों को अक्ता कहा जाता था।सामान्यतः इसे भू- अधिन्यास सूचक माना जाने लगा।

5.3.1.2 इक्ता लागू करने का उद्देश्य

ऐबक तथा इल्तुतमिश ने इक्ता प्रथा से पूरा लाभ उठाया था। इन प्रशासकों ने भारतीय समाज से सामंती प्रथा को समाप्त करने तथा साम्राज्य के दूर- दराज के हिस्सों को केन्द्र से जोडने के लिए महत्वपूर्ण साधन के रूप में इस प्रणाली का उपयोग किया।सल्तनत काल में अधिकारियों को वेतन अदा करने का एक मात्र साधन भू-राजस्व का अनुदान था। इस कारण राजस्व अनुदान व्यवस्था को एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में स्थापित किया गया।भारत में इक्ता लागू करने का एक महत्वपूर्ण कारण में भी था, इससे सुल्तान उपज के अधिशेष का एक बडा भाग प्राप्त कर सकता था।

इक्ता पदाधिकारी(जिन्हें मुक्ता या वली कहा जाता था) खराज तथा अन्य कर वसूल करके अपना तथा अपने सैनिकों का भरण-पोषण करते थे और बची हुई राशि सुल्तान के कोष के लिए भेज देते थे।सुल्तानों ने अमीर वर्ग को नगद वेतन के बदले भरण-पोषण के लिए अक्ता प्रदान किया।पहली खालसा के बाहर प्रान्तीय स्तर की अक्ता तथा दूसरी कुछ गांवों के रूप में छोटी अक्ता। प्रान्तीय स्तर की अक्ताऐं उच्च वर्ग के अमीरों को दी जाती थीं।यदि मुक्ता अन्त तक सक्रिय रूप से सेवारत रहता है तो राजस्व पर उसका अधिकार बना रहना स्वाभाविक था। उसकी मुत्यु के बाद उससे सम्बन्धित अधिकार पुनः राज्य में विलीन हो जाता था।

अक्ता (इक्ता) को सम्पूर्ण जीवनकाल के लिए पेंशन के रूप् में नहीं दिया जा सकता थी। न इक्तादार उसे अपने अधिकार का समर्पण करके अपनी वित्तीय प्रभुसत्ता को खोना चाहता था।बलवन ने अक्तादार के क्रियाकलापों पर चौकसी रखने तथा उन पर नियंत्रण के लिए ख्वाजा की नियुक्ति की।

5.3.2 जजिया

भारत में जजिया का इतिहास सर्वप्रथम मुहम्मद बिन कासिम के सिंध में विजय के पश्चात् 712 ।ण्क्ण् से मिलता है। जजिया कर राज्य में सम्पूर्ण जनता पर न लगाकर केवल गैर-मुसलमानों से वसूल किया जाता था, ताकि उनकी सम्पत्ति एवं सम्मान की रक्षा की जाये। इस कर से महिलाऐं , बच्चे, साधु एवं भिक्षुक मुक्त थे। ब्राह्मण वर्ग भी इस कर से मुक्त था। यह कर निर्धन लोगों से 12 टंके, मध्यम वर्ग से 24 टंके और धनी से 48 टंके प्रति वर्ष के हिसाब से वसूला जाता था। लेकिन फिरोज तुगलक ने ब्राहमणों पर भी जजिया कर लागू कर दिया था।बाबर तथा हुमायूं के काल में दिल्ली सल्तनत से चला आ रहा कर जजिया बनाये रखा गया।

प्रथम बार 1564 में अकबर ने यह कर समाप्त किया।औरंगजेब ने 1679 में जजिया कर पुनः लगाया। उसने इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार कर का निर्धारण किया तथा उसके लिए दिरहम नाम के एक विशेष सिक्के का प्रचलन किया। एक दिरहम 550 ग्रेन चांदी के मूल्य का माना जाता था।34 वर्ष पश्चात् फर्रूखशियर ने अपने ने शासनकाल के प्रथम वर्ष में जजिया समाप्त कर दिया। 1717 में जजिया पुनः लगा दिया गया। 1719 में उसे पुनः हटा दिया गया।अन्त में मुहम्मद शाह के शासनकाल में 1720 में उसे समाप्त कर दिया गया।

5.3.3 जकात

इस्लाम धर्म के मानने वालों में धनी वर्ग के लोगों के लिये जकात देना कुरान के अनुसार आवश्यक है। हनीफी सिद्वान्तों में विश्वास रखने वाले को जकात को धार्मिक कर के रूप में देना आवश्यक है। जकात की वसूली में बल प्रयोग करना धर्म विरूद्व था। जकात एवं सदका दोनों ही धार्मिक कर हैं। जकात वास्तव में सदका ही है। जकात के अंतर्गत सम्पत्ति को पुनः दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष। प्रत्यक्ष करों के अंतर्गत पशु तथा कृषि से प्राप्त उपज और अप्रत्यक्ष में व्यापार की वस्तुएं सोना, चांदी इत्यादि आते थे।सम्पत्ति के विषय में दो शर्तो पर ही जकात देना पडता था। पहली शर्त के अनुसार सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति का पूरे एक वर्ष तक उपभोग करने पर ही वर्ष के अन्त में उसे जकात देना होना था।

दूसरी शर्त के अंतर्गत एक निर्धारित मात्रा से अधिक सम्पत्ति का स्वामी होने पर जकात देना होता था। उस सम्पत्ति की न्यूनतम मात्रा को निसाब कहते थे।आवश्यकता की वस्तुओं पर जकात नहीं देना होता था। इस श्रेणी में निवास, गृह, व्यवहार के वस्त्र, पठन-पाठन में उपयोग की जाने वाली पुस्तकें, अन्न, सेवा कार्य के लिए रखे गये दास आदि आते थे।

सभी प्रकार के वस्तुओं के मूल्य का ½ प्रतिशत आयात-निर्यात कर के रूप में वसूल किया जाता था।परन्तु घोडों के ऊपर 4 प्रतिशत कर लिया जाता था।उल सदका नामक कर का एक अन्य स्रोत है। उल भूमि की उपज के ऊपर कर लगाया जाता था। इस उल कर से वफ्क , मकतब, नाबालिग तथा दासों की सम्पत्ति भी कर मुक्त नहीं हो सकती थी। उल वसूल करने के लिए बल प्रयोग किया जा सकता था। जकात का अर्थ है- शुद्वीकरण। इसका लक्ष्य था धनी मुसलमानों की आय से निर्धन स्वधर्मियों को आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकें। यह कर तभी वसूला जाता था जब यह सम्पत्ति करदाता के पास कम से कम एक साल तक रही हो और उसका मूल्य निश्चित सीमा से अधिक हो। यह कर 2.5 प्रतिशत की दर तक वसूल किया जाता था।

5.3.4 खम्स

हनीफी सिद्वान्तों के अनुसार जब सुल्तान दूसरों के शासक को हटा कर जो धन लाते थे उस पर खम्स लागू होता था।वस्तुतः खम्स लूट का धन था जो युद्व में शत्रु राज्य की जनता से लूट में प्राप्त होता था। लूट का 4/5 भाग राजकोष में जमा होता था।सल्तनत काल में फिरोज तुगलक ही एकमात्र ऐसा शासक था जिसने इस कर को शरीयत के अनुसार वसूल किया।अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने 4/5 राजकोष में दिया और शेष 1/5 सैनिकों में बांटा।

5.3.5 खिदमती

तुर्को के आगमन पर जो लोग बादशाह के काम काज पर अपनी सेवा प्रदान करते थे, उन्हें खिदमती के नाम से जाना जाता था। अधीनस्थ द्वारा अपने उच्च अधिकारियों को दी गई भेंट को खिदमती कहा जाता था। यह प्रचलन दिल्ली के सुल्तानों में देखने को मिलती है

5.3.6 इनाम

लगान से मुक्त भूमि, जिसका कल्याणकारी कार्यों के लिए दान किया जाता था। इस प्रकार की भूमि सुल्तान, राज्य के प्रति किसी की अच्छी सेवा करने पर अपनी खुशी से भूमि भेंट करता था।

5.3.7 जिम्मी

संरक्षित प्रजा, अर्थात् वह लोग जो जजिया देते थे और बदले में राज्य उन्हें जीवन,धर्म और सम्पत्ति की सुरक्षा प्रदान करता था जिम्मी कहलाते थे।

5.3.8 वतन

बहमनी प्रशासन में मराठा सरदारों को प्रदत्त वंशानुगत भू-अनुदान वतन या वतन जागीर कहलाते थे। मुगल प्रशासन में वंशानुगत भू-अनुदान जोकि गुरूमतः राजपूतों को दिये जाते थे, उन्हैं भी वतन जागीर कहा जाता था

5.3.9 अमरम

जो भूमि सैनिकों व असैनिक अधिकारियों को उनकी विशेष सेवाओं के बदले में दी जाती थी अमरम कहलाती थी। उसके ग्रहणकर्ता की अमर नायक कहा जाता था। विजयनगर में सामंतों/ नायकों को प्रदत्त अनुदान भूमि अमरम कहलाती थी।

5.3.10 मदद–ए–माश

भूमिकर मुक्त क्षेत्र के अनुदान की प्रथा प्राचीन काल से प्रचलित है। मुगलकाल में इस तरह के अनुदान देने का अधिकार केवल सम्राट को ही प्राप्त था। इस अनुदान को सामान्य रूप से मदद-ए-माश कहते थे। मुगलकाल में यह अनुदान साधारणतया धार्मिक ग्रन्थों के आचार्य, मुल्ला, मौलवी तथा विद्वानों को दिया जाता था।व्यक्तियों के अतिरिक्त संस्थाओं को भी यह अनुदान दिया जाता था, इसे वक्फ कहा जाता था। तथा उसे पाने वाला गुतबल्ली कहलाता था।

जहांगीर ने मदद-ए-माश के अनुरूप ही अलतमगा नाम से लोगों को जागीरें प्रदान कीं। यह तैमूरी परम्परा पर आधारित था तथा वंशानुगत होता था। इसे अलतमगा नामक मुहर लगाई जाती थी।मदद-ए-माश की भूमि एक स्थान से दूसरे स्थान को साधारणतया स्थानांतरित नहीं की जाती थी तथा जिस व्यक्ति को दी जाती थी उसकी मृत्यु तक उसके पास रहती थी।कालान्तर में यह भूमि वंशानुगत हो गई तथा अनुदान प्राप्त परिवार के उत्तराधिकारियों में बंटने से इसके टुकडे-टुकडे हो जाते थे। भू- राजस्व मुक्त, भू-अनुदान, जीवन-यापन के लिए दी जाने वाली जागीर थी।

5.3.11 शरीयत

इस्लाम धर्म मानने वालों के लिए शरीयत वह कानून एवं रूपरेखा है जिसको मानना प्रत्येक मुसलमान के लिए आवश्यक है।इस्लामी विद्वान जो इसके ज्ञाता होते हैं ,उलेमा कहलाते हैं। सालिक (साधक) अथवा तालिब (विद्यार्थी) के लिए आवश्यक है कि वह शरीयत (इस्लामी नियम) के अनुसार अपने मस्तिष्क को अनुशासित रखे। शरीयत नियम का महत्व तुर्कों के आगमन से प्रारम्भ हो गया था।

5.3.12 हरम

वर्जित स्थान जहां स्त्रियां रहती थीं हरम कहलाता था। मुगल काल में हरम का विशेष चलन था। यहां पर अनेक प्रदेश एवं ईरान, मिस्र की प्रिय कन्याऐं लाकर रखी जाती थी। अकबर के हरम में लगभग 500 स्त्रियां थीं । औरंगजेब के शासन काल में हरम को समाप्त कर दिया था। उसने कहा कि यह इस्लाम में शरीयत के विपरीत है। उसने फरमान जारी कर दिया कि या तो शादी कर लें एवं हरम छोड दें ।

5.3.13 तुर्कान-ए-चहलगानी

तुर्कान-ए-चहलगानी का तात्पर्य था चालीस गुलामों का दल। इल्तुतमिश ने इस दल का गठन किया था। इसे चालीसा भी कहा गया है। बलबन शासक इस गुट को मानने वाला था । बलबन शासक तुर्की के गुट का सदस्य था। प्रारम्भ में वह इल्तुतमिश का खाकयार था जो बाद में इस पद पर पहुंचा।

5.3.14 शहना-ए-मण्डी

खाद्यान्नों की खरीद-फरोख्त के लिए शहना-ए-मण्डी नाम अधिकारी की नियुक्ति बलबन ने की थी। राशनिंग व्यवस्था अलाउद्दीन की नवीन सोच थी। पर्याप्त अनाज उपलब्धता उसकी सैनिक व्यवस्था को लागू करवाने के लिए आवश्यक थी। अलाउद्दीन ने अनाज लगान के रूप लिया तथा राजस्थान के छाईन क्षेत्र से आधी लगान नगद एवं आधी अनाज के रूप में वसूल करवायी। यह व्यवस्था अलाउद्दीन खिलजी के बाजार-नियंत्रण पर आधारित थी।

5.3.15 परदा

स्त्रियों को अलग से परदे में रखने की प्रथा मुस्लिम जगत में आम थी। मुस्लिम शासन काल में भारत में भी पर्दा प्रथा बहुत प्रचलित थी। अकबर ने तो यहां तक फरमान निकाल दिया था कि राज्य में यदि कोई स्त्री बेपरदा मिले तो उसे हरम में ले जाओ।परदा की उत्पत्ति तुर्कों के आगमन के पश्चात् भारत में देखने को मिलती है।

5.3.16 खिलाफत

पैगम्बर साहब, के पश्चात् चार खलीफा आये और उन्होंने इस्लाम धर्म की बागडोर संभाली और उसके बाद शक्ति का केन्द्र तुर्कों में विलय हो गया। भारत में जब तुर्कों का आगमन प्रारम्भ हुआ तो शासक अपने आप को उनसे संबंधित करने लगे। सुल्तान इल्तुतमिश ने भी 1229 में बगदाद के खलीफा की वैधानिक स्वीकृति मांगी थी।

समय के साथ तुर्की की सल्तनत कमजोर होती गयी और उसका तेजी से ह्रास हाने लगा। प्रथम विश्वयुद्व(1914-18) में उसे तो क्षति उठानी पडी उसके फलस्वरूप इस बात का खतरा उत्पन्न हो गया कि वही पूरी तरह समाप्त हो जायेगी। इससे भारतीय मुसलमानों में बडी बेचैनी फैली और उन्होंने 1920 ई0 में एक आन्दोलन शुरू किया, जिसका उद्देश्य इंग्लैण्ड इस बात के लिए जोर डालना था कि वह तुर्की सामा्रज्य तथा खलीफा पद को जोड़ने में हिस्सा न ले। भारतीय मुसलमानों का यह आंदोलन खिलाफत आंदोलन के नाम से विख्यात है। इसमें अलीबंधु शौकत अली तथा मुहम्मद अली खूब चमके। दोनों सुशिक्षित और अच्छे वक्ता थे । वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हो गये, जिसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1920 में असहयोग आन्दोलन आरंभ किया। इस प्रकार खिलाफत आंदोलन के फलस्वरूप भारतीय मुसलमानों को अफगानिस्तान की हिजरत के लिए प्रेरित किया। परन्तु अफगानों ने मुसलमान होते हुए भी अपने भारतीय मुसलमानों भाइयों की हिजरत का स्वागत नहीं किया। तुर्की में कमाज अतातुर्क का उदय हुआ

जिससे तुर्की में नवजागरण का संचार हुआ। 1925 ई0 में तुर्की के सुल्तान को गद्दी से उतार दिया गया। इस प्रकार खिलाफत आंदोलन के नीचे की जमीन ही एक प्रकार से खिसक गयी और इसके बाद आंदोलन शीघ्रता से समाप्त हो गया।

5.3.17 परगना

अनेक गांवों को मिलकर बनायी गयी प्रशासनिक इकाई मध्यकाल में परगना कहलाती थी।सल्तनतकाल में यह इकाई विभिन्न नामों से जानी जाती रही है। इब्नबतूता के अनुसार सौ गांवों के समूह को सदी कहा जाता था।

शेरशाह ने परगना के शासन को सुव्यवस्थित किया तथा प्रत्येक परगने में एक शिकदार एक अमीन, एक खजांची और दो कारकून- एकनागरी लिपि में दूसरा फारंसी लिपि से हिसाब लिखने के लिए नियुक्त किये गये।शिकदार परगना का मुख्य प्रशासक था। उसका काम परगने में शान्ति एवं सुव्यवस्था तथा लगान वसूल करना था और इसके साथ ही परगने में मालगुजारी निर्धारण करना था। परगने का प्रशासनिक कार्य भी यह देखता था।

आमिल परगने का प्रमुख अधिकारी था। इसका प्रमुख कार्य मालगुजारी वसूल करना था। इसके साथी ही परगने का प्रशासनिक कार्य भी देखते थे।शाहजहॉ के शासनकाल में प्रथम बार प्रत्येक परगने में मालगुजारी निर्धारण एक नई इकाई चकला का संगठन किया।आमिल का काम परगने की मालगुजारी निश्चित करना और उसकी वसूली करना था। इस कारण किसानों के साथ उसका निकट सम्पर्क रहता था।खजानदार प्रत्येक परगने में एक होता था। इसका प्रमुख शासनाधिकारी खजानदार या फोतदार कहलाता था।

खजानदार परगने के खजाने के धन के हिसाब- किताब का उत्तरदायी होता था। इसका प्रमुख कार्य परगना के कोष की निगरानी करना तथा यह देखना कि जमा धन सुरक्षित रहे तथा बिना दीवान की अनुमति के खर्च न हो।शेरशाह और अकबर के काल में एक परगने में एक कानूनगो की नियुक्ति होती थी। इसकी नियुक्ति राजाज्ञा द्वारा होती थी । साधारणतया यह पद वंशानुगत हो गया था।

परगना में न्याय का कार्य शिकदार, काजी, कोतवाल द्वारा सम्पादित होता था। शिकदार परगने का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी था। शान्ति सुव्यवस्था के अतिरिक्त वह परगने के फौजदारी मुकदमों का निर्णय करता था।परगने का मुख्य न्यायालय परगना न्यायालय था। इसका मुख्य न्यायाधीश काजी-ए-परगना था। इसकी नियुक्ति राजसी सनद द्वारा होती थी। एक मुफ्ती, एक मुहतसिव-ए-परगना तथा एक दरोग-ए-अदालत काजी की सहायता के लिए नियुक्त थे।

प्रत्येक बड़े गांव एवं महत्वपूर्ण नगर में काजी नियुक्त होता था। काजियों के अधीन मस्जिदों की देख-रेख भी की जाती थी और वे शिक्षा भी दिया करते थे।परगने के लगान सम्बन्धी मुकदमों का निर्णय अमीन आमिल या करोड़ी करता था। परगने के नगर में कोतवाल-ए-परगना रहता था जो साधारण अपराध का निर्णय करता था । मुसलमानों के दीवानी

मुकदमों का फैसला इस्लामी कानून के आधार पर होता था। फौजदारी कानून हिन्दू तथा मुसलमानों के लिए समान था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1- इक्ता

2- खिलाफत

3- परगना

4- जकात

5- मदद-ए-माश

6- जजिया

5.3.18 उलेमा

इस्लाम धर्म में उलेमा को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। मुस्लिम वर्गों में सबसे अधिक प्रभावशाली लोग जो धर्माधिकारी होते हैं उन्हें उलेमा कहते हैं।अलाउद्दीन पहला सुल्तान था जिसने स्वतंत्र नीति अपनायी और उनकी राय की उपेक्षा की। वे विद्वान जो ज्ञान की प्राप्ति में रत रहते थे उन्हें उलेमा और जो राजा के सलाहकार के रूप में चुने जाते थे उन्हें शेखुल इस्लाम कहते थे।उलेमा वर्ग में क्रमबद्व पदाधिकारी मिलते हैं, जिनमें से प्रान्तों में सद्र, मीरअदल, मुफती और काजी की नियुक्ति की जाती थीं। दिल्ली और आगरा धर्माधिकारी कट्टर सुन्नी होते थे, जिनका मुख्य उद्देश्य सम्राट पर अपना प्रभाव बनाये रखना था, उलेमा बहुत शक्तिशाली होते थे। मुस्लिम शासकों में अलाउद्दीन खिलजी और अकबर ने इन्हें नियंत्रित रखा।

उलेमाओं का उत्तरदायित्व था कि राजनैतिक परिवर्तनों की उपेक्षा करते हुए धार्मिक संस्थाओं को ज्यों का त्यों बनाये रखा जाय। एक तरफ उलेमा धार्मिक क्रिया-कलापों में मस्जिदों के निर्माण में और दान की समुचित व्यवस्था में अपना योग देते थे। दूसरी तरफ उन धार्मिक संस्थाओं पर अपने द्वारा नियुक्त किये गये अधिकारियों के माध्यम से नियंत्रण रखते थे।उलेमा का प्रमुख उद्देश्य इस्लामी संप्रदाय की एकता बनाये रखना था। इस कार्य में वे किसी तरह के जातिभेद को स्थान नहीं देते थे और वे अपना कार्य करने में राजनीतिक संस्थाओं से पूर्णतया स्वतंत्र थे। उलेमा का कर्तव्य था कि वे ज्ञान प्राप्त करने में रत रहें और इस्लामी कानून का प्रभाव क्षेत्र बढ़ाये राज्य की तरफ से प्रार्थना व अन्य धार्मिक समारोहों में भी उलेमा की प्रधानता थी। सन्त, धर्माचार्य, सैयद, पीर और उनके वंशज आदि धार्मिक श्रेणी मे कई वर्गों के लोग शामिल थे।

सल्तनतकाल में उलेमा मुस्लिम बहुत प्रभावशाली रहे। वे पैगम्बर के उत्तराधिकारी समझे जाते थे।पैगम्बर साहब का कहना था कि सभी अच्छे बादशाह और अभिजात वर्ग के लोग उलेमा के निवास स्थान पर जाते थे। बादशाह का स्थान उलेमा के बाद आता था।सभी उलेमा का आदर करते थे जिन्हें धार्मिक ज्ञान प्राप्त होता था वह उलेमा कहलाते थें।उलेमा का राजनीति में भाग लेना राज्य के लिए हानिकारक समझा जाता था।

कुरान में उलेमा को मुस्लिम समाज में पृथक श्रेणी में रखा गया है और उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अच्छाई के मार्ग पर चलें इसके अतिरिक्त कुरान में उलेमा वर्ग के लिए व्यवस्था नहीं है।मुहम्मद साहब का निर्देश था कि उलेमा का सम्मान करना चाहिए क्योंकि वे पैगम्बर व अल्लाह का आदर करता हैं ऐसी परिस्थिति में उलेमा के प्रभाव क्षेत्र का विस्तार स्वाभाविक था।

उलेमा दो वर्गों में विभाजित थे, उलेमा-ए-अखरात और उलेमा-ए-दुनिया।उलेमा-ए-अखरात,त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करना पसन्द करते थे।दूसरे उलेमा-ए-दुनिया थे जो राजाओं और विशिष्ट प्रशासनिक अधिकारियों के सम्पर्क में सदैव रहते थे और राजाओं के अच्छे बुरे कार्यों में अपना सहयोग देते थे। लोग इनको अधिक आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे और मुस्लिम समाज की समस्त बुराइयों के लिए इनको उत्तरदायी समझते थे।

प्रमुख उलेमा मौलाना कमालुद्दीन जाहीद को पैगम्बर साहब की परम्पराओं हदीस का अच्छा ज्ञान था। बलवन ने उनसे इमाम के पद पर कार्य करने की प्रार्थना की। जिसको इन्होंने अस्वीकार कर दिया। मौलाना जाहिद ने अपना सारा जीवन हदीस की शिक्षा देने में लगाया।उलेमा को जिन पदों पर नियुक्त किया जाता था वे वंशानुगत नहीं थे परन्तु परम्परागत कुछ परिवार काजियों, मुक्तियों और खातिबों के नाम से जाने जाते थे। शुखूल इस्लाम के परिवार के सदस्य अधिक धन- लोलुप होते थे जिसके कारण वे घृणा के पात्र थे।

उलेमा वर्ग की विशेषता थी कि किसी विषय में वे अपना विचार तब तक प्रकट नहीं करते थे जब तक कि वे उन्हें उस व्यक्ति के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं हो जाती थी। मुस्लिम शासकों ने उलेमा वर्ग से कुछ विद्वानों को मुजक्किर के पद पर नियुक्त किया। ये मुजक्किर रहमान और मुहर्रम के महीनों में तजकीर सभाओं में भाग लेते थे, जो राजदरबार में आयोजित की जाती थी। 13 वीं सदी में उलेमा ने राजनीति में अपने प्रभाव का विकास किया। वे राजनीति में अमीरों के गुटों का अपने स्वार्थ के लिए समर्थन करले लगे। कुतुबुद्दीन ऐबक उलेमा का सम्मान करता था। इल्तुतमिश के शासनकाल में उलेमा राजनीति में सक्रिय हो गये। इल्तुतमिश ने उलेमा को इतना सम्मान दिया जिससे वे दंभी हो गये। सल्तनतकाल में उलेमा ने दिल्ली के सुल्तानों की शक्ति और प्रतिष्ठा बढाने में सहयोग दिया। उलेमा ने दिल्ली के सुल्तानों को पैगम्बर के समान लोगों को आदर देने को कहा। उलेमा ने सुल्तान को पैगम्बर की संज्ञा दी।

5.4 साराशं

उपरोक्त विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत आपको सल्तनत एवं मुगल कालीन भारत में प्रचलित अनेक विचार,संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप इक्ता, खिलाफत, इनाम, वतन, अमरम, जजिया, जकात, खम्स, खराज,मदद-ए-माश,हरम, परगना, तुर्कान-ए-चहलगानी, जिम्मी, शरियत, परदा, उलेमा, खिदमती, शहना ए-मंडी के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते हैं और मध्यकालीन भारत के इतिहास को भली प्रकार समझ सकते हैं।

5.5 तकनीकी शब्दावली

यह इकाई मूलतः संकल्पना, विचार तथा शब्दावली से संबंधित है,आपको इस इकाई में सल्तनत काल एवं मुगल काल में प्रचलित शब्दावली से परिचित कराया गया,अब आप इस इकाई में प्रयुक्त शब्दावली से परिचित हो गये होंगे।

5.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 5.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1के उत्तर के लिए देखिए इकाई 5.3.1 ; 5.3.1.1; 5.3.1.2

इकाई 5.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2के उत्तर के लिए देखिए इकाई 5.3.16

इकाई 5.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 3के उत्तर के लिए देखिए इकाई 5.3.17

इकाई 5.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 4के उत्तर के लिए देखिए इकाई 5.3.3

इकाई 5.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 5के उत्तर के लिए देखिए इकाई 5.3.10

इकाई 5.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 6के उत्तर के लिए देखिए इकाई 5.3.2

5.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1-टी0पी0,ह्राम्स, डिक्शनरी ऑफ इस्लाम

2& MEDIEVAL INDIA - Cultorweb.com
www.cultorweb.com/eBooks/.../Hist%20Dict%20**Medieval_India**.pdf

3& books.google.co.in/books?isbn=8120812506...

5.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1- ब्लाकमैन: आइने अकबरी, द्वितीय संस्करण

2- जे0एन0सरकारः हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द-3

3- अवध बिहारी पाण्डेय: दि फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इण्डिया, कलकत्ता, 1956

4- जे0एल0 मेहता: मध्यकालीन इतिहास, खण्ड-प्एप्प्

5- सतीश चन्द्र: मध्यकालीन इतिहास

6- एस0आर0शर्मा: मध्यकालीन भारत

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1- मध्यकालीन भारत में लगाये गये करों के विषय में चर्चा कीजिए।

इकाई छह

उर्दू, तराना, ठुमरी, गजल, कब्बाली, खयाल, कथक, खड़ी बोली, सती,गोद प्रथा, दास, बुतपरस्त, दोआब, सिलसिला

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

6.3.1 उर्दू

6.3.2 खड़ी बोली

6.3.3 गोद प्रथा

6.3.4 दास

6.3.5 सती

6.3.6 शास्त्रीय विधाऐं

6.3.6.1 ठुमरी

6.3.6.2 कत्थक

6.3.6.3 गजल

6.3.6.4 ख्याल

6.3.6.5 कब्बाली

6.3.6.6 तराना

6.3.7 सिलसिला

6.3.7.1 अन्य सिलसिले

6.3.8 दोआब

6.3.9 बुतपरस्त

6.4 साराशं

6.5 तकनीकी शब्दावली

6.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के उपरांत भारत और विशेषकर उत्तर भारत में शासन व्यवस्था,एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत में आज जो समन्वित संस्कृति मिलती है उसकी शुरूआत इसी काल में हुई। मुगलकाल में समन्वित संस्कृति की अनेक श्रेष्ठ परंपराओं की स्थापना हुयी, सूफी और उनके अनुनायियों तथा भक्तिकालीन संतों ने दो भिन्न-भिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के लोगों को निकट लाने और साथ-साथ रहने के लिए तैयार करने में अहम् भूमिका निभायी थीं।

सल्तनत काल में शासक वर्ग ने मध्य एशिया,ईरान एवं अरब जगत की अनेक परंपराओं, विचारों एवं रीतियों को भारत में प्रचलित किया। इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक नवीन बातों का प्रचलन प्रारंभ हुआ और समाज व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए।

मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन के लिए मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितांत आवश्यक है, इसके अभाव में इस काल के इतिहास को भली प्रकार से समझ पाना कठिन है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपको सल्तनत एवं मुगल काल में प्रयोग की गयी अनेक संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली का विवरण दिया जा रहा है। इन तथ्यों का अध्ययन कर आप मध्यकालीन इतिहास का भली प्रकार अध्ययन कर पायेंगे और इस काल की जानकारी को ठीक तरह से समझ पायेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली के ज्ञान का परिचय देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं

2- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न विचार

3- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न शब्दावली

6.3.0 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

6.3.1 उर्दू

मध्यकाल में तुर्कों एवं मुगलों के भारत आक्रमण के दौरान उनके सैनिकों तथा भारत के स्थानीय व्यापारियों तथा कारीगरों के बीच एक नयी मिली-जुली भाषा का विकास हुआ , जिसमें तुर्की, फारसी,अरबी, अफगानी तथा

तत्कालीन भारत में प्रचलित अवहट्ट या अप्रसंग सभी का समावेश था। इस भाषा को प्रारम्भ में रेखता, दक्कनी तथा हिन्दवी कहा गया जिसे बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा। वास्तव में यह संस्कृत और फारसी दोनों भाषाओं से प्रभावित थी। परन्तु बीसवीं सदी में हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिकता बढ़ने के कारण इसके दो रूप दृष्टिगत होने लगे। प्रथम संस्कृतगर्भित नागरी लिपि में लिखा गया रूप 'हिन्दू' और द्वितीय फारसीगर्भित एवं फारसी लिपि में लिखित रूप 'उर्दू'। उर्दू का व्याकरण पश्चिमी शौरसेनी अप्रभंश पर आधारित है।

उर्दू साहित्य में मसनवी, गजल, कसीदा, मर्सिया (शोकगीत),रेख्ता, नज्म आदि प्रमुख विधाएं दृष्टिगत होती हैं। चौदहवीं शताब्दी मे उर्दू के प्रारम्भिक कवियों में शेख गुंजुल इल्म, ख्बाजा वंदा नवाज, मुकिनी, अहमद आदि प्रमुख थे। सत्रहवीं सदी में मुल्ला वज्ही उर्दू के प्रसिद्व मसनवी रचानकार हुए। इसके पश्चात् गजलों का युग आया। जिसके प्रारम्भिक रचयिताओं में अमीर खुसरो , हाशमी, कुतुबशाह,सरोज आदि उल्लेखनीय हैं। परन्तु वली सर्वप्रसिद्व हुए। उन्हें ''बाबा-ए-रेख्ता'' (रेख्ता का पितामह) कहा गया है।

18 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध उर्दू का स्वर्ण युग था। 18वीं सदी और 19 वीं सदी के प्रारम्भ में उर्दू शायरी नवाबों व अमीरों की जीहजूरी में लीन हो गई।

6.3.2 खड़ी बोली

खड़ी बोली हिन्दी का उद्भव शौरसेनी अप्रभंश से हुआ। परन्तु उसे पश्चिमी हिन्दी एवं पूर्वी हिन्दी की 8 बोलियों का प्रतिनिधि मानने पर उसका उद्भव शौरसेनी तथा अर्धमागधी अपभंश से हुआ माना जाता है। इसका उद्भव काल लगभग 1000 ई0 माना जाता है। प्राचीन हिन्दी या प्रारम्भिक हिन्दी को परिनिष्ठित अप्रभंश से अलग करने के लिए 'अवहट्ट' नाम दिया गया ।

खड़ी बोली के प्रथम उत्थान का आरम्भ श्रीधर पाठक की रचनाओं से तथा द्वितीय उत्थान का पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं से हुआ।आधुनिक काल में हिन्दी में दो नवीन प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं। एक ओर खड़ी बोली में गद्य रचना आरम्भ हुई और दूसरी ओर ब्रज तथा अवधी से हटकर खड़ी बोली में काव्य रचना होने लगी। प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण उपाध्याय, प्रेमधनजी,पं0 अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', वियोगी हरि आदि इस काल के प्रसिद्ध कवि हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी को नवीन आयाम प्रदान किया।

6.3.3 गोद प्रथा

भारत में प्रारंभ से ही गोद प्रथा का प्रचलन मिलता है। भारत में अंग्रेजी राज्य के समय इस नीति पर अंकुश लगाया गया।लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवाद से प्रेरित नीति, जिसके अन्तर्गत पुत्रहीन शासकों के लिए सन्तान गोद लेने से पूर्व कम्पनी की स्वीकृति आवश्यक कर दी गई। इस पर भारत के इतिहास में बहुत चर्चा हुई है। इस के अन्तर्गत सतारा

(1848) लार्ड डलहौजी ने ले लिया और उसके पश्चात गोद प्रथा के रीति- रिवाजों पर रोक लगा कर , हड़प का सिद्धांत के अन्तर्गत सतारा, नागपुर, झांसी इत्यादि ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत सम्मिलित कर लिए गये।

6.3.4 दास

दासप्रथा एक प्राचीन प्रथा रही है, इतिहास में इसका विवरण मिलता है। इसका उल्लेख मेगस्थनीज के लेख में भी मिलता है। लेकिन भारत में दासों का इतिहास तुर्कों के आगमन से मिलता है।

भारत में सर्वप्रथम जिस सल्तनत की स्थापना हुई उसे दास वंश कहा गया है। इसे यामिनी या इलबरी भी कहा जाता था। यामिनी या इलबरी,तुर्कों की खास प्रजाति थी, जिससे पूर्व मध्यकालीन सुल्तान जुड़े थे,जबकि दास सुल्तान उन्हें कहते थे जिन्होंने अपनी योग्यता से शासक पद हासिल किया था।

ऐबक से लेकर फिरोज शाह तुगलक तक इन की संख्या बढती गई लेकिन फिरोज तुगलक के शासन काल में दासों की संख्या 1,80,000 तक पहुंच गई। अकबर दासों को माल कहकर पुकारा करता था।

मुगल काल में भी इनकी व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया। अकबर ने 1562 में दास प्रथा को बन्द करवा दिया था लेकिन बाद के शासकों के समय यह प्रथा पुनः जारी रही।आधुनिक काल तक दासों का प्रचलन रहा लेकिन भारत में लॉर्ड एलिनबरॉ के काल में 1843 में इस प्रथा को सदैव के लिए समाप्त कर दिया गया।

6.3.5 सती

सती का विवरण ऋग्वेदिक काल से मिलता है। प्राचीन भारत में यह प्रथा प्रचलन में थी । सुल्तानों के शासनकाल में भी यह प्रथा प्रचलित रही थी लेकिन इसको रोकने की मुहम्मद तुगलक के अतिरिक्त किसी ने कोशिश नहीं की।

हिन्दुओं में सती प्रथा का प्रचलन था। पति की मृत्यु के बाद स्त्री अपने पति की चिता के साथ अपने को जला देती थी। यह कई प्रकार का होता था। सहभरण, अनुसरण, सहगमन तथा अनुगमन। इब्नबतूता के अनुसार धर्म के आधार पर ब्राहमण सती के लिए प्रोत्साहित करता था डा0 अशरफ के अनुसार हिन्दु समाज में विधवाओं की उपेक्षा के कारण स्त्रियां पति की मृत्यु के बाद सती हो कर अपने शरीर का त्याग कर देती थीं।

अबुल फजल के अनुसार सती होने के लिए उनके परिवार वाले बाध्य करते थे। कुछ लोक लज्जा के कारण जल कर भस्म होना चाहती थीं। अधिकांश रीति- रिवाज के कारण सती होना स्वीकार करती थीं।

इब्नबतूता के अनुसार सती होने से पूर्व सरकार की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य था। हूमायूं तथा अकबर ने सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

19 वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय तथा अन्य समाज सुधारकों के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप यह कुप्रथा समाप्त हो गई।

सती होने वाली स्त्रियों के सम्मान में पाषाण स्मारक लगाये जाते थे जिन्हें सती मन्दिर भी कहा जाता था। बदांयूं में तो ये स्मारक आसानी से देखे जा सकते थे। इल्तुतमिश ने भी इस पर प्रतिबन्ध लगाने का अथक प्रयास किया परन्तु असफल रहा। इस प्राचीन व्यवस्था को अंग्रेजों के शासनकाल में 1829 में अधिनियम के अनुसार समाप्त करके रोक लगा दी गई।

6.3.6 लोक–शास्त्रीय विधाऐं

मध्यकाल में अनेक लोक-शास्त्रीय विधाओं का विकास हुआ जो आज भारतीय कलाओं में प्रमुख स्थान रखती हैं, इनका संक्षिप्त विवरण अग्रांकित है-

6.3.6.1 ठुमरी

ठुमरी गायन का प्रचार लखनऊ में वाजिद अली शाह के समय हुआ। वाजिद अली शाह ने स्वयं अख्तर पिया के नाम से अनेक ठुमरियां रची हैं। अन्य रचनायें इस क्षेत्र में कदरपिया, सकनपिया, ललनापिया, चांदपिया, फजल हुसैन आदि के नामों से हुई है। लखनऊ के वाजिद अली शाह के बाद ठुमरी का प्रचार मौजुद्दीन खां ,मैमा गनपत राव, बिन्दादीन महाराज आदि द्वारा हुआ। ठुमरी की प्रमुख भूमिकाओं में जयपुर की गोरखी बाई, लखनऊ की पीरबाई , कलकत्ते की मोहरजान आदि खूब प्रसिद्व हुंइ । मियां मौजुद्दीन खां ठुमरी के शहंशाह कहलाते थे।

उत्तर में मुख्यतः ठुमरी गायन की दो शैलियां प्रचलित हैं।

1 पूरब की ठुमरी 2. पंजाबी ठुमरी

लखनऊ तथा बनारसी शैलियों के अन्तर्गत छोटी-छोटी मुरकियां, धीमी लय, बोल-तान तथा बोल अलापी की विशेषतायें हैं। लखनऊ की ठुमरियों में अधिकतर शायरी और गजलों का आनन्द अधिक आता है। आधुनिक समय में पूर्वी अंग की ठुमरियों के लिए काशी की रसूलन बाई तथा लखनऊ(फैजाबाद) की बेगम अख्तर, अख्तरी बाई अधिक प्रसिद्व हैं।

पंजाबी ठुमरियों पर ठप्पा अंग का विशेष प्रभाव पडा है। साथ ही पंजाबी लोक गीतों का प्रभाव भी इन ठुमरियों में दिखलाई पडता है। स्वर का लगाव, सुन्दर मुरकियों का प्रयोग तथा टप्पा गायन की पेंचदार तानों का कलात्मक प्रयोग, इन गायन की विशेषतायें हैं। इन भाग के प्रमुख गायक बडे गुलाम अली खां, आशिक अली खां इत्यादि।

इन दो घरानों के अतिरिक्त ठुमरी के अन्य प्रसिद्व गायक हुए हैं , जो ख्याल गायन के विभिन्न घरानों से सम्बन्ध रखते हैं। सबसे प्रमुख घराना किराना घराने के स्व0 अब्दुल करीम खां थे जिनकी ठुमरियों ने लोगों का मन मोह लिया था। खां साहब के ठुमरी गाने का ढंग निराला था, अति मधुर था। इनकी शैली को अपनाने वाले कलाकार हीराबाई बडोदकर, सरस्वती राने, बहरे बुआ इत्यादि प्रमुख हैं।

आगरा घराने के ख्याल-गायक सुप्रसिद्व फैय्याज खां साहब भी ठुमरियां गाते थे, परन्तु ख्याल-गायक होने के कारण उनका इस क्षेत्र में कोई विशेष स्थान नहीं था।

6.3.6.2 कत्थक

कत्थक शब्द कथा से निकला है। कत्थक नृत्य की उत्पत्ति उत्तर भारत के मन्दिरों के पुजारियों द्वारा महाकाव्यों की कथा बांचते समय स्वांग और हाव-भाव प्रदर्शन के फलस्वरूप विकसित होता गया। 15वीं और 16वीं शताब्दी में राधा-कृष्ण उपाख्यानों या रासलीला की लोकप्रियता से कथक का और विकास हुआ। मुगल शासकों के काल में यह मन्दिरों से निकलकर राज-दरबारों में पहुंचा। जयपुर, बनारस, राजगढ़ तथा लखनऊ इसके मुख्य केन्द्र थे। लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के काल में कत्थक अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। बीसवीं सदी में लीला सोखे (मेनका) के प्रयासों से यह और अधिक लोकप्रिय हुआ।

यह अत्यन्त नियमबद्व एवं शुद्ध शास्त्रीय नृत्य शैली है। जिसमें पूरा ध्यान लय पर दिया जाता है। नृत्य के आधार पर लयों की अवस्थाओं को तत्कार, पलटा ,तोड़ा, परन तथा आमद के नाम से जाना जाता है। इस नृत्य शैली में पैरों की थिरकन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस नृत्य में घुटने नहीं मुड़ते।

इसके कलाकरों में प्रमुख हैं- बिन्दादीन महाराज, बिरजू महाराज, सुखेदव महाराज, नारायण प्रसाद, देवी , गोपीकृष्ण, शोभना नारायण, मालविका सरकार, भारती गुप्ता, दयमंती जोशी, चन्द्र लेखा आदि।

6.3.6.3 गजल

प्रायः प्रेम को मुख्य विषय-वस्तु मानकर उर्दू रचनाओं को गाने की यह एक मधुर शैली है। इन रचनाओं में 5-13 शेर होते हैं। जो एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। कुछ विद्वान गजलों का जनक मिर्जा गालिब को मानते हैं। गजल रचनाकारों में गालिब के अलावा जफर, शाहिर लुधियानवी, कैफी आजमी आदि प्रसिद्ध हैं। जबकि इसके गायकों में मेंहदी हसन, गुलाम अली, जगजीत सिंह, बेगम अख्तर आदि उल्लेखनीय हैं।ये एक लोकप्रिय विधा है।

6.3.6.4 ख्याल

ख्याल एक स्वर-प्रधान गायक शैली है जो वर्तमान समय में हिन्दुस्तानी संगीत की सर्वाधिक लोकप्रिय गायन शैली है। 15वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जौनपुर के सुल्तान शाह शर्की को ख्याल का अविष्कारक माना जाता है, परन्तु कुछ विद्वान इसका श्रेय अमीर खुसरों को देते हैं। मध्यकाल में ख्याल लोक संगीत के अन्तर्गत गाया जाता था। इसे शास्त्रीय स्वरूप प्रदान करने का श्रेय 18वीं सदी में सदानंद नियामत खॉ को दिया जाता है। ब्रजभाषा, राजस्थानी, पंजाबी ,हिन्दी भाषाओं में गाये जाने वाले ख्याल की विषय-वस्तु, राजस्तुति, नायिका वर्णन, श्रृंगार रस सम्बन्धी परिस्थितियों तथा विवाह प्रसंग आदि होते हैं।

ख्याल गाने से पूर्व अलाप नहीं लिया जाता । प्रारम्भ में इसमें तान का प्रयोग नहीं होता था, परन्तु अब इसका प्रयोग होने लगा है। अब तो सरगम का भी प्रयोग होने लगा है। ख्याल के दो खण्ड होते हैं, स्थायी और अन्तरा। स्थायी में शब्द अपेक्षाकृत बहुत कम रखे जाते हैं, इसमें खटके, मुरली आदि लघु अलंकरणों का प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता है। ख्याल गायकों में सदारंग, अदारंग, मनरंग, मुहम्मद शाह रंगीले, कुमार गंधर्व आदि प्रमुख हैं। ख्याल गायन की चार प्रमुख शैलियां हैं, जिन्हें घराना कहा जाता है।

1 ग्वालियर घराना, जो ख्याल गायकी का जन्मदाता है। इस शैली या घराने में ध्रुपद की बोल बांट की सभी विशेषतायें प्रचलित हैं

2 किराना घराना जो अलाप प्रधान बोल तान कम और ताल की अपेक्षा गीत के प्रति विशेष लगाव न होना तथा सिर्फ मुखड़ा पकड़कर ही गा लेना आदि विशेषताएं दर्शाता है।

3 पटियाला घराना, जिसमें ठुमरी अंग की प्रधानता , स्वर की सत्यता, तानों की सफाई और तैय्यारी आदि विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं।

4 आगरा घराना , जिसमें रंगीलापन, धुपद के समान ही बंदिश के नोम् तोम अलाप तथा लयकारी की प्रधानता आदि गुण दिखाई पड़ते हैं।

6.3.6.5 कब्बाली

यह भी उर्दू शायरी की संगीतमय अभिव्यक्ति की एक लोकप्रिय शैली है। प्रायः सूफी संतों द्वारा सामूहिक रूप से या एकल रूप से ईश्वर की आराधना हेतु यह गायी जाती थी। आज इनकी विषय वस्तु में अन्य सांसारिक तत्व भी शामिल हो गय हैं। भारत में तुर्कों के आगमन के पश्चात कब्बाली का प्रारंभ मिलता है।हजरत शेख निजाम उद्दीन औलिया कब्बाली में अत्यन्त रूचि लेते थे। इनके खिदमती अमीर खुसरो अपने शेख को प्रसन्न करने के लिए कब्बाली की महफिल सजाते थे और अपने शेख को ईश्वर की तपस्या में विलीन करते थे।

6.3.6.6 तराना

यह एक कर्कश प्राकृतिक राग है। इसमें अर्थहीन शब्दों की रचना होती है। कुछ संगीत विद्वानों का विचार है कि यह राग अरबी एवं फारसी का ही एक खण्ड है, जबकि कुछ संगीतज्ञों का मत है कि यह तबला और सितार के आघात से उत्पन्न हुआ है। जो भी हो इसमें श्रोता में उल्लास की उत्तेजना उत्पन्न होती है। इस शैली का श्रीगणेश अमीर खुसरो ने किया। अलामा इकबाल का तराना बहुत प्रसिद्व है- सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।

6.3.7 सिलसिला

भारतीय परिप्रेक्ष्य में सूफीमत का विकास मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ होता हैं। थोडे ही समय में सिलसिला तथा खानखाह का विस्तार मुल्तान से लखनौती तथा पंजाब से देवगिरी तक हो गया।

आइने-अकबरी में अबुल-फजल ने चौदह प्रकार के सूफी-सिलसिलों का उल्लेख किया है। इनमें चिश्ती, सुहरावर्दी और कादरी सिलसिला प्रमुख हैं।

6.3.7.1 अन्य सिलसिले

1. 15वीं शताब्दी में भारत में शेख अब्दुल्ला शत्तारी ने शत्तारी सिलसिला की स्थापना की

2. कलन्दरी सम्प्रदाय में घुमन्तु फकीर शामिल थे ।ये निन्दनीय थे, क्योंकि सामाजिक व्यवहारों का पालन नहीं किया करते थे।

3. 15वीं-16वीं शताब्दी में कश्मीर में सूफीमत का ऋषि सम्प्रदाय स्थापित हुआ?

4. शेख नुरूद्दीन बली (मृ0 1430) द्वारा स्थापित ऋषि सम्प्रदाय मूलतः स्वदेशी था।

5. ऋषि सम्प्रदाय कश्मीर के ग्रामीण परिवेश में फला-फूला।

6. ऋषि सम्प्रदाय की लोकप्रियता का कारण उसका ग्रामीण परिवेश था।

6.3.8 दोआब

गंगा और यमुना के बीच के क्षेत्र को दोआब कहते हैं। भारत के इतिहास में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक प्रत्येक शासक की निगाहें इस क्षेत्र पर गई। क्योंकि यह उपजाऊ क्षेत्र था। यहां कृषि का उत्पादन अधिकतम रहा है और प्रत्येक शासक ने अपने राज्य की आर्थिक व्यवस्था ठोस करने के लिए अनेक प्रकार के नियम कृषकों के लिए बनाये ताकि कृषि का उत्पादन अधिक हो एवं अधिक लोगों को लाभ हो।

6.3.9 बुतपरस्त

मनुष्य के द्वारा भगवान की कल्पनाओं को पत्थर के सांचे मे ढालकर मूर्ति का निर्माण करना और उसे साकार मानकर उसकी पूजा अर्चना करना बुतपरस्ती कहलाता है।

तुर्कों के भारत आगमन के पश्चात् जब उन्होंने भारत में इस तरह की बुत को पूजने के भिन्न-भिन्न तरीके देखे तो उसे उन्होने बुतपरस्ती की संज्ञा देना आरम्भ कर दिया।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1- उर्दू

2- ठुमरी

3- सती

4- कथक

5- ख्याल

6- सिलसिला

6.4 साराशं

उपरोक्त विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत आपको सल्तनत एवं मुगल कालीन भारत में प्रचलित अनेक विचार,संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप इक्ता, खिलाफत, इनाम, वतन, अमरम, जजिया, जकात, खम्स, खराज,मदद-ए-माश,हरम, परगना, तुर्कान-ए-चहलगानी, जिम्मी, शरियत, परदा, उलेमा, खिदमती, शहना ए-मंडी के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते हैं और मध्यकालीन भारत के इतिहास को भली प्रकार समझ सकते हैं।

6.5 तकनीकी शब्दावली

यह इकाई मूलतः संकल्पना, विचार तथा शब्दावली से संबंधित है,आपको इस इकाई में सल्तनत काल एवं मुगल काल में प्रचलित शब्दावली से परिचित कराया गया,अब आप इस इकाई में प्रयुक्त शब्दावली से परिचित हो गये होंगे।

6.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 6.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1के उत्तर के लिए देखिए इकाई 6.3.1

इकाई 6.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2के उत्तर के लिए देखिए इकाई 6.3.6.1

इकाई 6.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 3के उत्तर के लिए देखिए इकाई 6.3.5

इकाई 6.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 4के उत्तर के लिए देखिए इकाई 6.3.6.2

इकाई 6.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 5के उत्तर के लिए देखिए इकाई 6.3.6.4

इकाई 6.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 6के उत्तर के लिए देखिए इकाई 6.3.7; 2.3.7.1

6.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत का इतिहास- आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव

2. मध्यकालीन भारत, सल्तनत से मुगलों तक- सतीश चन्द्रा जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

3. मध्यकालीन भारत, 8 वीं से 18 वीं शताब्दी तक एक सर्वेक्षण इम्त्याज अहमद नेशनल पब्लिकेशन, खजांची रोड, पटना।

4. मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, डा0 कन्हैया लाल श्रीवास्तव एवं झारखण्ड चौबे।

5. टी0पी0,ह्राम्स, डिक्शनरी ऑफ इस्लाम

2& **MEDIEVAL INDIA** - Cultorweb.com
www.cultorweb.com/eBooks/.../Hist%20Dict%20**Medieval_India**.pdf

3& books.google.co.in/books?isbn=8120812506**...**

6.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-टी0पी0,ह्राम्स, डिक्शनरी ऑफ इस्लाम

2& **MEDIEVAL INDIA** - Cultorweb.com
www.cultorweb.com/eBooks/.../Hist%20Dict%20**Medieval_India**.pdf

3& books.google.co.in/books?isbn=8120812506**...**

4- ब्लाकमैन: आइने अकबरी, द्वितीय संस्करण

5- जे0एन0सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द-3

6- अवध बिहारी पाण्डेय: दि फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इण्डिया, कलकत्ता, 1956

7- जे0एल0 मेहता: मध्यकालीन इतिहास, खण्ड-III

8- सतीश चन्द्र: मध्यकालीन इतिहास

6- एस0आर0शर्मा: मध्यकालीन भारत

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1- मध्यकालीन भारत में प्रचलित संगीत गायन पर चर्चा कीजिए।

इकाई सात

मनसब, मुगल, तुर्क, मंगोल, मेहराब, गुम्बद , दस्तूर, खालसा-भूमी , काजी, सुलहकुल, इबादत्खाना , दहसाला प्रणाली , सयूरघाल

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

7.3.1 मनसब

7.3.1.1 मनसब प्राप्त करने वाले मनसबदार की श्रेणी

7.3.2 मुगल

7.3.3 तुर्क

7.3.4 मंगोल

7.3.5 मेहराब

7.3.6 गुम्बद

7.3.7 दस्तूर

7.3.8 खालसा

7.3.9 काजी

7.3.10 सुलह-कुल

7.3.11 इबादतखाना (पूजा-गृह)

7.3.12 दहसाला प्रणाली

7.3.13 सयूरघाल

7.4 साराशं

7.5 तकनीकी शब्दावली

7.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के उपरांत भारत और विशेषकर उत्तर भारत में शासन व्यवस्था,एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत में आज जो समन्वित संस्कृति मिलती है उसकी शुरूआत इसी काल में हुई। मुगलकाल में समन्वित संस्कृति की अनेक श्रेष्ठ परंपराओं की स्थापना हुयी, सूफी और उनके अनुनायियों तथा भक्तिकालीन संतों ने दो भिन्न-भिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के लोगों को निकट लाने और साथ-साथ रहने के लिए तैयार करने में अहम् भूमिका निभायी थीं।

सल्तनत काल में शासक वर्ग ने मध्य एशिया,ईरान एवं अरब जगत की अनेक परंपराओं, विचारों एवं रीतियों को भारत में प्रचलित किया। इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक नवीन बातों का प्रचलन प्रारंभ हुआ और समाज व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए।

मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन के लिए मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितांत आवश्यक है, इसके अभाव में इस काल के इतिहास को भली प्रकार से समझ पाना कठिन है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपको सल्तनत एवं मुगल काल में प्रयोग की गयी अनेक संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली का विवरण दिया जा रहा है। इन तथ्यों का अध्ययन कर आप मध्यकालीन इतिहास का भली प्रकार अध्ययन कर पायेंगे और इस काल की जानकारी को ठीक तरह से समझ पायेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली के ज्ञान का परिचय देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं

2- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न विचार

3- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न शब्दावली

7.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

7.3.1 मनसब

अरबी भाषा के शब्द मनसब का शाब्दिक अर्थ है पद अथवा श्रेणी। मनसबदारी व्यवस्था की उत्पत्ति मध्य एशिया से मानी जाती है, जिसे सर्वप्रथम बाबर द्वारा उत्तर भारत में लाया गया परन्तु इस व्यवस्था को संस्थागत रूप देने का पूरा श्रेय अकबर को दिया जाता है। अकबर की मनसबदारी व्यवस्था मंगोल नेता चंगेज खां की दशमलवी प्रणाली पर आधारित थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत इन व्यक्तियों को एक पद मिलता था जो शाही सेवा में होते थे। काजी और सद्र के अतिरिक्त सभी उच्चाधिकारियों को सैन्य कार्यवाही में हिस्सा लेना होता था।

मनसब प्रदान किये जाने का प्रथम उल्लेख अकबर के शासन काल के ग्यारहवें वर्ष में मिलता है। 1593 तक केवल जात का प्रयोग किया जाता था , किन्तु 1594 में जात के साथ सवार का पद भी जुड़ गया। जात का अर्थ सैनिक पद से है तथा सवार का अर्थ घुड़सवारों की संख्या से , जो मनसबदार को रखने पड़ते थे। मनसबदार का यह पद तीन श्रेणियों में विभाजित था। प्रथम श्रेणी में मनसबदार को अपने जात पद के बराबर ही सैनिकों की व्यवस्था करनी पडती थी। जैसे 5000/5000 जात तथा सवार, दूसरी श्रेणी में मनसबदार को अपने जात पद से कुछ कम या आधे घुड़सवार सैनिकों की व्यवस्था करनी पड़ती थी, जैसे 5000/3000 जात और सवार तीसरी श्रेणी में मनसबदारों को अपने जात पद से आधे से भी कम घुडसवारों सैनिको की व्यवस्था करनी होती थी; जैसे 5000/2000 जात और सवार।

मुगलकालीन सैन्य व्यवस्था का आधार मनसबदारी व्यवस्था थी। सैनिक अधिकारी मनसबदार कहलाते थे। सबसे छोटा मनसब 10 और सबसे बडा 10 हजार का होता था। 5 हजार से अधिक का मनसब राजकुमार को ही मिलता था। किन्तु बाद में राजा मान सिंह को 7 हजार का मनसब मिला। मनसबदार स्वयं अपनी सेना की भर्ती किया करते थे। साधारणतः ये अपनी जाति के सैनिक भर्ती करते थे। मनसबदार के घोड़ों को दागा जाता था। प्रत्येक घोडे के दायें पुट्ठे पर सरकारी निशान तथा बाएं पुट्ठे पर मनसबदार का निशान लगाया जाता था। मनसबदारों को शाही खजाने से वेतन दिया जाता था।

1 मनसबदारों में बहुत से विदेशी , तुर्क , ईरानी , अफगानी और भारतीय राजदूत थे।

2 सवार इस बात का द्योतक था कि मनसबदार के अधीन एक निश्चित संख्या में घुड़सवार हैं।

3 मनसबदारी व्यवस्था में तीन श्रेणियॉ थी- प्रथम, द्वितीय, तृतीय।

4 एक मनसबदार प्रथम श्रेणी में तभी आ सकता था जब उसका सवार और जात दर्जा एक समान होता था; यथा- (5000 जात और 5000 सवार)

5 यदि उसका सवार का दर्जा जात से कम होता था, किन्तु आधे से कम नहीं, तब वह द्वितीय श्रेणी का मनसबदार होता था।

6.यदि उसका सवार का दर्जा ,जात दर्जे के आधे से कम होता था या सवार दर्जा बिलकुल नहीं होता था तब वह तृतीय श्रेणी का मनसबदार होता था।

7.3.1.1 मनसब प्राप्त करने वाले मनसबदार की श्रेणी

10 से 500 मनसबदार केवल मनसबदार कहलाते थे।

500 से 2500 मनसबदार ,अमीर कहलाते थे।

2500से अधिक के मनसबदार अमीर-ए-उम्दा अथवा अमीर-ए-आजम कहलाते थे।

मनसबदार को वेतन नकद व जागीर दोनों में दिया जाता था। मनसबदारों की मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। इन्हें प्राप्त जागीरें एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्नरित की जाती थीं। कुछ बढ़े पदाधिकारियों को स्थायी जागीरें भी दी गयीं थी ,जिन्हें वतन जागीर कहते थे। वह वर्ग जो सरकारी विभागों में कार्यरत था परन्तु मनसबदार नहीं था, उसे रोजिनदार कहा जाता था। इन्हें दैनिक वेतन दिया जाता था। अकबर के समय में 1595 के लगभग कुल 1803 मनसबदार थे जो औंरगजेब के समय में 14449 तक पहुंच गये।

7.3.2 मुगल

मुगल दो महान शासक वंशों के वंशज थे। माता की ओर से वे चीन और मध्य एशिया के मंगोल शासक चंगेज खान (जिसकी मृत्यु 1227 में हुई) के उत्तराधिकारी थे। पिता की ओर से वे ईरान, इराक एवं वर्तमान तुर्की के शासक तैमूर (जिसकी मृत्यु 1404 में हुई) के वंशज थे। परन्तु मुगल अपने को मुगल या मंगोल कहलवाना पसन्द नहीं करते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि चंगेज खान से जुड़ी स्मृतियां सैकड़ों व्यक्तियों के नरसंहार से सम्बन्धित थीं। यही स्मृतियां मुगलों के प्रतियोगियों उजबेगों से भी सम्बन्धित थीं। दूसरी तरफ मुगल तैमूर के वंशज होने पर गर्व का अनुभव करते थे , इसलिए क्योंकि उनके इस महान पूर्वज ने 1398 में दिल्ली पर कब्जा कर लिया था।

मध्यकालीन भारत के इतिहास में मुगल शब्द उस जाति से सम्बन्धित है जिनका अपना एक नवीन इतिहास है। chingez khan (चंगेज खान) प्रसिद्व मंगोल (विश्व आक्रमण) के द्वितीय पुत्र (चकताई) तुर्कों से जो शाखा आगे बढी उन्हें इतिहास में मुगल के नाम से जाना जाता है। भारत में 1526 से मुगलों का इतिहास प्रारम्भ होता है। बाबर के पिता चगताई थे और माता का चंगेज खान के परिवार से सम्बन्ध था।

7.3.3 तुर्क

तुर्क लोग विशाल हूण जाति की एक शाखा थे जो मध्य एशिया के भारतीय उपनिवेशों के सम्पर्क में आने के कारण उन्होंने बौद्व धर्म को स्वीकार कर लिया था। नवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अरबों के साम्राज्य पर तुर्कों के आक्रमण शुरू हो गये और कुछ समय में ही ईरान और मेसोपोटामिया के प्रदेशों को जीत लिया गया।

तुर्कों ने ईरान और मैसोपोटामियां के मुसलमानों के सम्पर्क में आकर इस्लाम को स्वीकार कर लिया। अरब साम्राज्य का विनाश कर तुर्कों ने अपने तीन मुख्य राज्य कायम किये थे। इनमें से एक राज्य गजनी था।

भारतीय इतिहास के साथ गजनी के तुर्क राज्य का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। इसका संस्थापक सबुक्तगीन था। दसवीं सदी के मध्य भाग में उसने गजनी में अपने राज्य की नींव डाली और फिर पूर्व की ओर अपनी शक्ति का विस्तार शुरू किया।

7.3.4 मंगोल

मंगोल चीन के उत्तरी प्रदेशों के निवासी थे। चंगेज खां जाति से मंगोल था। उन्हीं के नाम से यह प्रदेश मंगोलिया कहलाता है। इनका मुख्य व्यवसाय शिकार और पशुपालन थे। उनकी कोई बस्तियां व नगर नहीं होती थीं। वे डेरों में निवास करते थे, और घोड़ों के दूध व मांस से अपना भरण-पोषण करते थे।

मंगोलो में संगठन का अभाव था। वे अनेक कबीलों में विभक्त थे। जो बहुधा आपस मे लडते रहते थे। बारहवीं सदी के अन्तिम काल में चंगेज खां का उदय नेता के रूप में हुआ। मंगोल लोगों में खान, खां, या का-हान शब्द सम्मान सूचक था। बाद में अन्य अनेक जातियों ने इस शब्द को अपना लिया। चंगेज के साथ खां तथा खान लगा होने से उसे मुसलमान नहीं समझना चाहिए। वह इस्लाम का अनुयायी नहीं था अपितु मंगोलों के पुराने धर्म का अनुयायी था, जिसमें विविध देवी-देवताओं की पूजा को प्रमुख स्थान प्राप्त था। मंगोलो का भारत में पहला आक्रमण 1296 में हुआ था। जफर खां ने विद्रोहियों को परास्त किया। 1297 में सलदी के नेतृत्व में मंगोलों ने दूसरा आक्रमण किया। पुनः जफर खां ने उन्हें परास्त किया।

1299 ई0 के अन्त में दवा खां ने अपने पुत्र कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में सेना भेजी। अलाउद्दीन अपनी सेना लेकर कीली के मैदान में पहुंच गया। स्वयं सुल्तान और नुसरत खां सेना के मध्य में उलुग खां वामपक्ष पर और जफर खां दाहिने पक्ष पर था। जफर खां के आक्रमण से मंगोलो का वामपथ टूट गया और वे भाग खडे हुए।मंगोलो का चौथा आक्रमण उस समय हुआ जबकि 1303 में अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ से वापस लौटकर दिल्ली पहुंचा ही था।1305 ई0 में अलीबेग और तार्ताक के नेतृत्व में मंगोलो ने आक्रमण किया। मलिक काफूर और गाजी मलिक ने मंगोलों को परास्त किया।1306 में मंगोलों ने फिर आक्रमण किया। मलिक कपूर ने सबको परास्त किया । मंगोल भाग गये।

अलाउद्दीन के समय मंगोलो ने सर्वाधिक आक्रमण किये। लेकिन अलाउद्दीन ने कठोर कदम उठाये और विशाल सेना का प्रबन्ध किया। उसके पश्चात मंगोल का भारत पर आक्रमण समाप्त हो गये।

7.3.5 मेहराब

मेहराब की कला भारत में पहली मस्जिद, कुव्वत-उल-इस्लाम जो कुतुब मीनार के समीप है, उसमें देखने को मिलती है। यह तकनीक-कला मध्य एशिया से भारत में तुर्क ले कर आये। मुगलकालीन स्थापत्य कला में मेहराबों का प्रयोग किया गया है। सल्तनत एवं मुगलकालीन अनेक इमारतों में मेहराब का प्रयोग मिलता है।

7.3.6 गुम्बद

गुम्बद की कला भी तुर्को के आगमन के पश्चात भारत में देखने को मिलती है। गुम्बद इमारत के केन्द्र में चाहे वह मस्जिद हो या मजार ठीक उसके ऊपर बनाया जाता है। भारत में प्रथम गुम्बद हुशंग शाह के मकबरे में देखने को मिलता है जिसका निर्माण महमूद खिलजी ने सम्पूर्ण किया। विश्व में सबसे विशाल गुंबद आदिल शाह के मकबरे बीजापुर में देखने को मिलता है। गुंबद एक चौकोर संरचना के ऊपर बना उत्तल छत भवन में अष्टकोणीय या वृत्ताकार स्थान होता है।

7.3.7 दस्तूर

राजस्व निर्धारक राजस्व मंत्रालय द्वारा 1574-81 में मालगुजारी और मूल्य को जोडकर उसमे 10 का भाग देकर औसत निकाल लिया जाता था और इसी औसत के आधार पर राज्य की सालना नकद माल गुजारी निश्चित कर दी जाती थी जिसे दस्तूर कहते थे। ये प्रथा अकबर के शासनकाल में टोडरमल द्वारा दहसाला प्रणाली के अर्न्तगत लागू की गई थी। अकबर के शासनकाल में राजस्व निर्धारण की दरों की सूची निर्मित की गयी थी।विभिन्न क्षेत्रों को उनकी उत्पादकता और मूल्यों के आधार पर राजस्व की दृष्टि से दस्तूर प्रखण्डों अर्थात् राजस्व क्षेत्रों में विभक्त किया गया था।प्रत्येक दस्तूर में ही फसल का प्रति बीघा कर निर्धारण नकद धन के रूप में होता था।जाब्ती में प्रत्येक फसल के लिए दस्तूर-उल-अमल या दस्तूर के नाम से जाता जाने वाला नकद राजस्व निर्धारित किया जाता था। जाब्ती व्यवस्था में निर्धारित दस्तूर के कारण पदाधिकारी अपनी मनमानी नहीं कर पाते थे। स्थायी दस्तूर के बाद भू-राजस्व की मांग की अनिश्चितता और उतार-चढ़ाव में बहुत कमी आ गई थी।

7.3.8 खालसा

खालसा भूमि ऐसी भूमि थी जिसके भू-भाग का प्रबन्ध केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता था । इसका लगान सीधे राजकोष में जमा होता था । खालसा भूमि को प्रशासन में भाग लेने वाले उच्च पदाधिकारियो को भी प्रदान किया जाता था इस भूमि पर उपज का 1/2 भाग लगान लिया जाता था।

वह भूमि जो व्यक्तियों को दान के रूप में दी जाती थी । जैसे मिल्क, वक्फ, इनाम जिस पर राज्य कोई लगान नहीं लेता था। वह जमीन जोकि अधीनस्थ हिन्दू राजाओं के आधिपत्य में थी।1582 में भू-राजस्व के लिए खालसा भूमि को

चार भागों में विभाजित कर दिया और उन्हें एक योग्य राजस्व अधिकारी के अन्तर्गत रख दिया गया। भू राजस्व के व्यवस्थित होने से दीवान का स्थान महत्वपूर्ण हो गया।

खालसा भूमि जिसकी आय शाही कोषगार में जमा की जाती थी, का प्रयोग राजा एवं राजा के परिवार के खर्चों पर, राजा के अंगरक्षक व निजी सैनिकों के खर्चों पर तथा युद्व की तैयारी आदि पर खर्च किया जाता था। इस भूमि के अन्तर्गत मुगल साम्राज्य की कुल भूमि का 20 प्रतिशत हिस्सा आता था।

7.3.9 काजी

यह न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। प्रायः यह पद सद्र-उस-सुदूर को ही दे दिया जाता था। इसके न्यायालय से बड़ा सुल्तान का न्यायालय होता था। किन्तु राज्य का मुख्य काजी होने के नाते वह मुकदमों की सुनवाई तथा निर्णय दिया करता था। उसमें निर्णयों पर पुर्नविचार भी किया जा सकता था। कानून के नियम का मुख्य तौर पर इस्लामिक मुफ्ती नियमों से संचालित करते थे।

राज्य का सबसे बडा न्यायाधीष सम्राट होता था। वह प्रत्येक बुधवार को न्याय करता था, किन्तु सभी मुकदमों का निर्णय बादशाह नहीं करता था अतः उसकी सहायता के लिए मुख्य न्यायाधीष होता था। जिसे मुख्य काजी के नाम से जाना जाता था । वह इस्लामिक कानून के आधार पर न्याय करता था। मुफ्ती नामक पदाधिकारी इसके सहायक होते थे।

काजी की अदालत के अन्य कर्मचारियों में पेशकार ,कातिब (गवाहों के बयान तथा फैसले लिखने के लिए) अमीन, नाजिर , दफ्तरी इत्यादि प्रमुख थे। औरगंजेब के राजस्व काम में प्रत्येक सरकार के काजी की अदालत में प्रान्त के प्रमुख काजी अथवा काजी-उल-कुजात के द्वारा वकील-ए-सरकार नियुक्त होते थे। उनका प्रमुख कार्य राज्य के मुकदमों की पैरवी करना,न्यायालय के आदेशों का राज्य द्वारा कार्यान्वयन करवाना , ऐसी सम्पत्ति के विषय में कानूनी राय देना जिसका न्यासी काजी था। काजी को समाज में उच्च स्थान मिलता था।

7.3.10 सुलह-कुल

अकबर ने विभिन्न धर्मो के सामंजस्य एवं शान्ति पर विशेष बल दिया। वह सार्वभौमिक ओर शान्ति की नीति को क्रियान्वित करना चाहता था। अपनी प्रजा की प्रार्थनाएं सुनने के लिए वह हर समय तैयार रहता था। उनकी इच्छाओं की पूर्ति बड़ी उदारता पूर्वक करता था।सुलह-कुल के सिद्धातं का कलेवर अत्यंत व्यापक था,भारत को राजनीतिक रूप से जोड़न, विशेषकर राजपूतों को वृहत-भारत के कलेवर में शामिल करने के लिए इसका प्रयोग किया गया था।

ईश्वरीय अनुकंपा के विस्तुत आंचल में सभी वर्गों और धर्मों के अनुयायियों की एक जगह है इसलिए उसके विशाल साम्राज्य में जिसकी चारों ओर की सीमाएं केवल समुद्र से ही निर्धारित होती थीं। विरोधी धर्मों के अनुयायियों और हर तरह के अच्छे-बुरे विचारों के लिए जगह थी। यहां असहिष्णुता का मार्ग बन्द था। यहां सुन्नी और शिया एक

ही मस्जिद में इकट्ठे होते थे और ईसाई और यहूदी एक ही गिरजे में प्रार्थना करते थे। उसने सुसंगत तरीके से सबके लिए शांति (सुलह-ए-कुल) के सिद्वान्त का पालन किया।

7.3.11 इबादतखाना (पूजा–गृह)

अकबर ने धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद के उद्देश्य से 1575 में फतेहपुर सीकरी में इबादतखाने की स्थापना की । प्रत्येक रविवार को इबादतखाने में विभिन्न धर्मावलम्बी एकत्र होकर धार्मिक विषयों का आदान प्रदान करते थे। इबादतखाने के प्रारम्भिक दिनों में मुसलमान शेख, पीर, उलेमा ही यहां धार्मिक वार्ता के लिए आते थे पर कालान्तर में ईसाई, जरथ्रुस्टवादी, हिन्दू, जैन ,बौद्ध, पारसी, सूफी आदि भी धार्मिक वार्ता में हिस्सा लेने लगे।

इबादतखाने की वार्ता में हिस्सा लेने वाले प्रमुख लोग थे। पुरूषोत्तम , देवी (हिन्दू दार्शनिक) हरि विजय सूरी , भानुचन्द्र उपाध्याय (जैन दार्शनिक) आदि। इबादतखाने को अकबर ने 1578 में धर्म संसद के रूप में परिवर्तित कर दिया था।

7.3.12 दहसाला प्रणाली

दहसाला प्रणाली राजस्व निर्धारण की जाब्ती प्रणाली का एक संशोधित रूप था। 1580 में टोडरमल द्वारा निर्धारित इस व्यवस्था को अकबर द्वारा लागू किया गया था।राज्य के प्रत्येक परगने की पिछली दस साल की उपज और उपज की कीमतों की जानकारी प्राप्त कर ली जाती थी और उसका दसवां भाग वार्षिक मालगुजारी (माल-ए-दहसाला) के रूप में निश्चित कर लिया जाता था ।आंकडों के एकत्रित करने का लक्ष्य नये दस्तरूलअमल तैयार करना था।

1570-71 में टोडरमल ने भू-राजस्व की नई प्रणाली जाब्ती को आरम्भ किया। इस प्रणाली के अन्तर्गत भूमि की नाप-जोख कर भूमि की वास्तविक पैदावार आंकने के आधार पर करों को निश्चित किया जाता था। 1580 में अकबर द्वारा चलाई गई दहसाला प्रणाली का ही यह सुधार रूप था। अकबर द्वारा अपने शासनकाल के चौबीसवें वर्ष अर्थात् 1580 में लागू की गई नवीन प्रणाली दहसाला के अन्तर्गत वास्तविक उत्पादन, स्थानीय कीमतें, उत्पादकता आदि को आधार बनाया जाता था। इस प्रणाली में अलग-अलग फसलों के पिछलें दस वर्ष के उत्पादन और इसी समय अवधि में उनकी कीमतों का असल निकाल कर उसी के आधार पर उपज का एक तिहाई भाग भू-राजस्व होता था। पर रै्यत इसका भुगतान नकद अथवा अनाज में कर सकती थी। फसलों के अनुसार नकद की दरें परिवर्तित होती रहती थीं। अकबर की यह प्रणाली टोडरमल (अकबर का दीवान-ए-अशरफ) से सम्बन्धित होने के कारण टोडरमल बन्दाबेस्त के नाम से जानी गई। यह प्रणाली लाहौर से इलाहाबाद तथा मालवा और गुजरात में लागू थी। शाहजहां के शासनकाल में मुर्शीदकुली खां ने इस प्रणाली को दक्कन में लागू किया ।

7.3.13 सयूरघाल

राज्य द्वारा राज्य के संरक्षण में रहने वाले धार्मिक व्यक्तियों, विद्वानों और साधनविहीनों को राजस्व अनुदान दिया जाता था। इस प्रकार के अनुदानों को सयूरधाल कहा जाता था। मुगलकाल में बादशाह द्वारा दिये जाने वाले भत्ते नकद अथवा भूमि अनुदान के रूप में होते थे।इस प्रकार के अनुदान पाने वालों का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता था।अनुदान केवल नियत दर पर उस व्यक्ति को कुल उत्पादन में से दिया जाता था। सयूरघाल के अनुदान की अधिकतम सीमा 100 बीघा प्रति व्यक्ति थी।अनुदान प्राप्तकर्ता को अनुदान पूरे जीवन के लिए मिलता था।अनुदान प्राप्तकर्ता की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी अनुदान के लिए आवेदन करते थे। यह अनुदान प्राय पूर्व अनुदान का ही एक अंश होता था। धर्माथ, पुरूषार्थ , शिक्षाणार्थ, गुजारे के लिए संस्थाओं तथा व्यक्तियों को दान में दी गई भूमि को सयूरघाल कहा जाता था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. मनसब
2. मंगोल
3. मेहराब एवं गुंबद
4. सुलह-कुल
5. इबादतखाना
6. दहसाला प्रणाली

7.4 साराशं

उपरोक्त विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत आपको सल्तनत एवं मुगल कालीन भारत में प्रचलित अनेक विचार,संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप मनसब, मुगल, तुर्क, मंगोल, मेहराब, गुम्बद, दस्तूर, खालसा-भूमी, काजी,सुलहकुल, इबादतखाना, दहसाला प्रणाली,सयूरघाल के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते हैं और मध्यकालीन भारत के इतिहास को भली प्रकार समझ सकते हैं।

7.5 तकनीकी शब्दावली

यह इकाई मूलतः संकल्पना, विचार तथा शब्दावली से संबंधित है,आपको इस इकाई में सल्तनत काल एवं मुगल काल में प्रचलित शब्दावली से परिचित कराया गया,अब आप इस इकाई में प्रयुक्त शब्दावली से परिचित हो गये होंगे।

7.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.1 ; 7.3.1.1

इकाई 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.4

इकाई 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 3के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.5; 7.3.6

इकाई 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 4के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.10

इकाई 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 5के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.11

इकाई 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 6के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.12

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1-टी0पी0,ह्राम्स, डिक्शनरी ऑफ इस्लाम

2& **MEDIEVAL INDIA** - Cultorweb.com
www.cultorweb.com/eBooks/.../Hist%20Dict%20**Medieval_India**.pdf

3& books.google.co.in/books?isbn=8120812506**...**

4- ब्लाकमैन: आइने अकबरी, द्वितीय संस्करण

5- जे0एन0सरकारः हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द-3

6- अवध बिहारी पाण्डेय: दि फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इण्डिया, कलकत्ता, 1956

7.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास:जे0एल0मेहता।

2. भारत में मुसलमान शासन का इतिहासःएस0आर0शर्मा

3. पूर्व मध्यकालीन भारतः अवध बिहारी पाण्डेय,सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद,

4. भारत का इतिहास: डा0एस0एस नागौरी एवं जीतेश नागौरी।

5. राइस एण्ड फाल ऑफ दा मुगल एम्पायर: आर0पी0 त्रिपाठी।

6. मुगल कालीन भारत: एल0पी0शर्मा

7. भारत वर्ष का सम्पूर्ण इतिहास: प्रो0 त्रिनेत्र पाण्डेय

8. भारत का इतिहास: आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव

9. मध्यकालीन भारतीय इतिहास: अशोक कुमार पाण्डेय एवं डा0 पंकज गौतम

10. भारत का इतिहास: सत्यकेतु विद्यालंकार

11. मध्यकालीन भारत: इम्त्याज अहमद।

12. स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन दी इण्डियन एनवायरमेंट: अजीज अहमद,

13. इण्डियन आरकीटेक्चर: ई0वी0 हवेल

14. लाइफ एण्ड कंडीशन आफ दी पीपुल आफ हिन्दुस्तान (1200-1550):के0 एस0 लाल

15. कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ देहली सल्तनत: प्रो0 के0ए0 निजामी, 1955 नई दिल्ली।

16. ताज-उल- मासिर, हसन -एन- निजामी: इलियट एण्ड डोरसन, वालयूम।

17. तारीक-ए-मुबारक शाही: प्रो0 जे0एन0 सरकार।

18. सुल्तान आफ देहली : ए0 एल0 श्रीवास्तव।

19. मध्यकालीन भारत: ईश्वरी प्रसाद।

20. भारत का इतिहास: आर0सी0 मजूमदार।

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुगलकालीन प्रशासन में मनसबदारी व्यवस्था के योगदान पर चर्चा कीजिए।

इकाई आठ

जागीर, मस्जिद, सूफी, सगुण, निर्गुण, सनातन, पीर, नजर, तीर्थ-कर, नायंकर एवं आयगर, रायरेखो, अहदी, दाखली, कारखाना, मज्म-उल-बाहरीन

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

8.3.1 जागीर

8.3.2 सूफी

8.3.3 नजर

8.3.4 कारखाना

8.3.5 मज्म-उल-बाहरीन (दो समुद्रों का संगम)

8.3.6 पीर

8.3.7 नायंकर एवं आयगर

8.3.8 अहदी

8.3.9 दाखिली

8.3.10 सगुण

8.3.11 निर्गुण

8.3.12 सनातन

8.3.12.1 अवधारणाएं एवं परम्पराएं

8.3.13 मस्जिद

8.3.14 तीर्थकर

8.4 साराशं

8.5 तकनीकी शब्दावली

8.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के उपरांत भारत और विशेषकर उत्तर भारत में शासन व्यवस्था,एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। भारत में आज जो समन्वित संस्कृति मिलती है उसकी शुरूआत इसी काल में हुई। मुगलकाल में समन्वित संस्कृति की अनेक श्रेष्ठ परंपराओं की स्थापना हुयी, सूफी और उनके अनुनायियों तथा भक्तिकालीन संतों ने दो भिन्न-भिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के लोगों को निकट लाने और साथ-साथ रहने के लिए तैयार करने में अहम् भूमिका निभायी थीं।

सल्तनत काल में शासक वर्ग ने मध्य एशिया,ईरान एवं अरब जगत की अनेक परंपराओं, विचारों एवं रीतियों को भारत में प्रचलित किया। इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक नवीन बातों का प्रचलन प्रारंभ हुआ और समाज व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए।

मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन के लिए मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली से परिचित होना नितांत आवश्यक है, इसके अभाव में इस काल के इतिहास को भली प्रकार से समझ पाना कठिन है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपको सल्तनत एवं मुगल काल में प्रयोग की गयी अनेक संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली का विवरण दिया जा रहा है। इन तथ्यों का अध्ययन कर आप मध्यकालीन इतिहास का भली प्रकार अध्ययन कर पायेंगे और इस काल की जानकारी को ठीक तरह से समझ पायेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं ,विचार एवं शब्दावली के ज्ञान का परिचय देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न संकल्पनाओं

2- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न विचार

3- मुस्लिम शासन काल में व्यवहृत विभिन्न शब्दावली

8.3 संकल्पनाऐं, विचार तथा शब्दावली

इस इकाई में आपको विभिन्न संकल्पनाओं, विचार तथा शब्दावली का परिचय विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत दिया जा रहा है-

8.3.1 जागीर

मध्यकालीन भारत का वह क्षेत्र जिसका राजस्व किसी राजकीय कर्मचारी को उसकी सेवाओं के बदले में वेतन के रूप में निश्चित अवधि के लिए दिया जाता था,जागीर कहलाता था। मुगल काल में मनसबदार अपना वेतन राजस्व एकत्रित करने वाली भूमि के रूप में पाते थे जिन्हें जागीर कहते थे और यह सल्तनतकालीन इक्ताओं के समान थी।

जागीर वह भूमि होती है जिसमें राज्य के प्रमुख अधिकारियों को वेतन के रूप में विशाल भू-क्षेत्र दिये जाते थे। हस्तान्तरण की जाने वाली जागीर भूमि को पायबाकी कहा जाता था। साम्राज्य की अधिकांश भूमि जागीर भूमि के अर्न्तगत आती थी। वह भूमि जो अनुत्पादक होती थी तथा धार्मिक व्यक्तियों को अनुदान में दी जाती थी। मदद-ए-माश, मिल्क अथवा सयूरघाल कही जाती थी।

मुगलकाल में भूमि की मिल्कियत का अधिकार काश्तकार के पास सुरक्षित था। जिसे बादशाह की स्वीकृति प्राप्त होती थी। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर (17 वीं सदी) के अनुसार मुगलकाल में बादशाह सारी भूमि का मालिक होता था। यह सरदारों के अधीन थी जो राजस्व वसूल कर उसका एक भाग केन्द्रीय कोष में भेज देते थे और शेष स्वयं रख लेते थे।

8.3.2 सूफी

सूफी शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शब्द शफा (विशुद्ध) से मानी जाती है। कुछ विद्वान इसका सम्बन्ध सूफ (ऊन) से मानते हैं , क्योंकि पहले सूफी ऊनी वस्त्र (कम्बल) धारण करते थे । कुछ विद्वानों का मत है कि सर्वप्रथम साहबा (पैगम्बर मुहम्मद के सहयोग) में से कुछ लोग जो सांसारिक जीवन से अपने को अलग कर एक गुफा में तपस्या करते थे, सूफी कहलाये। विद्वानों के एक अन्य वर्ग का यह मानना है कि मदीना शरीफ स्थित सुफ्फा नामक चबूतरे पर बैठने वाला फकीर सूफी कहलाया।

सूफी चिन्तक इस्लाम धर्म को मानते थे। परन्तु उसके कर्म काण्डीय पक्ष का विरोध करते थे। सूफियों के अनुसार नमाज, रोजा तथा हजयात्रा से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं। सल्तनतकालीन उलेमा वर्ग (धर्मवेत्ताओं) की धार्मिक कट्टरता की सूफियों ने अलोचना की थी।

सूफी रहस्यवाद का जन्म दसवीं शताब्दी के लगभग हुआ। प्रारम्भिक सूफियों में महिला रहस्यवादी रबिया (8 वीं शताब्दी)एवं मंसूर-बिन-हल्लाज(10वीं शताब्दी) ने ईश्वर और व्यक्ति के बीच प्रेम सम्बन्ध पर बल दिया। मंसूर हल्लाज अपने को अनलहक (मैं ईश्वर हूँ) घोषित करने वाला पहला सूफी साधक था। सूफी जगत में सर्वप्रथम इब्नुल अरबी द्वारा दिये गये सिद्धान्त वहादत-उल-वजूद का उलेमाओं ने विरोध किया। उलेमाओं ने जहाँ ब्रह्म तथा जीव के मध्य, मालिक एवं गुलाम के रिश्तों की कल्पना की वहीं दूसरी ओर सन्तों ने ईश्वर को अदृश्य सम्पूर्ण वास्तविकता एवं शाश्वत सौन्दर्य को प्राप्त करने में सूफियें ने अपना विश्वास जताया। इन्होंने सौन्दर्य एवं संगीत को अधिक महत्व दिया।

सूफियों ने गुरू को अधिक महत्व दिया, क्योंकि ये गुरूओं को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते थे। सूफी भौतिक एवं भोग-विलास से दूर, सादे, सरल संयमपूर्ण जीवन में अपनी आस्था रखते थे।

सूफी साधकों को परमआनन्द तक पहुँचने से पूर्व दस अवस्थाओं से गुजरना पड़ता था।सूफी सन्तों ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार जन साधारण की भाषा में किया। इनके द्वारा ही हिन्दी, उर्दू एवं अन्य कुछ क्षेत्रीय भाषाओं का विकास भी हुआ। सूफी धर्म संघ, बेशर(इस्लामी सिद्धान्त के समर्थकद्ध एवं बाशर (इस्लामी सिद्धान्त में बंधे नहीं) में विभाजित था। सूफी सन्तों के शिष्य को मुरीद एवं उनके आश्रमों एवं मठों को खानकाह कहा जाता था।

8.3.3 नजर

जब लोग सम्राट से भेंट करने जाते थे या शाही दरबार में उपस्थित होते थे तो अपने पद तथा स्थान के अनुरूप सम्राट को पेशकश के अतिरिक्त विशेष अवसरों पर उमरा तथा अन्य लोगों से सम्राट को नजर प्राप्त होती थी।पेशकश तथा नजर में प्रमुख अन्तर यह समझा जाता था कि पेशकश नजर से अधिक मूल्यवान होती थी। पेशकश में हीरे, जवाहरात तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएं दी जाती थीं। नजर साधारणतया बधाई तथा खुशी के अवसरों पर नकद के रूप में दी जाती थी।

8.3.4 कारखाना

इसके अन्तर्गत राजदरबार तथा राजपरिवार की शान व शौकत को पूरा करने के लिए जिन विलास सम्बन्धी वस्तुओं की जरूरत पड़ती थी उनका निर्माण यहां होता था और ये वस्तुएं बाजार में नहीं जा सकती थीं। मुहम्मद तुगलक ने अपने राज्य काल में एक वस्त्र निर्माण शाला की स्थापना की थी जहां रेशमी कपड़े बुनने वाले 400 जुलाहे काम में लगे रहते थे। इसी तरह के फिरोज तुगलक के शासन काल में 36 कारखाने थे।

कुछ कारखाने ऐसे थे, जिनमें काम करने वालों को निश्चित वेतन मिलता था। इनके अन्तर्गत पीलखाना, पायगाह, शराबखाना, शैमाखाना, सुतुरखाना, समखाना, अवदारखाना आदि थे। कुछ कारखाने ऐसे भी थे जिनमें अनिश्चित वेतन पाने वाले कर्मचारी होते थे । इसमें जमारदारखाना, अलमखाना, फराशखाना, रिकाबखाना आदि प्रमुख थे।

मुतशर्रिफ के अधीन एक विशेष प्रकार का कारखाना होता था। जिसमें उच्च श्रेणी के मालिक होते थे,सम्राट के व्यक्तिगत प्रयोग तथा सेना के लिए जो विभाग हथियार बनाता था उसे कारखाना कहा जाता था। अंग्रेजों ने दक्षिण भारत में पहला कारखाना मछलीपट्टम 1611 में खोला।गुजरात, थट्टा, बुरहानपुर, जौनपुर, बनारस, पटना तथा ढाका की मलमल बहुत प्रसिद्ध थी। कश्मीर और कनार्टक लकड़ी की कलात्मक वस्तुएं बनाने के लिए प्रख्यात थे।
गुड़ और शक्कर बनाने के उद्योग बंगाल, गुजरात और पंजाब में मुख्य रूप से थे। लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए गुजरात और पंजाब प्रख्यात थे।

तांबा, कांसा और पीतल का प्रयोग मुख्यतः बर्तन और मूर्तियां बनाने के लिए किया जाता था। भारत में सबसे बडा उद्योग वस्त्र उद्योग था। सभी प्रकार के सूती ,ऊनी, और रेशमी वस्त्र तैयार किये जाते थे। कश्मीर में ऊनी कालीन,रेशमी कपड़ा तथा ऊनी कपड़े का निर्माण बहुत होता था। कश्मीर और बंगाल में रेशम पैदा किया जाता था। ऊनी कपड़ा और वस्त्र बनाने के कारखाने पहाड़ी प्रदेशों में अधिक थे। बढ़िया ऊनी वस्त्र और शाल कश्मीर तथा लाहौर में तैयार किये जाते थे।जहांगीर ने अमृतसर में ऊनी वस्त्रों के उद्योग को प्रारम्भ किया। ढाका की मलमल विश्व प्रसिद्ध थी।

8.3.5 मज्म-उल-बाहरीन (दो समुद्रों का संगम)

यह शाहजहाँ के समय उसके पुत्र दारा सिकोह द्वारा लिखा गया प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कादिरी सिलसिले के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी गई है। क्योंकि दारा शिकोह स्वयं कादिरी सिलसिले को मानने वाला था। इसलिए उसने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें दारा शिकोह ने हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म दोनों को एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के दो रास्ते बतलाया। दारा द्वारा लिखा यह ग्रन्थ अति महत्वपूर्ण था।

8.3.6 पीर

इस्लाम धर्म में एक ऐसा व्यक्ति जो अपने जीवन को दुनियादारी से दूर, ईश्वरीय इच्छा में लीन रखने वाला आध्यात्मिक ज्ञाता हो और सांसारिक माया-मोह का त्याग कर जनकल्याण की भावना रखता हो तथा एक उच्च स्थान पर पहुंचकर मुर्शीद का दर्जा प्राप्त कर संसार का कल्याण करता हो उसे पीर कहा जाता है। औरंगजेब को भी जिन्दा पीर माना जाता था क्योंकि उसने जनकल्याण के लिए समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने का प्रयास किया था। अपना जेब खर्च भी वह कुरान की आयतें लिखकर और टोपी सिलकर निकाला करता था। उसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त था। इसलिए लोग उसे जिन्दा पीर मानकर पूजते थे। इस पीर श्रेणी में संत या सूफी और अन्य धार्मिक महानुभाव, साहसी, उपनिवेशी, देवत्व प्राप्त सैनिक एवं योद्धा, विभिन्न, हिन्दू एवं बौद्ध, देवी-देवता और यहां तक कि जीवात्माएं भी शामिल थे। समय के साथ पीरों की पूजा पद्वतियां बहुत ही लोकप्रिय हो गई और उनकी मजारें आज भी भारत के कोने-कोने और विशेषकर बंगाल में सर्वत्र पाई जाती हैं।

8.3.7 नायंकर एवं आयगर

विजयनगर की सेना के सेनानायक को नायक कहा जाता था। नायक भू-सामन्त थे, जिन्हें राजा वेतन के बदले उनकी अधीनस्थ सेना के रख-रखाव के लिए विशेष भू-खण्ड देता था। ऐसे भू-खण्ड अमरम कहलाते थे । अमरम भूमि के उपयोग के बदले नायकों को भूमि से प्राप्त भू-राजस्व के एक हिस्से को सरकारी कोष में जमा करना पड़ता था तथा भूमि की आय से राजा की सहायता के लिए एक सेना का रख-रखाव करना पड़ता था। इसके अलावा नायकों को उस क्षेत्र में शान्ति, सुरक्षा अपराधों को रोकने जैसे अनेक दायित्वों को भी पूरा करना होता था।

आयगर व्यवस्था का गठन प्रशासन को भली-भांति चलाने के लिए किया जाता था । प्रत्येक गांव को एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में संगठित किया जाता था। संगठित ग्रामीण इकाई पर शासन हेतु बारह सदस्यीय प्रशासकीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इन्हें सामूहिक रूप में आयगर कहा जाता था। इन्हें अपनी सेवा के बदले वेतन के रूप में कर मुक्त तथा लगान मुक्त भूमि प्राप्त होती थी। गांव की भूमि बिना आयंगर की पूर्व अनुमति के नहीं बेची जा सकती थी। कर्णिक नामक कर्मचारी के पास भूमि से जुड़े सभी दस्तावेज होते थे। राजा महानायकाचार्य नामक अपने अधिकारी के द्वारा गांव के शासन से अपना सम्बन्ध बनाये रखता था।

8.3.8 अहदी

ये सम्राट के व्यक्तिगत सैनिक हुआ करते थे। इनकी नियुक्ति सम्राट किसी मनसबदार की सेना में भी कर सकता था। सम्राट ही इनके वेतन, शिक्षा, वस्त्र, घोड़े आदि की व्यवस्था करता था। मुगल काल में एक अहदी सैनिक को 500 रूपये तक का वेतन दिया जाता था। ये सम्राट के प्रति वफादार होते थे। इनकी संख्या अनिश्चित होती थी। अकबर के शासनकाल में इनकी संख्या लगभग 12 हजार थी।

ये प्रतिष्ठा वाले सिपाही थे तथा विशेष प्रकार के अश्वारोही होते थे जो साधारणतः बादशाह के अंगरक्षक थे तथा किसी और के अधीन नहीं थे अर्थात् मुगल सेना के प्रमुख भाग थे।

8.3.9 दाखिली

इस प्रकार के सैनिकों की नियुक्ति सम्राट ही करता था। इन्हें मनसबदार की सेवा में रखा जाता था। ये सैनिक अर्द्ध-अश्वारोही और अर्द्ध-पैदल की श्रेणी में आते थे। दाखिली सैनिको की भर्ती भी सीधे राज्य द्वारा ही होती थी।इन्हें मनसबदारों के अधीन रखा जाता था। ये पूरक सिपाही होते थे जिनका खर्च राज्य से मिलता था।

8.3.10 सगुण

सगुण मार्गी भक्तों ने अपने ईष्ट देवों राम और कृष्ण की भक्ति को अधिक महत्व दिया। भक्ति का एक महत्वपूर्ण आधार सगुण मार्ग है। भक्त किसी भी आकार को अपना आराध्य मानकर उसमें एकाकार होने का प्रयास करता है और मूर्तरूप में उसका ध्यान कर भक्ति और पूजा अर्चना करता है। जैसे मीरा ने कृष्ण की मूरत को अपना सर्वस्व और आराध्य मानकर सर्वस्व न्यौछावर कर जीवन समर्पित कर दिया। तुलसीदास ने राम को अपना आराध्य मानकर जनसाधारण में उनका गुणगान कर भगवान के मूर्त रूप को सजीवता प्रदान की और जीवन पर्यन्त उनकी आराधना करते रहे। इसी तरह चैतन्य महाप्रभु, सूरदास , जैसे भक्तों ने कृष्ण भगवान के सगुण रूप को अर्थात् मूर्त रूप को स्वीकार किया और भगवान के रूप में उनकी आराधना की।

8.3.11 निर्गुण

निगुण मार्गी भक्तों ने ज्ञान तथा प्रेम का आश्रय लेते हुए एकेश्वरवाद का प्रचार कर हिन्दू तथा मुस्लिम जनता को एक दूसरे के समीप लाने के प्रयास किया।निर्गुण अर्थात् निराकार, जिसका कोई आकार न हो ऐसे ईश्वर की आराधना करना निर्गण भक्ति कही जाती है। सन्त कबीर, गुरूनानक, रामानुजाचार्य, रामानन्द, दादूदयाल, रैदास, वल्लभाचार्य तथा तुकाराम जैसे भक्त सन्तों ने अपने ज्ञान द्वारा समाज में व्याप्त आडम्बरों, कुरीतियों तथा अंधविश्वास को आपसी वैमनस्य की भावना को प्रेम द्वारा खत्म कर समाज सुधार का कार्य किया। उन्होंने प्रेम द्वारा ज्ञान का संचार किया, एक ऐसी भक्ति को जगाया जो निराकार निर्गुण थी।

8.3.12 सनातन

भारत का सर्वप्रमुख धर्म हिन्दू धर्म है, जिसे इसकी प्राचीनता एवं विशालता के कारण सनातन धर्म भी कहा जाता है। ईसाई, इस्लाम बौद्व जैन आदि धर्मों के समान हिन्दू धर्म किसी पैगम्बर या व्यक्ति विशेष द्वारा स्थापित धर्म नहीं है, बल्कि यह प्राचीन काल से चले आ रहे विभिन्न धर्मों मतमतांतरों, आस्थाओं एवं विश्वासों का समुच्चय है। एक विकासशीन धर्म होने के कारण विभिन्न कालों में इसमें नये-नये आयाम जुड़ते गये। वास्तव में हिन्दू धर्म इतने विशाल परिदृश्य वाला धर्म है कि उसमें आदिम ग्राम-देवताओं , स्थानीय देवी-देवताओं से लेकर त्रि-देव एवं अन्य देवताओं तथा निराकार ब्रह्म और अत्यंत गूढ़ दर्शन तक सभी बिना किसी अन्तर्विरोध के समाहित हैं और स्थान एवं व्यक्ति विशेष के अनुसार सभी की आराधना होती है। वास्तव में हिन्दू धर्म लघु एवं महान परम्पराओं का उत्तम समन्वय दर्शाता है। एक ओर इसमें वैदिक तत्व तथा पुराणकालीन देवी-देवताओं की पूजा अर्चना होती है तो दूसरी ओर कापालिक और अवधूतों द्वारा भी अत्यन्त भयावह कर्मकंडीय आराधना की जाती है। एक ओर भक्ति रस से सराबोर भक्त हैं , तो दूसरी ओर अनीश्वर, अनात्मवादी और यहां तक कि नास्तिक भी दिखाई पड़ जाते हैं। हिन्दू धर्म सर्वथा विरोधी सिद्धान्तों का भी उत्तम एवं सहज समन्वय है। यह हिन्दू धर्मावलम्बियों की उदारता सर्वधर्मसम्भाव, समन्वयशीलता तथा धार्मिक सहिष्णुता की श्रेष्ठ भावना का ही परिणाम और परिचायक है।

हिन्दू धर्म की परम्पराओं का मूल वेद ही हैं । वैदिक धर्म प्रकृति-पूजक बहुदेववादी तथा अनुष्ठानपरक धर्म था। यद्यपि उस काल में प्रत्येक भौतिक-तत्व का अपना विशेष अधिष्ठातृ देवता या देवी की मान्यता प्रचलित थी, परन्तु देवताओं में वरूण, पूषन, मित्र, सविता, सूर्य , अश्विन, उषा ,इन्द्र, रूद्र, पर्जन्य, अग्नि, वृहस्पति, सोम आदि प्रमुख थे। इन देवताओं की आराधना, यज्ञ तथा मंत्रोच्चारण के माध्यम से की जाती थी। मंदिर तथा मूर्तिपूजा का अभाव था। उपनिषद काल में हिन्दू धर्म के दार्शनिक पक्ष का विकास हुआ। साथ ही एकेश्वरवाद की अवधारणा बलवती हुई। ईश्वर को अजर-अमर, अनादि सर्वव्यापी कहा गया। इसी समय योग,सांख्य, वेदांत आदि षडदर्शनों का

विकास हुआ। निर्गुण तथा सगुण की भी अवधारणाएं उत्पन्न हुईं । नौवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य विभिन्न पुराणों की रचना हुई। पुराणों में पांच विषयों (पंच लक्षण) का वर्णन है।

1 सर्ग(जगत की सृष्टि)

2 प्रतिसर्ग (सृष्टि का विस्तार , लोप एवं पुनः सृष्टि)

3 वंश (राजाओं की वंशावली)

4 मन्वंतर (भिन्न- भिन्न मनुओं के काल की प्रमुख घटनाएं) तथा

5 वंशानुचरित (अन्य गौरवपूर्ण राजवंशों का विस्तृत विवरण)

इस प्रकार पुराणों में मध्य युगीन धर्म, ज्ञान-विज्ञान तथा इतिहास का वर्णन मिलता है। पुराणों ने ही हिन्दू धर्म में अवतारवाद की अवधारणा का सूत्रपात किया। इसके अलावा मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा ,व्रत आदि इसी काल की देन है। पुराणों के पश्चात भक्ति काल का आगमन होता है। जिसमें विभिन्न संतों एवं भक्तों ने साकार ईश्वर की आराधना पर जोर दिया तथा जनसेवा परोपकार और प्राणी मात्र की समानता एवं सेवा को ईश्वर आराधना का ही रूप बताया। फलस्वरूप प्राचीन दुरूह कर्मकांडों के बंधन कुछ ढीले पड़ गये। दक्षिण भारत के अलवार संतों, गुजरात में नरसि मेहता, महाराष्ट्र में तुकाराम, बंगाल में चैतन्य, उत्तर में तुलसी, कबीर, सूर और गुरू नानक के भक्ति भाव से ओत-प्रोत भजनों ने जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

8.3.12.1 अवधारणाएं एवं परम्पराएं

ब्रहम को सर्वव्यापी एकमात्र सत्ता, निर्गुण तथा सर्वशक्तिमान माना गया है। ब्रहम को सर्वव्यापी माना गया है। अतः जीवों में भी उसका अंश विद्यमान है। आत्मा के अमरत्व की अवधारणा से ही पुनर्जन्म की भी अवधारणा पुष्ट होती है।आत्मा के प्रत्येक जन्म द्वारा प्राप्त जीव रूप को योनि कहते हैं। ऐसी 84 करोड़ योनियों की कल्पना की गई है।प्रत्येक जन्म के दौरान जीवन भर किये गये कृत्यों का फल आत्मा को अगले जन्म में भुगतना पडता है।ये कर्मफल से सम्बन्धित दो लोक है। स्वर्ग में देवी देवता अत्यंत ऐशो-आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं , जबकि नरक अत्यन्त कष्टदायक, अंधकारमय और निकृष्ट है।

मोक्ष का तात्पर्य है आत्मा का जीवन-मरण के दुष्चक्र से मुक्त हो जाना अर्थात् परमब्रहम में लीन हो जाना है। इसके लिए निर्विकार भाव से सत्कर्म करना और ईश्वर की आराधना करना आवश्यक है।

हिन्दू धर्म में काल को चक्रीय माना गया है। इस प्रकार एक कालचक्र में चार युग, सत्ययुग(क्रत), त्रेता, द्वापर तथा कलि माने गये हैं इन चारों युगों में कृत सर्वश्रेष्ठ और कलि निकृष्टतम माना गया है। इन चारों युगों में मनुष्य की शारीरिक और नैतिक शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है। जिसके अंत में पृथ्वी पर महाप्रलय होता है।

हिन्दू समाज चार वर्णों में विभाजित है। ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र । ये चार वर्ण प्रारम्भ में कर्म के आधार पर विभाजित थे।

प्राचीन हिन्दू संहिताएं मानव जीवन को 100 वर्ष की आयु वाला मानते हुए उसे चार चरणों अर्थात् आश्रमों में विभाजित करती हैं। ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। प्रत्येक की संभावित अवधि 25 वर्ष मानी गई। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरूषार्थ ही जीवन के वांछित उद्देश्य हैं।

ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग तथा राजयोग ये चार योग हैं जो आत्मा को ब्रहम से जोड़ने के मार्ग हैं।चार धाम- उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम- चारों दिशाओं में स्थित चार हिन्दू धाम क्रमशः बद्रीनाथ, रामेश्वर , जगन्नाथपुरी और द्वारका हैं। जहां जाना प्रत्येक हिन्दू का पुनीत कर्तव्य है।

8.3.13 मस्जिद

यह एक अरबी शब्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ है- ऐसा स्थान जहां मुसलमान अल्लाह की आराधना में सजदा (घुटने और माथा टेककर) करते हैं।जामा मस्जिद या (मस्जिद-ए-जामी) वह मस्जिद होती है जहां अनेक मुसलमान एकत्र होकर साथ-साथ नमाज पढ़ते हैं। नमाज की रस्म के लिए सारे नमाजियों में से सबसे अधिक सम्माननीय और विद्वान पुरूष को इमाम (नेता) के रूप में चुना जाता है। इमाम शुक्रवार की नमाज के दौरान धर्मोपदेश(खुतबा) भी देता है।

नमाज के दौरान मुसलमान मक्का की तरफ मुंह करके खड़े होते हैं। भारत में मक्का पश्चिम की ओर पड़ता है। मक्का की ओर की दिशा किबला कहलाती है।

दिल्ली के सुल्तानों ने सारे उपमहाद्वीप के अनेक शहरों में मस्जिदें बनवाई। इससे उनके मुसलमान और इस्लाम के रक्षक होने के दावे को बल मिलता था। सामान अचार संहिता और आस्था का पालन करने वाले श्रद्धालुओं को परस्पर एक समुदाय से जुड़े होने में भी मस्जिदें सहायक थीं। उस काल में एक समुदाय का अंग होने के बोध को प्रबल करना जरूरी था क्योंकि मुसलमान अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार की पृष्ठभूमियों से आते थे।

इस्लाम धर्म में मस्जिद ऐसे पवित्र स्थान को कहते हैं जहां पर दिन में पांच बार नमाज अदा की जाती है, दिन में पांच बार आजान देकर नमाजी इकत्र होते हैं और अल्लाह की इबादत होती है मस्जिद में इमाम मेहराब के बाहर खड़ा होता है और उसके पीछे नमाजी एक कतार में सीधे एकत्र हो जाते हैं।

मस्जिद में नमाज से पूर्व वजू करना अति आवश्यक होता है। इस लिए प्रत्येक मस्जिद में पानी का पर्याप्त प्रबन्ध होता है । कुछ मस्जिदों में बीच में हौज होता है । भारत में तुर्कों के आगमन के पश्चात प्रारम्भ में नमाज मैदान में हुआ करती थी।मोहम्मद गौरी ने जब भारत में 1191-1992 में आक्रमण किया, उसके पश्चात मस्जिद की रूपरेखा पर ध्यान

दिया गया।जब कुतुबद्दीन एबक भारत आया उसने मस्जिद के निर्माण को आवश्यक समझा और प्रथम बार कुव्वत-उल- इस्लाम मस्जिद का निर्माण दिल्ली में कुतुब मीनार के समीप हुआ।

बाद में अजमेर में अढ़ाई दिन के झोपडा का निर्माण हुआ। गुलाम वंश के सुल्तानों ने एवं मुगल सम्राटों ने अनेक प्रकार की मस्जिदों का निर्माण भारत में करवाया। मस्जिदों में महिलाओं को पुरूषों के साथ नमाज पढ़ने की इजाजत नहीं है। परन्तु अब कुछ मस्जिदों में महिलाएं मस्जिदों में जाकर नमाज पढ़ने लगी हैं। जैसे मद्रास, लखनऊ तथा अन्य कई जगहों पर। परन्तु तुर्कों के आगमन के समय भारत में मुस्लिम महिलाओं को नमाज अपने घरों में ही पढ़नी होती थी। एक साथ नमाज पढना अनुचित माना जाता है।

8.3.14 तीर्थकर

ये एक तीर्थ कर था। जिसे हिन्दुओं के धार्मिक स्थलों से हिन्दुओं से लिया जाता था। गंगा के घाटों,मन्दिरों आदि पर अमीर, गरीब के अनुसार यह कर लगाया जाता था। अकबर ने राजपूत रानी से विवाह करने के पश्चात् हिन्दुओं से वसूला जाने वाला तीर्थ कर समाप्त करवा दिया था। जहांगीर ने भी अपने शासनकाल में जामिया व तीर्थकर नहीं लगाये।

शाहजहां ने हिन्दुओं पर पुनः तीर्थयात्रा कर लगाया । हिन्दुओं को तीर्थयात्रा कर देने का आदेश दिया गया था। परन्तु बाद में बनारस के कविन्द्राचार्य के अत्यधिक प्रार्थना करने पर यह कर हटा दिया गया था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1- नायंकर एवं आयगर

2- अहदी एवं दाखली

3- सूफी, सगुण एवं निर्गुण

4- जागीर

5- मस्जिद

6- मज्म-उल-बाहरीन

8.4 साराशं

उपरोक्त विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत आपको सल्तनत एवं मुगल कालीन भारत में प्रचलित अनेक विचार,संकल्पनाओं एवं शब्दावली की जानकारी दी गयी। अब आप जागीर, मस्जिद, सूफी, सगुण, निर्गुण, सनातन, पीर, नजर, तीर्थ-कर,

नायंकर एवं आयगर, रायरेखो, अहदी, दाखली,कारखाना,मज्म-उल-बाहरीन के बारे में पर्याप्त जानकारी रखते हैं और मध्यकालीन भारत के इतिहास को भली प्रकार समझ सकते हैं।

8.8 तकनीकी शब्दावली

यह इकाई मूलतः संकल्पना, विचार तथा शब्दावली से संबंधित है,आपको इस इकाई में सल्तनत काल एवं मुगल काल में प्रचलित शब्दावली से परिचित कराया गया,अब आप इस इकाई में प्रयुक्त शब्दावली से परिचित हो गये होंगे।

8.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 8.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1के उत्तर के लिए देखिए इकाई 8.3.7

इकाई 8.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2के उत्तर के लिए देखिए इकाई 8.3.8 एवं 8.3.9

इकाई 8.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 3के उत्तर के लिए देखिए इकाई 8.3.2; 8.3.10 एवं 8.3.11

इकाई 8.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 4के उत्तर के लिए देखिए इकाई 8.3.1

इकाई 8.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 5के उत्तर के लिए देखिए इकाई 8.3.13

इकाई 8.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 6के उत्तर के लिए देखिए इकाई 8.3.5

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत का इतिहास- आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव

2. मध्यकालीन भारत, सल्तनत से मुगलों तक- सतीश चन्द्रा जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

3. मध्यकालीन भारत, 8 वीं से 18 वीं शताब्दी तक एक सर्वेक्षण इम्त्याज अहमद नेशनल पब्लिकेशन, खजांची रोड, पटना।

4. मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, डा0 कन्हैया लाल श्रीवास्तव एवं झारखण्ड चौबे।

5. टी0पी0,ह्राम्स, डिक्शनरी ऑफ इस्लाम

6& **MEDIEVAL INDIA** - Cultorweb.com
www.cultorweb.com/eBooks/.../Hist%20Dict%20**Medieval_India**.pdf

7& books.google.co.in/books?isbn=8120812506**...**

8.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-टी0पी0,ह्राम्स, डिक्शनरी ऑफ इस्लाम

2& **MEDIEVAL INDIA** - Cultorweb.com
www.cultorweb.com/eBooks/.../Hist%20Dict%20**Medieval_India**.pdf

3& books.google.co.in/books?isbn=8120812506**...**

4- ब्लाकमैन: आइने अकबरी, द्वितीय संस्करण

5- जे0एन0सरकारः हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द-3

6- अवध बिहारी पाण्डेय: दि फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इण्डिया, कलकत्ता, 1956

7- जे0एल0 मेहता: मध्यकालीन इतिहास, खण्ड-प्एप्प्

8- सतीश चन्द्र: मध्यकालीन इतिहास

6- एस0आर0शर्मा: मध्यकालीन भारत

8.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुगलकालीन कारखानों के विषय में आप क्या जानते हैं,ये किस प्रकार वर्तमान कारखानों से भिन्न थे।
2. अपने क्षेत्र में विद्यमान किसी मस्जिद के स्थापत्य के विषय में एक निबंध लिखिए।

इकाई नौ

चौथ, सरदेशमुखी, महाराष्ट्र धर्म, अष्ट प्रधान, सेनाकर्ते, पेशवा, छत्रपति, हिन्दू-पद-पादशाही, मराठा संघ, देशमुख

9.1 **प्रस्तावना**

9.2 **उद्देश्य**

9.3 **मराठा इतिहास के महत्वपूर्ण धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक पहलू**

9.3.1 **चौथ**

9.3..2 **सरदेशमुखी**

9.3.3 **महाराष्ट्र धर्म**

9.3.4 **अष्ट प्रधान**

9.3.5 **सेनाकर्ते**

9.3.6 **पेशवा**

9.3.7 **छत्रपति**

9.3.8 **हिन्दू-पद-पादशाही**

9.3.9 **मराठा राज्य संघ**

9.3.10 **'देशमुख'**

9.4 **सारांश**

9.5 **पारिभाषिक शब्दावली**

9.6 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

9.7 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

9.8 **सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री**

9.9 **निबंधात्मक प्रश्न**

9.1 प्रस्तावना

मराठों के सैनिक व राजनीतिक उत्थान एवं पतन का अध्ययन करने के लिए महाराष्ट्र के धार्मिक सामाजिक व सांस्कृतिक आन्दोलन का ज्ञान आवश्यक है। मराठा शक्ति के सैनिक व राजनीतिक विस्तार हेतु शिवाजी तथा परवर्ती

मराठों द्वारा अपने आर्थिक संसाधनों में वृद्धि करने के लिए विजित क्षेत्रों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की नीति अपनाई। मराठा शक्ति के उत्थान एवं पतन में चौथ और सरदेशमुखी वसूलने की नीति का अध्ययन करना आवश्यक है।

छत्रपति, एक पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक होता था। छत्रपति शिवाजी ने स्वराज्य की स्थापना कर हिन्दू-पद-पादशाही की राजनीतिक महत्वाकांक्षा का बीजारोपण कर दिया था। शिवाजी द्वारा प्राचीन महान शासकों की शासन प्रणाली को पुनर्जीवित करने का प्रयास उनके द्वारा अष्ट प्रधान मण्डल के गठन में दृष्टिगोचर होता है। पेशवा अष्ट प्रधान मण्डल का प्रमुख होता था किन्तु बाद में मराठा राज्य संघ का प्रमुख होने तथा शिवाजी के हिन्दू-पद-पादशाही के अधूरे सपने को पूरा करने के अभियान का नेतृत्व करने के कारण उसका महत्व छत्रपति से भी अधिक हो गया था। सेनाकर्ते सेना का संगठनकर्ता होता था और उसका पद सेनापति के समकक्ष था।

मराठों को दक्षिण भारत की एक क्षेत्रीय शक्ति से भारत की सर्वप्रमुख शक्ति बनाने का श्रेय मराठा राज्य संघ को दिया जा सकता है। मराठा राज्य संघ ने हिन्दू-पद-पादशाही की स्थापना का प्रयास किया किन्तु आपसी फूट के कारण यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका और यही आपसी फूट मराठा राज्य संघ के पतन का प्रमुख कारण भी बनी। मराठों के भू-राजस्व प्रशासन तथा नागरिक एवं न्याय प्रशासन का एक साथ दायित्व निभाने वाले वंशानुगत अधिकारियों में देशमुख का महत्वपूर्ण स्थान था।

इस इकाई में आपको चौथ, सरदेशमुखी, महाराष्ट्र धर्म, अष्ट प्रधान, सेनाकर्ते, पेशवा, छत्रपति, हिन्दू-पद-पादशाही, मराठा संघ तथा देशमुख के विषय में जानकारी दी जाएगी।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको मराठों के सैनिक व राजनीतिक उत्थान की धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से परिचित कराने के अतिरिक्त मराठों की राजनीतिक परिकल्पनाओं, उनके लक्ष्यों, उनके प्रशासनिक एवं सैनिक संगठन, उनके महत्वपूर्ण प्रशासनिक एवं सैनिक पदा, उनकी आर्थिक नीतियों तथा उनके पतन के विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- चौथ एवं सरदेशमुखी के विषय में।

2- महाराष्ट्र धर्म तथा हिन्दू-पद-पादशाही के विषय में।

3- छत्रपति, अष्ट प्रधान, पेशवा, सेनाकर्ते तथा देशमुख के विषय में।

4. मराठा राज्य संघ के विषय में।

9.3 मराठा इतिहास के महत्वपूर्ण धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक पहलू

9.3.1 चौथ

चौथ मराठों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र से इतर क्षेत्र में वसूला जाने वाला कर था जो कि कुल राजस्व का चौथाई भाग होता था। इसे मराठे अपने अधिकृत क्षेत्र से बाहर के लोगों से वसूलते थे। एम0 जी0 रानाडे के अनुसार चौथ सैन्य कर था जो किसी वाह्य शक्ति के आक्रमण के समय सुरक्षा प्रदान करने के बदले में वसूल किया जाता था। वह इसकी तुलना वेलेज़ली द्वारा अपनाई गई सहायक सन्धि की व्यवस्था से करते हैं। परन्तु जदुनाथ सरकार इसको एक प्रकार की लूट मानते हैं और उनके अनुसार मराठे जिस क्षेत्र में चौथ वसूलते थे वहां वे उसके बदले में उस क्षेत्र को वाह्य आक्रमण से किसी प्रकार की सुरक्षा प्रदान नहीं करते थे। 1665 से शिवाजी ने विजित क्षेत्रों व शत्रु क्षेत्रों में चौथ वसूलना प्रारम्भ किया था। बीजापुर व गोलकुण्डा के राज्यों से उन्हें कुल मिलाकर 8 लाख रुपये वार्षिक चौथ के रूप में प्राप्त होते थे। स्वराज्य की स्थापना के बाद भी शिवाजी और परवर्ती मराठों के पास धन एकत्र करने का सबसे सहज और सुलभ उपाय विजित व शत्रु क्षेत्रों से चौथ वसूलना था। मराठों का राज्य क्रीग स्टैट अर्थात युद्ध पर आधारित राज्य था अर्थात् इसकी आय का मुख्य स्रोत युद्ध तथा सैनिक अभियानों से प्राप्त धन था। मराठा सैनिकों को वेतन के बदले में लूटे गए धन का एक भाग प्राप्त होता था। चौथ का एक भाग छत्रपति को, एक भाग शाही सचिवालय को और इसका सबसे बड़ा भाग मराठा सरदारों को अपने सैन्य-व्यय के लिए दिया जाता था। चौथ से प्राप्त धन के सहारे मराठों के प्रभाव क्षेत्र का अप्रत्याशित विस्तार हुआ।

चूंकि शिवाजी के सैनिक अभियान मुख्यतः बीजापुर राज्य और मुगल साम्राज्य के विरुद्ध थे इसलिए इनके क्षेत्रों के निवासियों से चौथ वसूल कर भी वो हिन्दू धर्म के रक्षक कहलाए। किन्तु पेशवा बाजीराव प्रथम के काल से जब मराठा शक्ति व उसके प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हुआ तो फिर चौथ वसूलते समय मराठों ने हिन्दू या मुसलमान में अन्तर नहीं किया और सभी धर्मावलम्बियों को बिना किसी भेदभाव किए लूटा और सभी को अपना शत्रु बना लिया। इस प्रकार केवल युद्ध और लूटमार पर आधारित मराठा साम्राज्य दीर्घजीवी नहीं हो सकता था।

9.3.2 सरदेशमुखी

दक्षिण के मुगल सूबों में मराठों द्वारा मांगा जाने वाला अतिरिक्त कर (कुल भू-राजस्व का दस प्रतिशत) सरदेशमुखी कहलाता था। सरदेशमुख आनुवंशिक भू-राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारी होते थे। इन्हें इनकी सेवा के बदले में अतिरिक्त कर के रूप में निर्धारित भू-राजस्व का दस प्रतिशत भाग प्राप्त होता था। शिवाजी की यह दलील थी कि वह महाराष्ट्र के वंशानुगत सरदेशमुख हैं इसलिए उन्हें यह कर वसूलने का अधिकार है।

सरदेशमुखी एकत्र करने के बदले में मराठे किसी भी प्रकार का प्रशासनिक दायित्व नहीं निभाते थे और केवल अपने सैनिक बल का उपयोग कर इस अतिरिक्त कर को वसूलते थे। **1719** में पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने शाहू की ओर से सैयद बन्धुओं के साथ सन्धि की जिसके अन्तर्गत मराठों को दक्षिण के छह मुगल सूबों में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया गया परन्तु इस सन्धि की शर्तें सैयद बन्धुओं के पतन और तत्पश्चात निज़ामुल-मुल्क के विरोध के कारण लागू नहीं हो सकीं। बाजीराव ने **1724** में पालखेद के युद्ध में निज़ामुल-मुल्क को पराजित कर मराठों के लिए दक्षिण के मुगल सूबों में चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार प्राप्त कर लिया। गुजरात में मराठों ने मुगल सूबेदार सरबुलन्द खां को पराजित कर वहां भी अपने लिए चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार प्राप्त कर लिया। सरदेशमुखी मराठों के राजस्व का एक महत्वपूर्ण भाग होता था।

जैसे-जैसे मराठों की शक्ति का विस्तार हुआ वैसे-वैसे सरदेशमुखी से प्राप्त आय में वृद्धि होती चली गई किन्तु मराठा शक्ति का पराभव होते ही इसमें कमी आती गई।

मराठों को अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का कोई परम्परागत अथवा नैतिक अधिकार नहीं था किन्तु अपनी तलवार के बल पर वह इसे वसूलते रहे। इस प्रकार की कर वसूली से वह पूरे भारत में लुटेरे के रूप में बदनाम हुए और इसके कारण उन्हें किसी भी भारतीय शक्ति का स्थायी रूप से कभी भी साथ नहीं मिल सका।

9.3.3 महाराष्ट्र धर्म

सरस्वती गंगाधर ने **15** वीं शताब्दी के अन्त में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **गुरु चरित्र** में पहली बार 'महाराष्ट्र धर्म' शब्द का प्रयोग किया था। परन्तु 'महाराष्ट्र घर्म' की पृष्ठभूमि तैयार करने का श्रेय पण्ढरपुर के सन्तों को जाता है। इस धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन में पश्चिमी यूरोप के रिफ़ॉर्मेशन मूवमेन्ट की भांति धर्म-पुरोहितों के महत्व को चुनौती दी गई थी, जातीय असमानता को इसमें नकारा गया था और कर्मकाण्ड का विरोध किया गया था। सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा भगवद् गीता की मराठी में लिखी गई टिप्पणी ज्ञानेश्वरी ने मराठी भाषियों को भावनात्मक स्तर पर एकसूत्र में बांधने में अभूतपूर्व योगदान दिया। सन्त नामदेव, सन्त चोखामेला तथा सन्त तुकाराम ने मराठों को जांत-पांत के बन्धनों को तोड़कर एकसूत्र होने का सन्देश दिया।

समर्थ गुरु रामदास के ग्रंथ दशबोध में महाराष्ट्र के निवासियों को एकसूत्र में बंधने का उपदेश दिया गया है। गुरु रामदास भगवान राम के साथ हनुमान के भी भक्त थे। उन्होंने महाराष्ट्र में अखाड़ों की स्थापना की जहां पर कि शिष्यों को चारित्रिक निर्माण के साथ शरीर सौष्टव की भी शिक्षा दी जाती थी। उन्होंने मराठों को भगवान के जयिश्नु रूप की भक्ति करने का उपदेश दिया। उन्होंने शिवाजी को राजधर्म और क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया और उन्हें इसके लिए प्रेरित किया कि वह मुस्लिम आततायियों का विनाश कर स्वराज की स्थापना करने के साथ-साथ धर्म की भी स्थापना करें।

शिवाजी ने महाराष्ट्र धर्म को विकसित करने वाले सन्तों की सामाजिक समता की भावना को ग्रहण कर अपना सैनिक व राजनीतिक उत्थान करने के लिए समाज में हीन स्थिति रखने वाले किन्तु वीरोचित गुणों से भरपूर कुनबी, रमोशी, महार, कोली और मांगों को अपनी सेना में भर्ती किया। शिवाजी ने धर्म स्थापना और हिन्दू धर्म की स्थापना को एक ही माना और उसे स्वराज्य की स्थापना से घनिष्ट रूप से जोड़ दिया।

स्वराज्य की स्थापना कर शिवाजी ने 'महाराष्ट्र धर्म' के संरक्षण हेतु समुचित उपाय किए। एम0 जी0 रानाडे यह मानते हैं कि शिवाजी के नेतृत्व में मराठों का राजनीतिक व सैनिक उत्थान महाराष्ट्र में हो रहे धार्मिक आन्दोलन का प्रतिबिम्बन था। पेशवाओं के प्रभुत्व-काल में 'महाराष्ट्र धर्म' की महत्ता बनी रही। छत्रपति शाहू ने अपने चचेरे भाई शम्भाजी के निज़ाम के साथ गठबन्धन को 'महाराष्ट्र धर्म' की भावना के विरुद्ध बताया था। **1740** में बेसीन में पुर्तगालियों द्वारा मन्दिरों के विध्वंस को 'महाराष्ट्र धर्म' को विनष्ट करने का प्रयास बताया गया था।

ब्रिटिश कालीन भारत में एम0 जी0 रानाडे, लोकमान्य तिलक तथा वीर सावरकर ने 'महाराष्ट्र धर्म' की शिक्षाओं के अनुरूप मराठों में सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक जागृति विकसित करने का प्रयास किया था।

9.3.4 अष्ट प्रधान

रामायण तथा महाभारत में शासकों के अष्ट सदस्यीय मन्त्रिमण्डल का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा बादशाह अकबर ने अपने नव-सदस्यीय मन्त्रिमण्डल को नवरत्न का नाम दिया था और विजयनगर के महान शासक कृष्ण देव राय ने अपने अष्ट-सदस्यीय मन्त्रिमण्डल को अष्ट दिग्गज का। शिवाजी ने इन्हीं शासकों से प्रेरणा लेकर अपने अष्ट-सदस्यीय मन्त्रिमण्डल को अष्ट प्रधान का नाम दिया। शिवाजी ने रघुनाथ पण्डित हनुमन्ते के निरीक्षण में प्रशासनिक विशेषज्ञों की सहायता से राज-व्यवहार कोश का निर्माण कराया था और अपने प्रशासन को प्राचीन हिन्दू राज्य-व्यवस्था के अनुरूप विकसित किया। उन्होंने अष्ट प्रधान का गठन किया। अष्ट प्रधान के अन्तर्गत मन्त्रियों का विवरण निम्नवत है -

1. **पन्त प्रधान अथवा पेशवा -** यह छत्रपति का प्रधानमन्त्री होता था। प्रशासन के सभी कार्यों का निष्पादन इसी की देखरेख में होता था। इसकी स्थिति अन्य मन्त्रियों से ऊपर होती थी। राजकीय पत्राचार एवं दस्तावेज़ों पर इसकी मुहर लगती थी। विजित क्षेत्रों की सुरक्षा का प्रबन्ध इसकी देखरेख में किया जाता था। अष्ट प्रधान के प्रथम पन्त प्रधान अथवा पेशवा थे - मोरो त्रिम्बक पिंगले।
2. **अमात्य अथवा मजूमदार -** यह वित्त एवं राजस्व मन्त्री होता था। राज्य की आय-व्यय का लेखा-जोखा इसी की देखरेख में रखा जाता था। अष्ट प्रधान के पहले अमात्य अथवा मजूमदार थे - रामचन्द्र नीलकण्ठ।
3. **मन्त्री अथवा वाकियानवीस -** इसका दायित्व मुख्यतः वर्तमान गृह मन्त्री के दायित्व के समान होता था। राज्य की गुप्तचर व्यवस्था इसी के आधीन होती थी। छत्रपति से मिलने-जुलने वालों का लेखा-जोखा रखना तथा

छत्रपति की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करना इसी का दायित्व होता था। अष्ट प्रधान के पहले मन्त्री अथवा वाकियानवीस थे - दत्ताजी त्रिम्बक।

4. सुमन्त अथवा दबीर - यह विदेश विभाग का मन्त्री होता था। अन्य राज्यों से सम्बन्ध, उनके राजदूतों से मिलकर उनकी छत्रपति से भेंट कराने तथा अन्य राज्यों में छत्रपति के राजदूत भेजने की व्यवस्था का दायित्व इसी का होता था। अन्य राज्यों के साथ युद्ध करने अथवा शान्ति स्थापित कराने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। राज्य की विदेश नीति को निर्धारित करना इसी का दायित्व था। अष्ट प्रधान के पहले सुमन्त थे - रामचन्द्र त्रिम्बक।

5. सचिव अथवा सुरनिस - राजाज्ञाओं को तैयार करने का दायित्व सचिव का होता था। यह शाही सचिवालय का प्रमुख होता था। अष्ट प्रधान के पहले सचिव थे - अन्नाजी दत्तो।

6. सेनापति अथवा सरेनौबत - यह राज्य का प्रमुख सेनापति होता था। सैनिक अभियानों के संचालन में इसकी मुख्य भूमिका होती थी। सैनिक संगठन, सैनिकों की नियुक्ति, अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण, उनका अन्य क्षेत्रों से क्रय और उनका निरीक्षण, किलों व दुर्गों की देखरेख, नए किलों व दुर्गों के निर्माण, मुल्कगीरी अर्थात् पड़ौसी राज्यों को लूटने के लिए किए जाने वाले सैनिक अभियानों का संचालन आदि उसके दायित्व थे। अष्ट प्रधान के पहले सेनापति अथवा सरेनौबत थे - हम्बीर राव मोहिते।

7. न्यायाधीश - न्याय वितरण का दायित्व न्यायाधीश का होता था। इसके अधिकार में राज्य के समस्त दीवानी व फ़ौजदारी के मामले आते थे। अष्ट प्रधान के पहले न्यायाधीश थे - नीराजी राव।

8. पण्डित राव अथवा दानाध्यक्ष - यह धार्मिक मामलों का मन्त्री होता था। छत्रपति को धार्मिक विषयों में सलाह देने तथा धार्मिक उत्सवों के आयोजन का दायित्व इसी का होता था। राज्य की ओर से धार्मिक व शैक्षिक अनुदानों की व्यवस्था इसी के द्वारा होती थी। धार्मिक व जातीय विवादों का निबटारा भी पण्डित राव ही करता था। अष्ट प्रधान के पहले पण्डित राव थे - मोरेश्वर पण्डित राव।

अष्ट प्रधान के सदस्यों की नियुक्ति करने अथवा उनको अपदस्थ करने का एकाधिकार छत्रपति का होता था। किसी भी मन्त्री का पद वंशानुगत नहीं होता था और उसकी नियुक्ति की अवधि छत्रपति की अपनी इच्छा पर निर्भर करती थी। इन मन्त्रियों की भूमिका मुख्य रूप से छत्रपति को परामर्श देने की होती थी। अष्ट प्रधान के सदस्यों को छत्रपति की ओर से उनकी सेवाओं के बदले वेतन दिया जाता था न कि कोई जागीर। न्यायाधीश तथा पण्डित राव के अतिरिक्त सभी मन्त्रियों को सैनिक अभियानों का दायित्व भी दिया जाता था। शिवाजी के अष्ट प्रधान की कार्य प्रणाली पर मुगल शासकों की राज्य व्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था।

शिवाजी की मृत्यु के बाद छत्रपति सम्भाजी की अयोग्यता और परवर्ती छत्रपतियों की डांवाडोल स्थिति के कारण अष्ट प्रधान की राज्य में भूमिका नाममात्र की रह गई।

9.3.5 सेनाकर्ते

मराठों की सेना में सेनापति के बाद सेनाकर्ते दूसरा उच्चस्थ अधिकारी होता था। इसका कार्य सैनिक संगठन से सम्बद्ध था। सभी सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति तथा उनके वेतन, उनकी जागीर आदि के विषयों को वही देखता था। सैनिकों की हाज़िरी, उनके अस्त्र-शस्त्रों की जांच-पड़ताल तथा उनके पशुओं की निशानदेही के बाद ही वह उनके वेतन का निर्धारण तथा उनके वितरण की व्यवस्था करता था। सेनाकर्ते को छत्रपति के साथ सीधे सम्पर्क करने का अधिकार था और यह उसका दायित्व था कि वह सैन्य प्रशासन की समस्त आवश्यक जानकारी छत्रपति को दे। अपने इस दायित्व के सन्दर्भ में वह सेनापति के आधीन नहीं था। सेनाकर्ते का पद सेना में शक्ति के विभाजन की नीति के आधार पर किया गया था। 'सेनापति' तथा 'सेनाकर्ते' दो समानान्तर पद थे। सेनाकर्ते को हम मुगल काल के मीर बक्शी और सल्तनत काल के मीर-ए-अर्ज़ के समकक्ष रख सकते हैं।

जून, **1708** में धानाजी जाधव की मृत्यु के बाद राज्य के प्रति उसकी सेवाओं के बदले अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के उद्देश्य से उसके युवा पुत्र चन्द्रसेन जाधव को छत्रपति शाहू ने सेनापति नियुक्त किया था। चन्द्रसेन जाधव की अनुभवहीनता और उसकी सन्देहास्पद निष्ठा को देखते हुए उसकी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए शाहू ने योग्य एवं अपने विश्वासपात्र बालाजी विश्वनाथ को सेनाकर्ते नियुक्त किया था। सेनापति चन्द्रसेन जाधव और सेनाकर्ते बालाजी विश्वनाथ कभी भी मिलकर काम नहीं कर सके। बाद में चन्द्रसेन नाराज़ होकर शाहू को छोड़कर ताराबाई के गुट में शामिल हो गया। सेनाकर्ते के रूप में बालाजी विश्वनाथ ने छत्रपति शाहू को अपनी ज़िम्मेदारी पर महाजनों से कर्ज़ लेकर आर्थिक संकट से उबारा, उसकी सेना का पुनर्गठन किया और चन्द्रसेन जाधव सहित अन्य बागी सरदारों का दमन किया अथवा उन्हें फिर से शाहू के गुट में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। छत्रपति शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा के साथ सेनापति का पद भी प्रदान कर दिया जिसके बाद सेनाकर्ते के पद की महत्ता कम हो गई।

9.3.6 पेशवा

पेशवा अथ्वा पन्त प्रधान शिवाजी के शासनकाल में अष्ट प्रधान का प्रमुख होता था। एक सीमा तक अन्य मन्त्रियों के ऊपर नियन्त्रण रखने के भी अधिकार इसे प्राप्त थे। राजकीय पत्राचार एवं दस्तावेज़ों पर इसकी मुहर लगती थी। सैनिक अभियानों के संचालन का दायित्व भी इसे सौंपा जाता था। विजित क्षेत्रों की सुरक्षा का प्रबन्ध इसकी देखरेख में किया जाता था। शिवाजी के पेशवा थे - मोरो त्रिम्बक पिंगले। मराठा स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान शिवाजी के पुत्र राजाराम ने पेशवा रामचन्द्र नीलकण्ठ पन्त को हुकूमत पन्ह की उपाधि प्रदान की और उसे अपनी अनुपस्थिति में राज्य के संचालन का दायित्व सौंपा।

बालाजी विश्वनाथ को **1713** में छत्रपति शाहू ने अपना पेशवा बनाया। छत्रपति शाहू ने उसे पूना की जागीर प्रदान की जिसमें कि उसकी प्रतिष्ठा एक स्वतन्त्र शासक की हो गई। बालाजी विश्वनाथ ने शिवाजी के हिन्दू-पद-पादशाही के

स्वप्न को साकार करने की योजना बनाई और इस उसने हेतु मराठा राज्य संघ का पुनर्गठन किया। बालाजी विश्वनाथ के बाद पेशवा का पद उसी के वंश में रहा आया अर्थात् वह वंशानुगत हो गया।

पेशवा बाजीराव प्रथम ने विघटित मुगल साम्राज्य की दुर्बलता का लाभ उठाने के लिए मराठा राज्य संघ को सशक्त बनाया। उसके काल में पेशवा की जागीर की राजधानी पूना मराठा शक्ति की ही नहीं अपितु समस्त भारत की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गई। पूना में पेशवा के सचिवालय हुज़ूर दफ्तर ने छत्रपति के प्रशासनिक कार्यों को सम्भाल लिया।

पेशवा बालाजी बाजी राव के काल में मराठों का दबदबा अब उड़ीसा व पंजाब तक पहुंच गया। अब पेशवा के नेतृत्व में मराठों की महत्वाकांक्षा समस्त भारत में एक हिन्दू साम्राज्य (हिन्दू पद-पादशाही) स्थापित करने की हो गई। किन्तु मराठों की आपसी फूट के कारण और पूरे भारत में उनकी लूटमार करने की प्रवृत्ति के कारण उनके अलग-थलग पड़ जाने से उनका यह स्वप्न साकार नहीं हो सका।

माधवराव प्रथम के बाद कोई भी पेशवा योग्य सिद्ध नही हुआ। मराठा राज्य संघ पर पेशवा की पकड़ कमज़ोर होती चली गई और उनके शत्रु अंग्रेज़ों की शक्ति बढ़ती चली गई। मराठा राज्य संघ का प्रमुख पेशवा बाजीराव द्वितीय सैनिक प्रतिभा व कूटनीतिक प्रतिभा से सर्वथा वंचित होने के बाद भी एक बार फिर अपने नेतृत्व में मराठा शक्ति का पुनरुत्थान करना चाहता था किन्तु अष्टी के युद्ध में अंग्रेज़ों के हाथों उसकी निर्णायक पराजय के बाद अंग्रेज़ों द्वारा मराठा राज्य संघ को भंग कर दिया गया और पेशवा बाजीराव से सभी राजनीतिक व सैनिक शक्ति छीनकर उसे पेंशन देकर बिठूर भेज दिया गया।

बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब ने पेशवा के पद को पुनप्रर्तिष्ठित करने के उद्देश्य से **1857** के विद्रोह में भाग लिया किन्तु विद्रोह की असफलता ने उन्हें भारत छोड़कर नैपाल में शरण लेने के लिए विवश किया। अब भारतीय राजनीतिक मंच से पेशवा शब्द हमेशा-हमेशा के लिए हट गया।

9.3.7 छत्रपति

'छत्रपति' एक राजकीय उपाधि है जो कि **6** जून, **1674** में रायगढ़ में अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक स्वतन्त्र एवं पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक के रूप में शिवाजी ने धारण की थी। 'छत्रपति' शब्द का उद्गम संस्कृत भाषा के 'क्षेत्रपति' (एक क्षेत्र का स्वामी) से हुआ है। मराठी भाषा में 'छत्रपति' का तात्पर्य है - एक शासक जो कि अपनी प्रजा को अपनी छाया देता हो अर्थात् उसकी रक्षा एवं उसका पोषण करता हो। शिवाजी ने क्षत्रिय कुलवन्त की उपाधि घारण की थी और स्वयं क्षत्रियों में सिरमौर सिसौदिया कुल का वंशज होने का दावा किया था। इस परिप्रेक्ष्य में 'छत्रपति' का एक अन्य अर्थ - 'क्षत्रिय-पति' अर्थात् क्षत्रिय अथवा योद्धाओं का स्वामी भी होता है। 'छत्रपति' शब्द संस्कृत भाषा के 'सम्राट', अंग्रेज़ी भाषा के 'एम्परर' तथा फ़ारसी भाषा के 'बादशाह' अथवा 'पादशाह' के समतुल्य है।

एक पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक के रूप में शिवाजी ने अपने नाम के सिक्के चलवाए, अपने राज्याभिषेक की तिथि से एक नया सम्वत् चलवाया, अपने दरबार को भव्यता प्रदान की, प्राचीन भारतीय शासकों की शासन-पद्धति से प्रेरित होकर अष्ट प्रधान का गठन किया, अपनी प्रजा को सुरक्षा तथा आत्मोन्नति का अवसर प्रदान किया, पड़ौसी राज्यों तथा दूरस्थ राज्यों से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए, अपने साम्राज्य की रक्षा तथा उसके विस्तार के लिए नियमित थल-सेना तथा नौ-सेना का गठन किया।

छत्रपति सम्भाजी की संगामेश्वर में मुगलों द्वारा गिरफ्तारी और फिर उसकी हत्या से 'छत्रपति' की प्रतिष्ठा में कमी आई। मराठा स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान 'छत्रपति' केवल नाममात्र की सत्ता का परिचायक रह गया। **1710** में सतारा और कोल्हापुर दोनों ही स्थानों पर दो 'छत्रपति' स्थापित हो गए। **1731** की वारना की संधि से दो छत्रपतियों की व्यवस्था को दोनों प्रतिद्वन्दी गुटों ने स्वीकार कर लिया।

छत्रपति शाहू ने राज्य की वास्तविक सत्ता पेशवा को सौंप दी थी। परवर्ती छत्रपति सतारा व कोल्हापु में पेंशनर का सा जीवन व्यतीत करने लगे थे। **1818** में अंग्रेज़ों ने मराठा राज्य संघ के विघटन के बाद सतारा (केवल **1849** तक) और कोल्हापुर में नाम मात्र के 'छत्रपति' बने रहे किन्तु भारत की स्वतन्त्रता के बाद 'छत्रपति' पद का अस्तित्व विधिवत समाप्त हो गया।

9.3.8 हिन्दू-पद-पादशाही

पिछली चार शताब्दियों से भी अधिक समय से चले आ रहे मुस्लिम शासन के कारण हिन्दुओं ने न केवल अपनी स्वतन्त्रता खोई थी अपितु अपना वैभव और अपनी समृद्धि भी खोई थी। परन्तु मुस्लिम आक्रान्ताओं ने उनकी धार्मिक भावनाओं पर चोट कर उनको सबसे अधिक कष्ट पहंुचाया था। दक्षिण में विजय नगर साम्राज्य, उत्तर भारत में हेमू - हेमचन्द्र विक्रमादित्य, मेवाड़ में महाराणा प्रताप और जैसोर में महाराज प्रतापादित्य के स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना के प्रयास दीर्घजीवी नहीं रहे थे।

बादशाह औरंगज़ेब ने इस्लाम के संरक्षक बनने का दावा कर हिन्दुस्तान को दारुल-हर्ब (विधर्मियों का देश) से दारुल-इस्लाम (आस्तिकों अर्थात् मुसलमानों का देश) बनाने का बीड़ा उठाया था। हिन्दुओं की इस अपमानजनक और दुखदायी स्थिति देखकर समर्थ गुरु रामदास तथा शिवाजी ने हिन्दू-पद-पादशाही अर्थात् भारत में मुगल साम्राज्य एवं अन्य मुस्लिम राज्यों का उन्मूलन कर फिर से हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देखा था। **1674** में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ और उन्होंने हिन्दू धर्म, संस्कृति और आदर्शों के संरक्षण व पोषण हेतु स्वराज्य की स्थापना की। किन्तु शिवाजी के स्वराज्य की सीमा महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा तमिलनाडु के एक भाग तक ही सीमित थी। शिवाजी ने हिन्दू-पद-पादशाही का बीज बोकर उसकी पौध तो तैयार कर दी थी किन्तु अभी इस पौधे को सींचकर बड़ा करने का काम उन्होंने आने वाली पीढ़ियों पर छोड़ दिया था।

शिवाजी के स्वराज को हिन्दवी स्वराज तक विकसित करने और उनके हिन्दू-पद-पादशाही के स्वप्न को साकार करने का प्रयास पेशवा बालाजी विश्वनाथ से लेकर तीसरे पेशवा बालाजी बाजीराव तक के काल में हुआ था। पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने मराठा राज्य संघ का पुनर्गठन किया।

पेशवा बाजीराव प्रथम ने विघटित मुगल साम्राज्य की दुर्बलता का लाभ उठाने के लिए मराठा राज्य संघ को सशक्त बनाया। अब उसने मराठों के लिए रक्षात्मक नहीं अपितु आक्रामक नीति अपनाकर मराठा शक्ति का विस्तार किया। अपने भाई चिमनाजी अप्पा, होल्कर, सिंधिया, भोंसले, गायकवाड़, पवार आदि घरानों की सहायता से उसने मराठा शक्ति का अभूतपूर्व विस्तार कर उसे भारत की सर्व-प्रमुख शक्ति बना दिया।

पेशवा बालाजी बाजी राव के काल में मराठा शक्ति चरमोत्कर्ष पर पहुंची। महाराष्ट्र कोंकण, मालवा, गुजरात, बुन्देलखण्ड पर मराठों का अधिकार था ही अब उड़ीसा व पंजाब तक उनका दबदबा स्थापित हो गया। काशी, मथुरा, कुरुक्षेत्र आदि हिन्दू तीर्थों पर फिर से हिन्दुओं का अधिकार कराने में भी मराठों ने योगदान दिया।

अब पेशवा के नेतृत्व में मराठों की महत्वाकांक्षा समस्त भारत में एक हिन्दू साम्राज्य (हिन्दू पद-पादशाही) स्थापित करने की हो गई। पेशवा बालाजी बाजीराव ने दिल्ली को जीत कर उसे मराठा साम्राज्य का एक अंग बनाने तथा वहां पर अपने पुत्र विश्वासराव को सिंहासनारूढ़ करने का स्वप्न देखा। **1760** में सदाशिव राव भाऊ तथा विश्वासराव के नेतृत्व में उत्तर भारत की विजय के लिए मराठा इतिहास का सबसे बड़ा सैनिक अभियान प्रारम्भ हुआ। किन्तु मराठों की आपसी फूट, उनके पास संसाधनों की कमी और अब्दाली की सेना की तुलना में उनकी सैनिक अयोग्यता, अब्दाली को स्थानीय मुस्लिम शक्तियों के सहयोग व मराठों को देश की किसी भी शक्ति का सहयोग न मिलने के कारण उनका हिन्दू-पद-पादशाही स्थापित करने का स्वप्न पानीपत के तृतीय युद्ध में चकनाचूर हो गया।

पेशवा माधवराव प्रथम और बाद में महादजी सिन्धिया ने मराठा शक्ति को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया किन्तु मराठों की आपसी फूट, उनकी पिछड़ी हुई रणनीति, उनमें कुशल नेतृत्व के अभाव तथा भारत में अंग्रेज़ों की शक्ति के विस्तार के साथ हिन्दू-पद-पादशाही की स्थापना की सम्भावना पूर्णरूपण समाप्त हो गई।

9.3.9 मराठा राज्य संघ

छत्रपति शिवाजी तथा सम्भाजी के शासनकाल में मराठा राज्य संघ अथवा 'महाराष्ट्र मण्डल' का अस्तित्व नहीं था क्योंकि राज्य पर छत्रपति का एकछत्र शासन था। छत्रपति सम्भाजी की निर्मम हत्या के बाद राजाराम ने मुगलों का प्रतिरोध करने तथा उनपर सैनिक आक्रमण करने के लिए मराठा राज्य संघ का विकास किया था। राजाराम ने मुगल सूबों में चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार भोंसले, निम्बालकर, दाभाडे, शिन्दे तथा अन्य मराठा सरदारों को सौंप दिया था। बाद में उसने विभिन्न क्षेत्रों में इन सरदारों की स्थायी नियुक्ति कर उन्हें वहां की जागीर भी दे दीं। इन

जागीरों से प्राप्त आय से मराठा सरदार जहां अपना निजी खर्च चला सकते थे वहीं इससे अपनी सेना का रख-रखाव भी कर सकते थे।

शाहू की मुगल कैद से रिहाई के समय कुछ मराठा सरदार शाहू के साथ थे तो कुछ ताराबाई के साथ और कुछ ने मुगलों की शरण ली थी। **1713** में बालाजी विश्नाथ ने पेशवा का पद सम्भालने के बाद मराठा राज्य संघ का पुनर्गठन किया। बालाजी विश्वनाथ ने मराठा सरदारों की स्वतन्त्र प्रवृत्ति और उनकी महत्वाकांक्षाओं को देखते हुए पेशवा के नेतृत्व में मराठा सरदारों को अविजित क्षेत्रों को जीतने तथा उन पर स्थायी रूप से अधिकार के एवज़ में उन्हें छत्रपति के नाम पर इन विजित क्षेत्रों का व्यावहारिक दृष्टि से वास्तविक शासक बनाए जाने का प्रलोभन दिया। अपनी कूटनीतिक प्रतिभा से बालाजी विश्वाथ ने पेशवा को मराठा राज्यसंघ का प्रमुख बनवा दिया।

पेशवा बाजीराव प्रथम ने विघटित मुगल साम्राज्य के खण्डहर पर मराठा साम्राज्य की नींव स्थापित करने की योजना बनाई। साम्राज्य विस्तार का यह गुरुतर कार्य छत्रपति के झण्डे के नीचे किन्तु पेशवा के नेतृत्व में मराठा राज्य संघ को करना था। मराठा सरदारों को अपने द्वारा जीते गए क्षेत्रों पर स्वयं अपने लिए तथा अपने परिवार के लिए स्थायी रूप से अधिकार करने की खुली छूट ने बाजीराव प्रथम के साथ उसके चिमनाजी अप्पा, होल्कर, सिन्धिया, गायकवाड़, भोंसले, पवार आदि साहसी मराठे सरदारों को खड़ा कर दिया। पूना में पेशवा, नागपुर में भोंसले, गुजरात में गायकवाड़, मालवा में होल्कर तथा ग्वालियर व उज्जैन में सिन्धिया ने अपने-अपने लिए लगभग स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की।

पेशवा बालाजी बाजीराव के काल में मराठा प्रभाव क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हुई। अब मराठों ने पेशवा के नेतृत्व में हिन्दू-पद-पादशाही के स्वप्न को साकार करना चाहा। किन्तु मराठा राज्य संघ पर बालाजी बाजीराव की पकड़ अपने पिता के समान नहीं रह पाई। **1761** के पानीपत के युद्ध में मराठों की आपसी फूट स्पष्ट दिखाई दी और इसमें मराठों की निर्णायक पराजय ने मराठा राज्य संघ को अत्यन्त कमज़ोर कर दिया।

पेशवा माधराव प्रथम अन्तिम पेशवा था जिसके काल में मराठा राज्य संघ को पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया था। **1772** में उसकी मृत्यु के बाद व्यावहारिक दृष्टि से मराठा राज्य संघ विघटित हो गया था और मराठे सरदार विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र शासक के रूप में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में व्यस्त हो गए। किन्तु **1775** से लेकर **1782** तक चले प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध के दौरान मराठों में फिर एकता दिखाई दी थी।

नाना फडनवीस ने रघुनाथराव (राघोबा) और अंग्रेज़ों की संयुक्त चालों को नाकाम किया और उसके जीवित रहते अंग्रेज़ मराठा राज्य-संघ को भंग नहीं कर पाए। अब सभी मराठा सरदार अपनी-अपनी अलग राह पर चल रहे थे। गायकवाड़ ने अंग्रेज़ों की आधीनता स्वीकार कर ली थी। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने मराठा राज्य-संघ के विनाश से भारत में ब्रिटिश सम्प्रभुता स्थापित की। **1817** में मराठा स्वायत्तता के लिए प्रयत्नशील भोसले को सीताबल्दी, होल्कर को

महीदपुर में तथा पेशवा को कोरेगांव व अष्टी में अंग्रेज़ों ने पराजित किया। **1818** में मराठा राज्य संघ को भंग कर दिया गया। बाजीराव द्वितीय को पेशवा के पद से अपदस्थ कर पेंशन देकर बिठूर भेज दिया गया। इस प्रकार **1818** में मराठा राज्य सघ का पतन कर अंग्रेज़ों ने भारत में अपनी पूर्ण सम्प्रभुता स्थापित कर ली।

9.3.10 'देशमुख'

'देशमुख' एक ऐतिहासिक उपाधि थी जो कि उस व्यक्ति को दी जाती थी जिसे विशिष्ट क्षेत्रों में (विशेषकर महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में) एक भू-क्षेत्र अनुदान में दिया जाता था। मराठी भाषा में देशमुख का अर्थ है - देश अर्थात् जिला और मुख अर्थात् प्रमुख, यानी जिले का प्रमुख। 'देशमुख' को जो क्षेत्र अनुदान में मिलता था उसे 'देशमुखी' कहा जाता था। 'देशमुख' अनुदान में प्राप्त भू-क्षेत्र का वास्तव में शासक होता था। उसे इस क्षेत्र से कर एकत्र करने का अधिकार होता था और चूंकि कर एकत्र करना उसका अधिकार था तो उससे जुड़े हुए उस क्षेत्र की रक्षा करने के तथा न्याय-वितरण करने के दायित्व भी उसी के होते थे। धीरे-धीरे यह क्षेत्र 'वतन' अर्थात् वंशानुगत जागीर में परिवर्तित होते चले गए। 'देशमुख' उपाधि को हम यूरोपीय कुलीन व्यवस्था में ड्यूक अथवा काउण्ट के समकक्ष रख सकते हैं। देशमुख व्यवस्था की तुलना हम ज़मींदार अथवा जागीर प्रणाली से कर सकते हैं और इसे हम एक सामन्तीय व्यवस्था मान सकते हैं।

'देशमुख' (और 'देशपाण्डे') ज़मींदारों के वंशज थे जिन्हें शिवाजी ने उनके आनुवंशिक पदों से हटा दिया था पर उन्हें अपने पारम्परिक कर वसूलने का अधिकार दे दिया था। पेशवाओं ने इस व्यवस्था को कायम रखा था। राजनीतिक व्यवस्था में चाहे जो भी बदलाव आए, आमतौर पर शीर्षस्थ सत्ता ने इस स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास नहीं किया। 'देशमुख' की संस्था को स्थानीय समर्थन मिलता रहा और यह संगठित सामुदायिक जीवन का एक अंग बनी रही। 'देशमुख' जागीरों, सम्पत्तियों के हस्तान्तरण और बटवारे से सम्बन्धित रिकॉर्ड रखते थे। परगने के निवासियों की सभाओं (गोत सभाओं) की अध्यक्षता 'देशमुख' ही करते थे और इन्हीं सभाओं में उत्तराधिकार, 'वतन' के क्रय-विक्रय एवं हस्तान्तरण विषयक दावों का निबटारा किया जाता था। 'देशमुख' प्रान्तीय व जिला-स्तरीय प्रशासन के विभागों के प्रभारियों - 'मामलतदारों' के भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखने का काम सम्भालते थे। इनके इस कार्य में वंशानुगत अधिकारी 'दराकदार' इनकी सहायता करते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में निज़ाम के राज्य में उसके प्रधानमन्त्री सालारजंग ने अपने प्रशासनिक सुधारों में तेलंगाना में इस व्यवस्था को सम्मिलित किया था। महाराष्ट्र, कर्नाटक और तेलंगाना की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में 'देशमुखों' का दबदबा दीर्घ काल तक कायम रहा।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. चौथ

2. छत्रपति

3. हिन्दू-पद-पादशाही

9.4 सारांश

चौथ मराठों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र से इतर क्षेत्र में वसूला जाने वाला कर था जो कि कुल राजस्व का चौथाई भाग होता था। इसे मराठे अपने अधिकृत क्षेत्र से बाहर के लोगों से वसूलते थे। एम0 जी0 रानाडे के अनुसार चौथ सैन्य कर था जो किसी वाह्य शक्ति के आक्रमण के समय सुरक्षा प्रदान करने के बदले में वसूल किया जाता था। परन्तु जदुनाथ सरकार इसको बिना किसी दायित्व की लूट मानते हैं।

विजित क्षेत्रों में मराठों द्वारा मांगा जाने वाला अतिरिक्त कर (कुल भू-राजस्व का दस प्रतिशत) सरदेशमुखी कहलाता था। सरदेशमुखी एकत्र करने के बदले में मराठे किसी भी प्रकार का प्रशासनिक दायित्व नहीं निभाते थे और केवल अपने सैनिक बल का उपयोग कर इस अतिरिक्त कर को वसूलते थे।

सरस्वती गंगाधर ने **15** वीं शताब्दी के अन्त में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ गुरु चरित्र में पहली बार 'महाराष्ट्र धर्म' शब्द का प्रयोग किया था। परन्तु 'महाराष्ट्र घर्म' की पृष्ठभूमि तैयार करने का श्रेय पण्ढरपुर के सन्तों को जाता है। सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त नामदेव, सन्त चोखामेला, सन्त तुकाराम और समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र के निवासियों को एकसूत्र में बंधने का उपदेश दिया। एम0 जी0 रानाडे यह मानते हैं कि शिवाजी के नेतृत्व में मराठों का राजनीतिक व सैनिक उत्थान महाराष्ट्र में हो रहे धार्मिक आन्दोलन का प्रतिबिम्बन था।

शिवाजी ने महान प्राचीन शासकों से प्रेरणा लेकर अपने अष्ट-सदस्यीय मन्त्रिमण्डल को अष्ट प्रधान का नाम दिया। अष्ट प्रधान के अन्तर्गत मन्त्री थे - पेशवा अथवा पन्त प्रघान, अमात्य अथवा मजूमदार, मन्त्री अथवा वाकियानवीस, सुमन्त अथवा दबीर, सचिव अथवा सुरनिस, सेनापति अथवा सरेनौबत, न्यायाधीश तथा पण्डित राव।

मराठों की सेना में सेनापति के बाद सेनाकर्ते दूसरा उच्चस्थ अधिकारी होता था। इसका कार्य सैनिक संगठन से सम्बद्ध था। 'सेनापति' तथा 'सेनाकर्ते' दो समानान्तर पद थे। सेनाकर्ते को हम मुगल काल के मीर बक्शी और सल्तनत काल के मीर-ए-अर्ज़ के समकक्ष रख सकते हैं।

'पेशवा' शिवाजी के शासनकाल में अष्ट प्रधान का प्रमुख होता था। बालाजी विश्वनाथ को **1713** में छत्रपति शाहू ने अपना पेशवा बनाया और इसके बाद यह पद वंशानुगत हो गया। पेशवा बाजीराव प्रथम ने होल्कर, सिंधिया, भोंसले, गायकवाड़, पवार आदि घरानों की सहायता से उसने मराठा शक्ति का अभूतपूर्व विस्तार किया। पेशवा बालाजी बाजी राव के काल में मराठों की महत्वाकांक्षा हिन्दू पद-पादशाही स्थापित करने की हो गई। किन्तु मराठों की आपसी फूट, लुटेरे के रूप में उनकी बदनामी और उनके शत्रुओं की संगठित शक्ति के कारण उनका यह स्वप्न अधूरा रह गया। माधवराव प्रथम के बाद कोई भी पेशवा योग्य सिद्ध नही हुआ। लॉर्ड वेलेज़ली तथा लॉर्ड हेस्टिंग्स ने भारत में

अंग्रेज़ों को भारत की प्रमुख शक्ति बना दिया। अष्टी के युद्ध में पेशवा बाजीराव द्वितीय को पराजित कर अंग्रेज़ों ने **1818** में मराठा राज्य संघ को भंग कर दिया और पेशवा बाजीराव से सभी राजनीतिक व सैनिक शक्ति छीनकर उसे पेंशन देकर बिठूर भेज दिया।

'छत्रपति' एक राजकीय उपाधि है जो कि **6** जून, **1674** में रायगढ़ में अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक स्वतन्त्र एवं पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक के रूप में शिवाजी ने धारण की थी। छत्रपति शाहू ने राज्य की वास्तविक सत्ता पेशवा को सौंप दी थी। परवर्ती छत्रपति सतारा व कोल्हापु में पेंशनर का सा जीवन व्यतीत करने लगे थे।

शिवाजी ने हिन्दू-पद-पादशाही का बीज बोकर उसकी पौध तो तैयार कर दी थी किन्तु इस पौधे को सींचकर बड़ा करने का काम उन्होंने आने वाली पीढ़ियों पर छोड़ दिया था। पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने शिवाजी के हिन्दू-पद-पादशाही के स्वप्न को साकार करने की योजना बनाई और इस उसने हेतु मराठा राज्य संघ का पुनर्गठन किया। पेशवा बाजीराव प्रथम ने आक्रामक नीति अपनाकर मराठा शक्ति का विस्तार कर उसे भारत की सर्व-प्रमुख शक्ति बना दिया। पेशवा बालाजी बाजी राव के काल में मराठों की महत्वाकांक्षा समस्त भारत में एक हिन्दू साम्राज्य (हिन्दू पद-पादशाही) स्थापित करने की हो गई। मराठा सेना ने इस उद्देश्य से **1760** में उत्तर भारत की ओर प्रस्थान किया किन्तु मराठों की आपसी फूट, उनकी सैनिक दुर्बलता और अब्दाली के सैन्य कौशल के कारण उनका हिन्दू-पद-पादशाही स्थापित करने का स्वप्न पानीपत के तृतीय युद्ध में चकनाचूर हो गया।

छत्रपति सम्भाजी की हत्या के बाद राजाराम ने मुगलों का प्रतिरोध करने तथा उनपर सैनिक आक्रमण करने के लिए मराठा राज्य संघ का विकास किया था। **1713** में बालाजी विश्नाथ ने पेशवा का पद सम्भालने के बाद मराठा राज्य संघ का पुनर्गठन किया। पेशवा बाजीराव प्रथम ने मराठा राज्य संघ को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया। पेशवा बालाजी बाजीराव के काल में मराठों ने पेशवा के नेतृत्व में हिन्दू-पद-पादशाही के स्वप्न को साकार करना चाहा। किन्तु मराठा राज्य संघ पर बालाजी बाजीराव की पकड़ अपने पिता के समान नहीं रह पाई। **1761** के पानीपत के युद्ध में मराठों की आपसी फूट स्पष्ट दिखाई दी और इसमें मराठों की निर्णायक पराजय ने मराठा राज्य संघ को अत्यन्त कमज़ोर कर दिया। पेशवा माधराव प्रथम अन्तिम पेशवा था जिसके काल में मराठा राज्य संघ को पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया था। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अपनी अयोग्यता और अनावश्यक महत्वाकांक्षा के कारण मराठा राज्य संघ के पतन के बीज **1802** में अंग्रेज़ों के साथ बेसीन की सन्धि करके ही बो दिए थे। **1817** में मराठा स्वायत्तता के लिए प्रयत्नशील भोसले को सीताबल्दी, होल्कर को महीदपुर में तथा पेशवा को कोरेगांव व अष्टी में अंग्रेज़ों ने पराजित किया। **1818** में मराठा राज्य संघ को भंग कर दिया गया।

'देशमुख' एक ऐतिहासिक उपाधि थी जो कि उस व्यक्ति को दी जाती थी जिसे विशिष्ट क्षेत्रों में (विशेषकर महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में) एक भू-क्षेत्र अनुदान में दिया जाता था। 'देशमुख' अनुदान में प्राप्त भू-क्षेत्र का वास्तव में

शासक होता था। उसे इस क्षेत्र से कर एकत्र करने का अधिकार होता था और उस क्षेत्र की रक्षा करने के तथा न्याय-वितरण करने के दायित्व भी उसी के होते थे।

9.5 पारिभाषिक शब्दावली

क्रीग स्टैटः युद्ध पर आधारित राज्य

आनुवंशिकः पुश्तैनी

जयिश्नु रूपः शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला रूप

मुल्कगीरीः पड़ौसी राज्यों को लूटने के लिए किए जाने वाले सैनिक अभियान

हुजूर दफ्तरः पूना में पेशवा का सचिवालय

9.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 9**.1.1** चौथ।

2. देखिए 9**.1.7** छत्रपति।

3. देखिए 9**.1.8** हिन्दू-पद-पादशाही।

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

सरकार, जदुनाथ - शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, मिशीगन, **1920**

चौरसिया, आर**0** एस**0** - हिस्ट्री ऑफ़ दि मराठाज़, नई दिल्ली, **2004,**

सावरकर, वी**0** डी**0** - दि मराठा मूवमेन्ट (हिन्दू पद पादशाही),

सारदेसाई, जी**0** एस**0** - दि न्यू हिस्ट्री ऑफ़ दि मराठाज, बम्बई, **1957**

9.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

शर्मा, एस**0** आर**0** - मुगल एम्पायर इन इण्डिया, आगरा, **1974**

सिनहा, एस**0** एन**0** - दि राइज़ ऑफ़ दि पेशवाज़, **1965,** दिल्ली

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

मराठा राज्य संघ के उत्थान एवं पतन पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई दस

उपनिवेशवाद, मुक्त व्यापार, कारखाना, द्वैध शासन, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद, वाणिज्यवाद

10.1 **प्रस्तावना**

10.2 **उद्देश्य**

10.3 **उपनिवेशवाद,मुक्तव्यापार,कारखाना, द्वैध शासन, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद तथा वाणिज्यवाद**

10.3.1 **उपनिवेशवाद**

10.3.2 **मुक्त व्यापार**

10.3.3 **कारखाना**

10.3.4 **द्वैध शासन**

10.3.4.1 **बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना**

10.3.4.2 1919 **के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारां प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था**

10.3.5 **साम्राज्यवाद**

10.3.6 **राष्ट्रवाद**

10.3.7 **वाणिज्यवाद**

10.**4** **सारांश**

10.**5** **पारिभाषिक शब्दावली**

10.**6** **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

10.**7** **संदर्भ ग्रंथ सूची**

10.**8** **सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री**

10.**9** **निबंधात्मक प्रश्न**

10.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारत में उद्योग एवं व्यापार की प्रगति का एक सशक्त उदाहरण राज्य-संरक्षित कारखाने थे। यूरोप में पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति ने एशिया, अमेरिका में यूरोपीय राज्यों के उपनिवेशों की स्थापना के युग का मार्ग प्रशस्त किया और इसके साथ ही उनके द्वारा बहु-आयामीय आर्थिक शोषण व राजनीतिक दमन के नए कीर्तिमान स्थापित किए गए। साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, वाणिज्यवाद तथा मुक्त-व्यापार की नीति में सशक्त शासक राष्ट्रों द्वारा दुर्बल शासित राष्ट्रों पर अत्याचार एवं अन्याय का एक अनवरत क्रम दृष्टिगोचर होता है। **1765** और **1919** में द्वैध शासन की स्थापना ने प्रशासन में शक्ति के विभाजन की अव्यावहारिकता को प्रदर्शित किया। राष्ट्रप्रेम की भावना का विकास तो प्राचीन सभ्यताओं के काल में ही हो चुका था किन्तु राष्ट्रवाद का विकास मुख्यतः **19**वीं शताब्दी में हुआ। भारत तथा अन्य पराधीन राष्ट्रों में राष्ट्रवाद के विकास ने स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय आन्दोलनों को सबल बनाया। इस इकाई में आपको उपनिवेशवाद, मुक्त व्यापार, कारखाना, द्वैध शासन, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद तथा वाणिज्यवाद से परिचित कराया जाएगा।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको अंग्रेज़ों द्वारा भारत में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने से पूर्व भारत की उन्नत औद्योगिक स्थिति से परिचित कराने के अतिरिक्त साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, वाणिज्यवाद तथा द्वैध शासन तथा मुक्त-व्यापार की शोषक व दमनकारी नीतियों/ व्यवस्थाओं की जानकारी देना है। औपनिवेशिक शासन के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद के विकास पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- अंग्रेज़ों के आगमन से पूर्व भारत की औद्योगिक प्रगति के परिचायक कारखानों के विकास के विषय में।

2- साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, वाणिज्यवाद तथा मुक्त-व्यापार के विषय में।

3- द्वैध शासन प्रणाली की अव्यावहारिकता और उसके दोषों के विषय में।

4- राष्ट्रवाद के उद्भव और उसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन केविकास के विषय में।

10.3 उपनिवेशवाद, मुक्त व्यापार, कारखाना, द्वैध शासन, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद तथा वाणिज्यवाद

10.3.1 उपनिवेशवाद

उपनिवेशवाद का अर्थ है - किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी निर्बल किन्तु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न संसाधनों का अपनी शक्ति के बल पर उपयोग करना। उपनिवेशवाद में

उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है, उसे शासन में कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता। वस्तुतः हम किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा निहित स्वार्थवश किसी निर्बल राष्ट्र के शोषण को उपनिवेशवाद कह सकते हैं। ब्रिटानिक रेडी रिफ़रेन्स एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार उपनिवेशवाद किसी शक्ति का अपने अधीनस्थ क्षेत्र तथा उसके निवासियों पर नियन्त्रण है। कॉलिन्स इंग्लिश डिक्शनरी में उपनिवेशवाद को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है -

एक शक्ति (देश) द्वारा अपने से दुर्बल शक्ति (देश) पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने की नीति एवं उसका क्रियान्वयन। उपनिवेशवाद - देशज अथवा दूसरे क्षेत्रों से बलपूर्वक लाए गए (दास, अर्ध-दास, बंधुआ मज़दूर आदि) बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यक विदेशी शासकों के मध्य असमान सम्बन्ध है। इसमें शासित प्रजा के जीवन को प्रभावित करने वाली आधारभूत नीतियों का निर्धारण तथा उनका क्रियान्वयन औपनिवेशिक शक्ति के हितों को ध्यान में रखकर औपनिवेशिक शासकों की राजधानी में किया जाता है। औपनिवेशिक शक्तियां अधीनस्थ प्रजाजनों के साथ किसी भी प्रकार के सांस्कृतिक समझौते को अस्वीकृत करती हैं क्योंकि वो खुद को उनसे श्रेष्ठ मानती हैं और यह भी समझती हैं कि उन्हें शासित शक्तियों पर शासन करने का नैतिक अधिकार है। उपनिवेशवाद के निहितार्थों में उपनिवेश के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, उपनिवेशों के लिए नए बाज़ार का निर्माण तथा उपनिवेशकों की जीवन शैली को अपनी राष्ट्रीय सीमा से परे विस्तारित करना सम्मिलित है। 'व्हाइट मैन्स बर्डेन' श्वेतों द्वारा उपनिवेशों की स्थापना के बाद वहां के निवासियों के मध्य अपनी संस्कृति के प्रचार-प्रसार को न्यायोचित ठहराने का प्रयास था। यह यूरोपीय जातियों का स्व-आरोपित नैतिक दायित्व था जिसके अनुसार वे अपना कर्तव्य मानती रहीं कि अश्वेत जातियों, विशेषकर अधीनस्थ उपनिवेशों की प्रजा का नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान उन्हीं को करना है। रुडयार्ड किपलिंग ने अपनी एक कविता में श्वेत जाति के इस नैतिक दायित्व का उल्लेख किया था।

आधुनिक उपनिवेशवाद का आरम्भ भौगोलिक खोजों के युग के साथ हुआ। स्पेन और पुर्तगाल ने समुद्र पार नए भू-क्षेत्रों की खोज की और उन्हें जीत कर वहां अपने व्यापारिक बन्दरगाहों की स्थापना की। यूरोपीय औपनिवेशिक काल **15** वीं से **19** वीं शताब्दी तक था। **15** वीं शताब्दी में पुर्तगाल, स्पेन, ब्रिटेन, नीदरलैण्ड्स और फ्रांस आदि यूरोपीय देशों ने एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका में अपने उपनिवेशों की स्थापना की थी। प्रारम्भ में औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने गृह-क्षेत्र की अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए वाणिज्यवादी नीतियों का पालन किया और यह सुनिश्चित किया कि उनके उपनिवेशों के वाह्य व्यापार पर उनका एकाधिकार हो, (उनके उपनिवेश केवल उनके गृह क्षेत्र के साथ व्यापार करने के लिए बाध्य हों) और उनकी प्रतिद्वन्दी शक्तियां उनके उपनिवेशों में किसी भी प्रकार की व्यापारिक गतिविधियां न कर सकें। भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धों का कारण भारत में अपना-अपना व्यापारिक एकाधिकार

स्थापित करना था। **19**वीं शताब्दी के मध्य तक शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य ने वाणिज्यवादी व्यापारिक प्रतिबन्धों का परित्याग कर सीमा-शुल्कों पर सीमित प्रतिबन्धों वाली मुक्त-व्यापार की नीति अपना ली।

भारत ब्रिटेन का सबसे बड़ा उपनिवेश था। उपनिवेशों के व्यापार पर एकाधिकार करने, उनकी औद्योगिक प्रगति में अवरोध डालने, उपनिवेशों की कृषि के व्यावसायीकरण करने, की नीति के उदाहरण हम भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना के बाद देख सकते हैं -

नमक के उत्पादन व विक्रय, शोरा व्यापार (बारूद बनाने के लिए आवश्यक तत्व) नील के उत्पादन व निर्यात, अफ़ीम के उत्पादन व निर्यात पर एकाधिकार, भारतीय उद्योग की प्रगति में अवरोध, गन्ना, तिलहन, नील, अफ़ीम, कपास, पटसन आदि व्यावसायिक फ़सलों के उत्पादन पर बल, कुटीर उद्योगों के पतन, अकालों तथा महामारी की आवृत्ति और उनकी भयावहता में वृद्धि, अकाल के समय भी अनाज का निर्यात, खाद्य पदार्थों के स्थान पर व्यापारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी वाणिज्यिक फ़सलों के उत्पादन को वरीयता, प्रशासनिक तथा सैनिक अपव्यय, होम चार्ज, भारतीय ऋण, भारत को ब्रिटिश माल का सबसे बड़ा बाज़ार और ब्रिटिश कारखानों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सबसे बड़ी मण्डी बनाना, ब्रिटिश पूंजीपतियों को भारत मंे लाभकारी एवं सुरक्षित पूंजी-निवेश के अवसर उपलब्ध कराना, मुक्त-व्यापार की एक-पक्षीय नीति अपना कर भारतीय सामान विदेशी बाज़ारों के लिए महंगा और भारत में अंग्रेज़ी माल सस्ता कराना, धन का भारत से इंग्लैण्ड की ओर निर्बाध प्रवाह आदि भारत में औपनिवेशिक शासन की आर्थिक विरासत थी।

रंगभेद, जातिभेद, फूट डाल कर शासन करना, औपनिवेशिक प्रजा के राजनीतिक अधिकारों की सर्वथा उपेक्षा करना तथा अपने अधिकारों की मांग करने पर उनका निर्ममतापूर्वक दमन करना आदि औपनिवेशिक शासकों की सामान्य नीति थी।

अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम, फ्रांस की क्रान्ति, इटली व जर्मनी के एकीकरण, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान लोकतान्त्रिक मूल्यों की महत्ता और उसकी समाप्ति पर अनेक देशों को औपनिवेशिक शासन से मुक्ति दिए जाने और उपनिवेशों में अहिंसात्मक व हिंसात्मक स्वतन्त्रता आन्दोलनों से उपनिवेशवादी शक्तियों को आघात लगा और बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक तो उपनिवेशवाद का दुनिया से अस्तित्व ही लगभग समाप्त हो गया।

10.3.2 मुक्त व्यापार

मुक्त-व्यापार अथवा लेज़र फ़ेयर एक आर्थिक परिवेश है जिसमें व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधियों में सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। यह व्यक्ति के आर्थिक स्वातन्त्र्य का पक्षधर है। मुक्त-व्यापार की नीति को लोकप्रिय बनाने का श्रेय **18** वीं शताब्दी के फ्रांसीसी वाणिज्य अधीक्षक विन्सेन्ट दी गोर्ने तथा फ्रांसीसी व्यापारी एम**0** ली जेन्द्रे को जाता है। इंग्लैण्ड में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, दि इकॉनॉमिस्ट पत्र के संस्थापक जेम्स विल्सन तथा रिचर्ड कॉब्डेन

ने और अमेरिका में सिडनी फिन ने इस विचारधारा का विकास किया था। मुक्त व्यापार के पक्षधरों के अग्रांकित तर्क थे:

1. मुक्त-व्यापार से दोनों पक्षों को लाभ होता है। इसमें कोई भी ऐसे बाज़ार माल खरीद सकता है जहां पर वह सस्ते से सस्ता हो और कोई भी अपना माल ऐसे बाज़ार में बेच सकता है जहां पर उसे उसका अधिक से अधिक दाम मिले।

2. मुक्त-व्यापार में सभी देशों को आर्थिक लाभ होगा और विश्व की कुल सम्पत्ति में वृद्धि होगी।

3. मुक्त-व्यापार से विभिन्न राष्ट्रों के मध्य तथा विभिन्न समुदायों के मध्य सद्भाव बढ़ेगा।

1. **1813** के चार्टर एक्ट द्वारा मुक्त-व्यापार की नीति को बढ़ावा दिया गया और पिछली दो शताब्दियों से चला आ रहा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत में व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। इस व्यवस्था ने ब्रिटेन के मुक्त व्यापारियों को भारत में अपनी व्यापारिक गतिविधियां करने की खुली छूट दे दी। इस व्यवस्था ने इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अधिशेष उत्पादन की भारत के बाज़ार में व्यापक स्तर पर खपत और भारत के कच्चे माल की ब्रिटिश कारखानों में निर्बाध आपूर्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अब तक लगभग आत्मनिर्भर रहने वाली भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था, लंकाशायर, मानचेस्टर और शेफ़ील्ड के उद्योगपतियों द्वारा नियन्त्रित की जाने लगी। मुक्त व्यापार की नीति की आर्थिक राष्ट्रवाद के पक्षधरों ने आलोचना करते हुए निम्न तर्क रखे- **1-** अपने देश के पक्ष में व्यापार सन्तुलन रखने के लिए आयात पर नियन्त्रण लगाया जाना आवश्यक है अन्यथा देश का धन निर्बाध रूप से औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों तक पहुंचता जाएगा। **2-**देश की नवजात औद्योगिक संस्थाएं औद्योगिक दृष्टि से विकसित राष्ट्रों से आयातित सामान की गुणवत्ता और उनकी कम कीमतों का मुकाबला नहीं कर सकतीं अतः उनको राज्य की ओर से संरक्षण दिया जाना आवश्यक है।

मुक्त-व्यापार की एक-पक्षीय नीति अपना कर अंग्रेज़ों ने भारतीय सामान विदेशी बाज़ारों के लिए महंगा और भारत में अंग्रेज़ी माल सस्ता करा दिया। इससे भारतीय कारीगरों के हाथ से स्थानीय और विदेशी, दोनों ही बाज़ार निकल गए। ब्रिटिश पूंजीपतियों ने रेल्वेज़, जूट उद्योग, चाय तथा कॉफ़ी के बागान, बैंक, जहाजरानी और भारतीय ऋण में पूंजी-निवेश किया। मुक्त-व्यापार की भारत की अर्थव्यवस्था के प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण पॉण्ड की तुलना में रुपये में भारी गिरावट देखी गई। मुक्त-व्यापार के पक्षधरों ने अपने देश के उद्योग को संरक्षण देना जारी रखा। भारतीय उत्पादों, विशेषकर कपड़े पर **15** प्रतिशत का निर्यात कर पूर्ववत लगाया जाता रहा।

रेलों के चलन से भारतीय उद्योग के विनाश का मार्ग प्रशस्त हुआ। अंग्रेज़ों की स्वार्थपरक नीतियों के कारण भारतीय कुटीर उद्योग उजड़ गया। कारीगरों ने अपने पुश्तैनी धंधे छोड़ खेती करना या मज़दूरी करना शुरू कर दिया। भारत कच्चे माल की मण्डी बन गया। मुक्त-व्यापार की नीति के कारण भारत से कपास, जूट और अनाज का निर्यात निरन्तर बढ़ता रहा। परिवारों की औसत आय में कमी आई, खेती पर बोढ बढ़ा, अकालों की आवृत्ति बढ़ी और अशिक्षा और

दारिद्र्य का साम्राज्य स्थापित हुआ। दादा भाई नौरोजी की पुस्तक पॉवर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया में अंग्रेज़ों की आर्थिक दोहन की नीति के कुपरिणामों यथा भारत की बढ़ती हुई गरीबी, औद्योगिक पिछड़ापन और अकालों के कारण हुए विनाश आदि को दर्शाया गया था।

10.3.3 कारखाना

सल्तनत काल और मुगल काल में राज्य द्वारा संरक्षित एवं नियन्त्रित, उत्पाद बनाने वाली संस्था को कारखाना कहा जाता था। भारत की मुख्यतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं आपूर्ति की भिन्न पृष्ठभूमि से आए हुए मुस्लिम शासकों के लिए अपनी विशिष्ट निजी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए राज्य द्वारा समर्थित एवं नियन्त्रित कारखानों की स्थापना की गई। इन कारखानों में मुख्यतः शाही परिवार तथा सरकारी विभागों के उपयोग में आने वाली ऐसी सामग्री तैयार की जाती थी जो कि बाज़ार में सहज रूप से उपलब्ध नहीं होती थी। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने ऐसे कई कारखानों की स्थापना की थी और उसके उत्तराधिकारी सुल्तान फ़िरोज़ तुगलक ने भी कई कारखानों की स्थापना की थी और साथ ही साथ उनमें व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की थी।

बादशाह अकबर के शासनकाल में कारखानों के लिए दीवान-ए-बयूतत तथा मीर-ए-सामां के आधीन एक अलग विभाग स्थापित किया गया। इन कारखानों में युवा प्रशिक्षुओं के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया। प्रशिक्षुओं को एक उस्ताद की देखरेख में वर्षों तक सम्बन्धित हुनर के सभी आवश्यक गुर सिखाए जाते थे। धीरे-धारे प्रशिक्षु स्वयं अपने हुनर में उस्ताद बन जाते थे। इन कारखानों में एक उच्च राज्य अधिकारी अपनी देखरेख में सामान तैयार करवाता था। उसके इस कार्य में उसके अनेक सहायक (मुतसर्रिफ़) उसकी सहायता के लिए नियुक्त किए जाते थे।

इन कारखानों में धातु-कर्म, खनन, सिक्कों का निर्माण (टकसाल), वस्त्र-निर्माण, अस्त्र-शस्त्र निर्माण, आभूषण-निर्माण आदि कार्य किए जाते थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत आने वाले फ्रांसीसी यात्री फ्रैंकोइस बर्नियर ने मुगल कारखानों में तैयार किए गए उत्पादों की गुणवत्ता की प्रशंसा की है। फ़तहपुर सीकरी के कारखानों में सिक्कों का निर्माण, उच्च कोटि के वस्त्रों का निर्माण, अर्ध-बहुमूल्य एवं बहुमूल्य पत्थर को तराशने का कार्य,, मीनाकारी, हाथीदांत का काम किया जाता था। आगरा, लाहौर आदि नगरों में भी शाही कारखाने थे। प्रान्तीय शासकों की देखरेख में अहमदाबाद, औरंगाबाद, बुरहानपुर, काश्मीर आदि क्षेत्रों में भी कारखाने स्थापित किए गए थे। बंगाल में शाही कारखानों में शाही परिवार तथा आभिजात्य वर्ग के लिए सर्वश्रेष्ठ और सबसे कीमती वस्त्र तैयार किए जाते थे।
अकबर स्वयं कारखानों में जाकर विशिष्ट उत्पादों के निर्माण में अभिरुचि लेता था। बादशाह जहांगीर को उस्ताद दाऊद ने कारखाने में उल्कापात के पदार्थ और लोहे के सम्मिश्रण से एक नायाब कटार बनाकर पेश की थी। शाहजहां ने अपने कारखाने में बना सोने का बना रत्नजड़ित शमादान मक्का के पवित्र स्थल के लिए भेजा था।

शाही मुगल कारखाने अपने समय में सामूहिक रोज़गार तथा उत्पादन के सबसे बड़े केन्द्र थे। इन कारखानों में बड़ी संख्या में कारीगर रखे जाते थे जिन्हें नकद वेतन दिया जाता था जबकि बाज़ार में कारीगर को उत्पाद के विक्रय का लाभांश प्राप्त होता था। कारखानों में कारीगरों को नकद वेतन दिए जाने से उन्हें उत्पादन की मात्रा बढाने व उनकी गुणवत्ता बनाए रखने में कोई उत्साह नहीं रहता था। किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि कारखानों में उत्पादों की गुणवत्ता सदैव बनी रहती थी। शाही कारखानों के अतिरिक्त स्वयं अमीर कारीगरों, विशेषकर बुनकरों ने अपने कारखाने भी स्थापित किए। लखनऊ और काश्मीर में ऐसे कारखानों में एक साथ **300** तक कारीगर काम करते थे।

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद मुगलों, अधीनस्थ शासकों तथा अमीरों के आर्थिक संसाधनों में कमी आने व राजनीतिक अराजकता की स्थिति में कारखानों की अवनति होती चली गई। अंग्रेज़ों ने भारत में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के बाद उत्पादन, क्रय-विक्रय, संग्रहण एवं वितरण की प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया। इसके परिणामस्वरूप कारखानों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

10.3.4 द्वैध शासन

10.3.4.1 बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना

द्वैध शासन का तात्पर्य है - दोहरी सरकार अर्थात् एक-दूसरे से स्वतन्त्र दो शासकों, संस्थाओं, व्यक्तियों द्वारा संचालित सरकार।

द्वैध शासन, बंगाल में क्लाइव द्वारा प्रचलित शासन प्रणाली थी जिसमें कि बंगाल का शासन दो स्वतन्त्र प्राधिकरणों (संस्थाओं) - नवाब और ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा चलाया जाता था। मुगल बादशाह शाह आलम ने **1764** के बक्सर के युद्ध में अंग्रेज़ों के हाथों पराजित होकर **1765** की इलाहाबाद की संधि द्वारा अंग्रेज़ों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (राजस्व एकत्र करने का अधिकार) प्रदान की जबकि इन क्षेत्रों की सुरक्षा और उनके प्रशासन का दायित्व बंगाल के नवाब का था। इस प्रकार **1765** में बंगाल में द्वैध शासन स्थापित हुआ।क्लाइव बंगाल के प्रत्यक्ष शासन से बचना चाहता था क्योंकि ऐसी स्थिति में इंग्लैण्ड के साथ यूरोपीय शक्तियों के कूटनीतिक सम्बन्ध खराब होने की आशंका थी।अंग्रेज़ भारतीय प्रशासन, कानून और परम्पराओं से अनभिज्ञ थे अतः प्रत्यक्ष शासन सम्भालने में उनको कठिनाई होती।इस व्यवस्था में अंग्रेज़ों ने बिना दायित्व के शक्ति प्राप्त की जिसके घातक परिणाम हुए। कम्पनी और नवाब ने जनता के कष्टों की नितांत उपेक्षा की ।शान्ति एवम् कानून व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। अराजकता के वातावरण में व्यापार और वाणिज्य को भी अपार हानि हुई ।कम्पनी के कर्मचारियों का निजी व्यापार भारतीय व्यापार के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। **1770** में बंगाल के अकाल में द्वैध-शासन की भ्रष्ट व्यवस्था के कारण भयंकर विनाश हुआ। **1772** में इस व्यवस्था को बदल दिया गया।

10.3.4.2 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारां प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था, इनमें प्रमुख थे - वित्त, कानून एवं शान्ति व्यवस्था, संचार, पुलिस तथा अकाल सहायता। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर/लेफ्टिनेन्ट गवर्नर तथा उसकी कार्यकारी परिषद द्वारा संचालित होना था। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। इन हस्तान्तरित विषयों में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, स्थानीय स्वशासन आदि सम्मिलित थे। इन हस्तान्तरित विषयों पर भी गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया था।

द्वैध शासन की संकल्पना और सरंचना दोनों ही दोषपूर्ण थीं। शासकीय कार्य का एक-दूसरे से स्वतन्त्र दो इकाइयों में विभाजन नितान्त अव्यावहारिक था। सुरक्षित और हस्तान्तरित विषयों का विभाजन भी दोषपूर्ण था। इन विषयों को भी एक-दूसरे से पूरी तरह अलग करके दो स्वतन्त्र इकाइयों को नहीं सौंपा जा सकता था। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से आए हुए मन्त्री अपने क्षेत्र की जनता के प्रति जवाबदेह थे इसलिए उनके लिए जनता के हित सर्वोपरि थे जबकि गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और नौकरशाही की निष्ठा ब्रिटिश ताज तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति थी और उनके लिए साम्राज्यवादी हित ही सर्वोपरि थे इसलिए मन्त्रियों का गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, तथा इण्डियन सिविल सर्विस अथवा इण्डियन पुलिस के अधिकारियों से तालमेल बैठ पाना असम्भव था। मन्त्री अपने ही विभाग के उच्च अधिकारियों पर अपना नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकते थे। अपनी जनता और विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के साथ-साथ मन्त्री गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन भी थे और वही उनको नियुक्त अथवा अपदस्थ करने का अधिकार भी रखता था।

सुरक्षित विषयों का वित्तीय आधार सुदृढ़ था जब कि हस्तान्तरित विषयों को वित्तीय आवंटन में प्रायः उपेक्षा का सामना करना पड़ता था। हस्तान्तरित विषय सुरक्षित विषयों की तुलना में कम महत्वपूर्ण थे। भारतीयों के साथ-साथ साइमन कमीशन ने भी द्वैध शासन की कार्य-प्रणाली को नितान्त असफल माना था। **1935** के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तों को स्वायत्त शासन दिए जाने के प्रावधान ने प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था को समाप्त कर दिया।

10.3.5 साम्राज्यवाद

साम्राज्यवाद वह नीति है जिसमें कोई राज्य दूसरे राज्यों के भू-क्षेत्रों पर अधिकार करता है अथवा उनकी अर्थ-व्यवस्था व राजनीतिक व्यवस्था पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है। इसमें सैनिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक दृष्टि से सशक्त राज्य अपनी आक्रामक नीति से अपने से कमज़ोर राज्यों पर तथा उनके निवासियों पर शासन करते हैं।

साम्राज्यवादी शक्ति और पराधीन शक्ति में एक असमान सम्बन्ध होता है। पराधीन शक्ति के संसाधनों का तथा उसकी श्रम-शक्ति का अपने हितों के लिए उपयोग करना साम्राज्यवादी शक्ति अपना अधिकार समझती है। उसकी गृह-नीति अथवा विदेश नीति का वही निर्धारण करती है। उसकी सेना को कमज़ोर करती है अथवा नष्ट कर देती है। साम्राज्यवादी शक्ति प्रायः अपने निवासियों के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य पराधीन शक्ति के निवासियों पर स्थापित करती है।

शासकों की 'ग्रीड फ़ॉर गोल्ड एण्ड लस्ट फ़ॉर ग्लोरी' की भावना ने साम्राज्यवाद को प्राचीन काल से ही पोषित किया है। ईरान के साइरस, मैसीडोनिया के एलेक्ज़ेण्डर दि ग्रेट, चीन के चिन शी हुआंग, पवित्र रोमन सम्राट चार्ल्स दि ग्रेट और मंगोलिया के चंगेज़ खां ने अपने सैन्य बल द्वारा विशाल साम्राज्यों की स्थापना की। विश्व-इतिहास में केवल सम्राट अशोक को हम धार्मिक एवं सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि कह सकते हैं। आधुनिक काल में ब्रिटिश साम्राज्य ही एक ऐसा साम्राज्य था जिसमें सूरज कभी डूबता नहीं था। स्पेनिश, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, इटैलियन, बेल्जियन, डच आदि यूरोपीय शक्तियों ने अमेरिका, एशिया और अफ्रीका में अपने उपनिवेश स्थापित कर पराधीन राष्ट्रों की एक अटूट श्रृंखला स्थापित कर दी।

सैनिक विजय प्राप्त करने हेतु जन-संहार, विजय प्राप्त करने के बाद फिर से जन-संहार, विध्वंस, लूट, पराजित राज्य के निवासियों के साथ पशुवत व्यवहार और उनका हर सम्भव दोहन, उनकी धार्मिक भावनाओं तथा उनकी सांस्कृतिक विरासत पर चोट, उन पर अपनी भाषा, अपना धर्म, अपने सांस्कृतिक मूल्य लादना, उनके नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों का दमन, उनकी स्त्रियों का अपमान एवं यौन-शोषण आदि अन्यायपूर्ण गतिविधियों को हम साम्राज्यवाद से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ देखते हैं। इस पर विडम्बना यह कि साम्राज्यवादी शक्तियां हमेशा यह दावा करती थीं कि उन्होंने पराजित राज्य अथवा राष्ट्र की जनता का उद्धार किया है। लॉर्ड डलहौज़ी ने अपनी साम्राज्य विस्तार की नीति के अन्तर्गत अवध को कुशासन के बहाने और व्यपगत के सिद्धान्त द्वारा अनेक राज्यों के अधिग्रहण के समय उन राज्यों की प्रजा का उद्धार करने का दावा किया था। भारत में अंग्रेज़ हमेशा यह दावा करते थे कि उन्होंने भारतीयों को अराजकता से मुक्ति दिलाकर शान्ति एवं सुरक्षा प्रदान की है और उन्हें अज्ञान और बर्बरता से मुक्ति दिलाकर जागरूक व सभ्य बनाया है। इस विषय में व्हाइट मैन्स बर्डेन की हास्यास्पद गर्वोक्ति शासक वर्ग के अहंकार तथा आत्म-प्रशंसा के भाव का प्रतिनिधित्व करती है।

उपनिवेशवाद द्वारा पराजित राष्ट्र की भूमि पर अधिकार, वाणिज्यवाद द्वारा पराजित राष्ट्रों के व्यापारिक लाभ पर एकाधिकार, मुक्त-व्यापार के नाम पर औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े पराधीन राष्ट्रों का निर्बाध दोहन करना, पराजित राष्ट्रों की औद्योगिक प्रगति में अवरोध उत्पन्न करना, उनको शासक देश के उद्योग हेतु आवश्यक कच्चे माल की मण्डी बनाना और उनके बाज़ारों में अपने देश का बना तैयार माल भरना, रंगभेद व जातिभेद की नीति अपनाना, अपने धर्म

के प्रचारकों को सहायता देना, अपने धर्म का परित्याग कर शासक वर्ग के धर्म अपनाने वालों को संरक्षण देना आदि भी साम्राज्यवाद के सामान्य लक्षण कहे जा सकते हैं।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध हर काल में पराजित राष्ट्रों तथा पराधीन राष्ट्रवासियों ने सशस्त्र विरोध किया है किन्तु साम्राज्यवाद के विरुद्ध अहिंसक आन्दोलन कर भारतीयों ने एक नया इतिहास रचा था और अपने अभियान में सफलता प्राप्त कर शेष पराधीन राष्ट्रों को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए एक नया मार्ग सुझाया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राजनीतिक साम्राज्यवाद का लगभग उन्मूलन हो गया है किन्तु आर्थिक,सैनिक एवं सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का दौर अभी समाप्त नहीं हुआ है अपितु वह अब पहले की तुलना में और अधिक शक्तिशाली व व्यापक हो गया है।

10.3.6 राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद शब्द का उद्भव राष्ट्र शब्द से हुआ है। राष्ट्रवाद, राष्ट्र से बनी भाववाचक संज्ञा है। अतः जहां राष्ट्र एक विशिष्ट जन-समूह की ओर इंगित करता है वहां राष्ट्रवाद उस जन-समूह में पाई जाने वाली एक सी भावनाओं का द्योतक है। राष्ट्रवाद, राष्ट्र के निवासियों में देशप्रेम, राजभक्ति तथा परस्पर आत्मीयता की भावना को अभिव्यंजित करता है। राष्ट्रवाद देशवासियों में 'हम' की भावना का विकास करता है। राष्ट्रवाद एक आस्था है, एक धर्म है अथवा एक राजनीतिक विचारधारा है जिसमें कि एक विशिष्ट जन-समूह एक राष्ट्र के रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाता है। राष्ट्रवादी भावना के विकास में राष्ट्र-ध्वज, राष्ट्र-गान, राष्ट्र-भाषा आदि राष्ट्र की विशिष्ट पहचान के प्रतीकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राष्ट्रवाद की भावना को विकसित करने में अनेक तत्व सहायक होते हैं, जैसे -

जन-समूह के मध्य जातीय एकता होना, समान धर्म का होना, जन-समूह का निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होना, भाषा, संस्कृति में समानता होना तथा समान इतिहास तथा समान हितों का होना।

प्राचीन काल में भारतीयो में राष्ट्रवादी भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वेदों में राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा, एकता और संगठन पर अनेकों बार प्रकाश डाला गया है। इनमें अपने नगरों, नदियों, वनों और पर्वतों के प्रति अपार प्रेम दर्शाया गया है, अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है; अपने राष्ट्र के नाम को अपने राष्ट्र के सार्वभौम सम्राट भरत के नाम से सम्बद्ध बताकर उसके प्रति आत्मीयता का भाव जोड़ा गया है किन्तु वेद आर्य जाति तथा आर्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं जब कि भारत में अनार्य जातियों व अनार्य संस्कृतियों का भी अस्तित्व था। भारत में मौर्य, गुप्त तथा मुगल साम्राज्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकता स्थापित हुई जिसने देशवासियों को भावनात्मक दृष्टि से भी एकसूत्र में बांधने में योगदान दिया।

सर सैयद अहमद खान ने भारत को विभिन्न राष्ट्रों का समूह बताया था। भारत के विषय में सर जॉन स्ट्रेची ने कहा था -

'भारत के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि न यह कोई देश है और न कभी था। यहां यूरोपीय धारणाओं के अनुकूल भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक एकता है ही नहीं।'

सर जॉन सीले के विचार भी यही भाव व्यक्त करते हैं -

'भारत कोई राजनीतिक इकाई नहीं है, यह केवल एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है, जैसे कि यूरोप अथवा अफ्रीका। यह किसी देश के क्षेत्रफल या भाषा को व्यक्त नहीं करता अपितु यह कई राष्ट्रों और भाषाओं की ओर संकेत करता है।'

उपरोक्त विचारों में किंचित सत्यता का पुट अवश्य है। अनेकता में एकता का दावा करते हुए भी भारतीय यूरोपीय देशों के निवासियों की भांति एक संस्कृति, एक जाति, एक भाषा तथा एक धर्म से जुड़े हुए नहीं हैं। साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद और भाषावाद ने भारत में राष्ट्रवाद के विकास में बाधा पहुंचाई है। अंग्रेज़ों का दावा था कि उन्होंने ही भारत को एक राष्ट्र के रूप में विकसित कर उसके निवासियों में राष्ट्रवाद की भावना का विकास किया था।

वास्तव में राष्ट्रवाद एक आधुनिक भावना है। यह भावना राष्ट्रप्रेम की द्योतक है। यूरोप में **16** वीं तथा **17** वीं शताब्दी के धर्म सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रवाद की चेतना का विकास किया। अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम तथा फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात यह भावना पूरे विश्व में फैल गई। एक ही राष्ट्रीयता के निवासियों ने स्वयं को संगठित कर राष्ट्रीय राज्यों (नेशन स्टेट) की स्थापना के प्रयास किए। यूरोप के जो राष्ट्र पराधीन थे, उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ कर दिए। परिणामस्वरूप बेल्जियम, ग्रीस, पोलैण्ड, हंगरी, नौर्वे, इटली, जर्मनी तथा बाल्कन प्रायद्वीप में राष्ट्रीय एकता व स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गए। राष्ट्रवाद की भावना के विकास ने 'स्वायत्त निर्णय के अधिकार' के सिद्धान्त को जन्म दिया जिसका कि तात्पर्य है - 'प्रत्येक राष्ट्र को अपने भाग्य निर्णय का अधिकार है और उसमें किसी बाहरी शक्ति को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।' इस विषय में उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में जर्मनी तथा इटली के एकीकरण तथा उनके स्वतन्त्र राष्ट्रों के रूप में विकास ने पूरे विश्व के परतन्त्र राष्ट्रों में राष्ट्रवादी भावनाओं के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाया।

उपनिवेशों में शासित जनता ने राष्ट्रवादी भावना का पोषण कर अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया। **1857** के विद्रोह में उर्दू पत्र पयामे आज़ादी के कौमी तराने में राष्ट्रवादी भावना के दर्शन होते हैं। बंकिमचन्द्र चटर्जी रचित 'वन्दे मातरम्' गीत, इक़बाल का कौमी तराना 'सारे जहां से अच्छा', हमारा तिरंगा, 'जय हिन्द' का नारा आदि भारत में राष्ट्रवाद की भावना के प्रसार में सहायक सिद्ध हुए। आर्थिक राष्ट्रवाद के उदय ने भारत में आर्थिक स्वदेशी की भावना का विकास किया। आगे चलकर भारत में राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक आत्मनिर्भरता की भावना के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता का भी विकास हुआ।

भारत में तथा विश्व के अन्य भागों में उग्र राष्ट्रवाद के विकास ने संकुचित राष्ट्रीयता एवं असहिष्णुता की भावना को विकसित किया। इटली तथा जर्मनी में अति राष्ट्रवाद के विकास ने अधिनायकतन्त्र तथा आक्रामक साम्राज्यवादी विचारधारा का पोषण किया। वास्तव में किसी देश में राष्ट्रवादी भावना तभी तक कल्याणकारी है जब तक कि वह अन्य राष्ट्रों की अस्मिता और स्वतन्त्रता का सम्मान करती हो अन्यथा द्वितीय विश्व युद्ध जैसी त्रासदी का हम सबको सामना करना पड़ सकता है।

10.3.7 वाणिज्यवाद

वाणिज्यवाद वह आर्थिक अवधारणा है जिसमें राज्य की सैनिक सुरक्षा के लिए विदेश-व्यापार पर राज्य के नियन्त्रण का अत्यन्त महत्व होता है। इसमें राज्य द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि व्यापार-सन्तुलन सदैव उसके पक्ष में रहे। वाणिज्यवाद में व्यापारिक लाभ के असंगत अधिकार अथवा एकाधिकार पर बल दिया जाता है। वाणिज्यवाद ने भौगोलिक खोजों के युग से लेकर औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व तक अर्थात् **16** वीं शताब्दी से लेकर **18** वीं शताब्दी के अन्त तक और राष्ट्रीय राज्यों के उदय के काल में पश्चिमी यूरोप के देशों की आर्थिक नीतियों को एक प्रकार से संचालित किया। नौ-सैनिक शक्ति के विकास तथा माल-वाहक जहाजों की क्षमता व गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार ने यूरोपीय शक्तियों को पूरी दूनिया के व्यापार पर अपना अधिकार करने के लिए प्रेरित किया। अब यह विचारधारा ज़ोर पकड़ने लगी थी कि धन के द्वारा ही कोई देश शक्तिशाली बन सकता है। सैनिक दृष्टि से पिछड़े किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध राष्ट्रों को अपना उपनिवेश बनाकर, वहां के आन्तरिक एवं वाह्य व्यापार पर अपना एकाधिकार कर महत्वाकांक्षी राष्ट्र अपरिमित धन कमा सकते थे। स्वाभाविक था कि धन एकत्र करने के लिए शक्तिशाली देशों के मध्य उपनिवेश स्थापित करने की होड़ मच जाए। वाणिज्यवाद बहुधा यूरोपीय युद्धों का कारण बना। भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धों के पीछे भी वाणिज्यवादी होड़ का हाथ था। अमेरिका के निवासियों द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम भी मुख्यतः इंग्लैण्ड के व्यापारिक प्रभुत्व के विरुद्ध आरम्भ हुआ था।

वाणिज्यवाद में व्यापार सन्तुलन को अपने पक्ष में बनाए रखने हेतु उपाय

1. आयातित तैयार माल पर ऊंची दर पर सीमा शुल्क लगाया जाना।

2. समुद्र पार उपनिवेशों का जाल बिछाना।

3. उपनिवेशों के अन्य राष्ट्रों से व्यापारिक सम्बन्ध रखने पर प्रतिबन्ध लगाना।

1. सोने-चांदी का निर्यात न होने देना और आयातित माल का भुगतान किसी भी स्थिति में सोने-चांदी के रूप में न करना।

2. विदेशी जहाजों में व्यापारिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाना।

3. निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न उद्योगों को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना।

4. उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए शोध को बढ़ावा व आर्थिक सहायता देना।

5. श्रमिकों के पारश्रमिक को सीमित करना।

6. राज्य के संसाधनों का पूर्ण सदुपयोग करना।

अंग्रेज़ व्यापारी टॉमस मन (**1571-1641)** को वाणिज्यवाद का जनक कहा जाता है। उसकी **1630** में लिखी गई पुस्तक ट्रेज़र बाई फ़ोरेन ट्रेड में वाणिज्यवाद की अवधारणा का विकास किया गया है। फ्रांस में जीन बोदिन तथा कोल्बर्ट ने वाणिज्यवाद का पोषण किया। कोल्बर्ट ने फ्रांस के प्रधानमन्त्री के रूप में स्वदेशी उद्योग को संरक्षण दिया, विदेश से निष्णात कारीगर बुलवा कर अपने यहां के कारीगरों को प्रशिक्षण दिलाया, सड़कों तथा नहरों का जाल बिछवाकर आन्तरिक तथा वाह्य व्यापार की उन्नति के प्रयास किए। आस्ट्रिया के वोन होर्निक ने राष्ट्रीय सम्पदा बढ़ाने के लिए भूमि का कृषि, खनन व उत्पादन हेतु अधिकतम प्रयोग पर बल दिया। उसने अपने देश में बनने वाली किसी भी वस्तु के आयात को अनुचित माना और देश की आवश्यकता पूर्ति के बाद बचे हुए उत्पादों के निर्यात से देश में सोने-चांदी की आवक पर बल दिया। इंग्लैण्ड में ट्यूडर तथा स्टुअर्ट काल में वाणिज्यवाद का बोलबाला रहा। वाणिज्यवाद के बल पर ही इंग्लैण्ड विश्व की सबसे बड़ी व्यापारिक एवं साम्राज्यवादी शक्ति बन गया।

वाणिज्यवाद में नैतिकता, मानवीयता और न्याय का कोई स्थान नहीं था। इसमें शक्तिशाली को दूसरे को कुचलने और उसका शोषण करने का पूरा अधिकार था (और शक्तिशाली केवल धन एकत्र करके ही बना जा सकता था)। वाणिज्यवाद में राज्य और व्यापारीगण, धन एकत्र करने की होड़ में एक दूसरे के हिस्सेदार थे।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुई औद्योगिक क्रान्ति के बाद मुक्त-व्यापार की नीति का पोषण किया जाने लगा और वाणिज्यवादी विचारधारा पृष्ठभूमि में चली गई।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. मुक्त-व्यापार

2. बंगाल में द्वैध शासन

3. वाणिज्यवाद

10.4 सारांश

सल्तनत काल और मुगल काल में राज्य द्वारा समर्थित एवं नियन्त्रित कारखानों की स्थापना की गई। इन कारखानों में धातु-कर्म, खनन, सिक्कों का निर्माण (टकसाल), वस्त्र-निर्माण, अस्त्र-शस्त्र निर्माण, आभूषण-निर्माण आदि कार्य किए जाते थे।

साम्राज्यवाद वह नीति है जिसमें कोई राज्य दूसरे राज्यों के भू-क्षेत्रों पर अधिकार करता है अथवा उनकी अर्थ-व्यवस्था व राजनीतिक व्यवस्था पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है।

किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा निहित स्वार्थवश किसी निर्बल राष्ट्र के शोषण को हम उपनिवेशवाद कह सकते हैं। उपनिवेशवाद किसी शक्ति का अपने अधीनस्थ क्षेत्र तथा उसके निवासियों पर नियन्त्रण है। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर **19** वीं शताब्दी तक उपनिवेशवाद का पोषण किया गया।

वाणिज्यवाद में व्यापारिक लाभ के असंगत अधिकार अथवा एकाधिकार पर बल दिया जाता है। वाणिज्यवाद औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा अनेक यूरोपीय युद्धों का कारण बना।

मुक्त-व्यापार एक आर्थिक परिवेश है जिसमें व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधियों में सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। इस व्यवस्था ने इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड के कारखानों में बने माल की भारत के बाज़ार में व्यापक स्तर पर खपत और भारत के कच्चे माल की ब्रिटिश कारखानों में निर्बाध आपूर्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

द्वैध शासन बंगाल में क्लाइव द्वारा **1765** में प्रचलित की गई शासन प्रणाली थी जिसमें कि बंगाल का शासन दो स्वतन्त्र प्राधिकरणों - नवाब और ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा चलाया जाता था। **1919** के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई। यह व्यवस्था दोषपूर्ण एवं अव्यावहारिक थी और दोनों ही बार यह प्रयोग असफल सिद्ध हुआ।

आधुनिक राष्ट्रवाद का विकास **19** वीं शताब्दी में हुआ था। राष्ट्रवाद के विकास ने पराधीन राष्ट्रों को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी थी।

10.5 पारिभाषिक शब्दावली

व्हाइटमैन्स बर्डेन - श्वेत जाति का दुनिया भर के निवासियों को सभ्य बनाने का दायित्व।

मुक्त-व्यापार की एक-पक्षीय नीति - दो पक्षों के मध्य होने वाले व्यापार में ऐसी व्यवस्था करना कि केवल एक ही पक्ष के हिस्से में समस्त व्यापार पहुंचे।

आमूल परिवर्तन - क्रान्तिकारी बदलाव।

ग्रीड फ़ॉर गोल्ड एण्ड लस्ट फ़ॉर ग्लोरी - धन का लोभ और यश की लालसा।

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए **10.3.2** मुक्त व्यापार

2. **10.3.4.1** बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना

3. देखिए **10.3.7** वाणिज्यवाद

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, **1979**

धर्म कुमार - दि कैम्ब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया वोल्यूम **2,** कैम्ब्रिज, **1982**

भट्टाचार्य, सब्यसाची - आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, दिल्ली, **1990**

बैनर्जी, ए**0** सी**0** (सम्पादक) - इण्डियन कॉन्सटीट्यूशनल डवलपमेन्ट **1757-1947,** वो**0 1,** कलकत्ता, **1961**

10.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

चौधरी, के**0** एन**0 -** दि ट्रेडिंग वर्ड ऑफ़ एशिया एण्ड दि ईस्ट इण्डिया कम्पनी, कैम्ब्रिज, **1978**

सरकार, जगदीश एन**0 -** ए स्टडी ऑफ एटीन्थ सेन्चुरी इण्डिया, कलकत्ता, **1976**

सेन, सुदीप्त - एम्पायर ऑफ़ फ्री ट्रेडः दि ईस्ट इण्डिया कम्पनी एण्ड दि मेकिंग ऑफ़ दि कोलोनियल मार्केट प्लेस, फिल्डेफ़िया, **1998**

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई ग्यारह

महाजनी, ब्लैक होल, दस्तक, भू-स्वामी, रैयत, निलहे, ठगी प्रथा, गोद प्रथा, निस्युन्दन का सिद्धान्त

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 महाजनी, ब्लैक होल, दस्तक, भू-स्वामी, रैयत, निलहे, ठगी प्रथा, गोद प्रथा, निस्युन्दन का सिद्धान्त

11.3.1 महाजनी

11.3.2 ब्लैक होल

11.3.3 दस्तक

11.3.4 भू स्वामी

11.3.5 रैयत

11.3.6 निलहे

11.3.7 ठगी प्रथा

11.3.8 गोद प्रथा

11.3.9 निस्युन्दन का सिद्धान्त

11.3.9.1 अंग्रेज़ो का शिक्षा-प्रसार का सीमित दायित्व

11.3.9.2 निस्युन्दन सिद्धान्त' की असफलता

11.3.9.3 निस्युन्दन सिद्धान्त' के लाभ

11.4 सारांश

11.5 पारिभाषिक शब्दावली

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

अंग्रेज़ों की शोषक भू-राजस्व नीति के फलस्वरूप ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में महाजनों ने भारतीय ग्रामीणों का निर्बाध आर्थिक दोहन किया था। ब्लैक होल दुर्घटना के अतिरंजित वृतान्त से अंग्रेज़ों ने सिराज-उद्-दौला के विरुद्ध अपने षडयन्त्रों को उचित ठहराने का असफल प्रयास किया था। बादशाह फ़र्रुखसियर द्वारा कर-मुक्त व्यापार दस्तक का अंग्रेज़ों द्वारा दुरुपयोग का विरोध करने पर मीर कासिम को बंगाल के नवाब के पद से हाथ धोना पड़ा। अंग्रेज़ों की शोषक भू-राजस्व व्यवस्था का एक स्तम्भ ज़मींदार अर्थात् भू-स्वामी थे और इसके सबसे बड़े शिकार थे - रैयत अर्थात् किसान। नील के बागानों के मालिक निलहे, किसानों के आर्थिक शोषण का एक कुत्सित उदहरण थे। ठग वंशानुगत लुटेरे थे। लॉर्ड विलियम बेंटिंग के शासनकाल में कर्नल स्लीमन तथा उसके सहयोगियों ने उनका दमन किया था। निःसन्तानों व पुत्रहीनों द्वारा पुत्र को गोद लेने की प्रथा को भारत में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यता प्राप्त थी किन्तु अग्रेज़ों ने उन्नीसवीं शताब्दी में, विशेषकर डलहौज़ी के काल में व्यपगत के सिद्धान्त को अपनाकर पुत्रहीन शासकों के राज्यों को उनकी मृत्यु के बाद हड़प लिया। **1858** में महारानी के घोषणापत्र द्वारा व्यपगत का परित्याग कर दिया गया। ब्रिटिश शासकों ने उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक निस्युन्दन का सिद्धान्त अपनाकर आधुनिक शिक्षा-प्रसार को मुठ्ठी भर लोगों तक सीमित कर दिया। इस इकाई में आपको उपरोक्त बिन्दुओं से अवगत करया जाएगा।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में ब्रिटिश शास्न की स्थापना के विभिन्न चरणों और अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी, प्रशासनिक, शैक्षिक व आर्थिक नीतियों के कुछ महत्वपूर्ण अंगों से आपको परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- आर्थिक क्षेत्र में महाजनी, दस्तक, भू-स्वामी, रैयत तथा निलहे के विषय में।

2- साम्राज्य विस्तार की नीति के अन्तर्गत ब्लैक होल तथा गोद प्रथा के विषय में।

3- शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने की नीति के अन्तर्गत ठगी प्रथा के दमन के विषय में ।

4 - शिक्षा-प्रसार के सीमित दायित्व से सम्बन्धित निस्युन्दन के सिद्धान्त के विषय में।

11.3 महाजनी, ब्लैक होल, दस्तक, भू-स्वामी, रैयत, निलहे, ठगी प्रथा, गोद प्रथा, निस्युन्दन का सिद्धान्त

11.3.1 महाजनी

'महाजनी' ब्याज पर ऋण के आदान-प्रदान से सम्बन्धित व्यवसाय को कहा जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व भारत में आधुनिक बैंकों का अस्तित्व नहीं था और जब भारत में बैंकों की स्थापना हुई भी तो मुख्यतः उनका कार्य-क्षेत्र

शहरों तक ही सीमित रहा। इस कारण महाजनों ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था में, विशेषकर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में आधुनिक बैंकों की भूमिका निभाई।

महाजन पूरे देश में फैले हुए थे। महाजन आज की तुलना में बहुत ही ऊंची ब्याज दरों पर ऋण देते थे। यह ब्याज दरें इतनी अधिक होती थीं कि ऋण लेने वाला आम तौर पर मूल धन पर ब्याज चुकाते-चुकाते ही परलोक सिधार जाता था और बाद में अपना पहले से भी अधिक बढ़ा हुआ कर्ज़ा अपने बच्चों के ऊपर छोड़ जाता था। ऋण वसूलने के लिए महाजन बल प्रयोग भी करते थे और पैसे न मिलने की सूरत में ऋण लेने वाले व्यक्ति की ज़मीन, जायदाद, मवेशी आदि ज़ब्त कर लेते थे। हज़ारों-लाखों ग्रामीण महाजनों के बंधुआ मज़दूर बनने के लिए विवश होते थे। प्रेमचन्द की कहानी सवा सेर गेहूं में आतिथ्य सत्कार के लिए महाजन से मात्र सवा सेर गेहूं का ऋण लेने वाले एक किसान की बेबसी और महाजन द्वारा किसान के शोषण की पराकाष्ठा का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा और पूर्वी उत्तर प्रदेश में भूमि के स्थायी बन्दोबस्त की शोषक व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में महाजन अत्यधिक प्रभावशाली हो गए। लगान चुकाने अथवा दैविक आपदा से निपटने के लिए किसान की मदद के लिए महाजन आगे आते थे और फिर हमेशा-हमेशा के लिए उसे अपने जाल में फांस लेते थे। ब्रिटिश शासन काल में कुटीर उद्योग के पतन से भी ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो चली थी। लगान चुकाने, जन्मोत्सव, शादी, मृतक संस्कार आदि के समय उन्हें महाजन की चौखट पर जाना ही पड़ता था। महाजन उनकी अशिक्षा का लाभ उठाकर उल्टे-सीधे कागज़ों पर उनका अंगूठा लगवा लेते थे।

महाजनों के शोषण से ग्रामीणों को मुक्ति दिलाने के स्थान पर सरकारी कर्मचारी, ज़मींदार उनके साथ सांठ-गांठ कर लेते थे। अनेक महाजन तो स्वयं ज़मींदार बन गए थे।

कृषि-विकास, कुटीर उद्योग का पुनरुत्थान, शिक्षा-प्रसार, धार्मिक-सामाजिक उत्सवों पर होने वाले खर्च में कमी, बचत करने की प्रवृत्ति का विकास तथा कम ब्याज दरों पर ऋण उपलब्ध कराने वाली सहकारी बैंकों की स्थापना से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में महाजनों के दुष्प्रभाव को रोका जा सकता था। भारत में आर्थिक व राजनीतिक चेतना के प्रसार के बाद महाजनी व्यवस्था के पंजे से ग्रामीणों को मुक्त कराने के प्रयास किए गए। कांग्रेस के नरमपंथियों ने सरकार के समक्ष भू-राजस्व में कमी, किसानों को ज़मींदारों व महाजनों के चंगुल से छुड़ाने की मांग रखी। समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा के विकास से महाजनों के शोषण के विरुद्ध वातावरण विकसित हुआ। कई स्थानों पर महाजनों पर आक्रमण भी किए गए। सभी किसान आन्दोलनों में ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता के उन्मूलन को महत्व दिया गया। सरकार की ओर से गिनती की कुछ सहकारी बैंकों की स्थापना की गई। 'डेकेन एग्रीकल्चरिस्ट्स रिलीफ़ एक्ट' तथा 'पंजाब लैण्ड एलिएनेशन एक्ट' के द्वारा किसानों को इस विषय में राहत पहुंचाने का प्रयास किया गया। बाद में बुन्देलखण्ड,

पश्चिमोत्तर प्रान्त और मध्य प्रान्त में भी इसी प्रकार के एक्ट्स बनाए गए किन्तु इनसे भी किसान महाजनों के चंगुल से नहीं निकल सके।

11.3.2 ब्लैक होल

1756 में फ्रांसीसियों से युद्ध की सम्भावना देखकर अंग्रेज़ों ने बंगाल में अंग्रेज़ों के मुख्य सैनिक केन्द्र फ़ोर्ट विलियम को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस पर अंग्रेज़ों की गतिविधियों से पहले ही नाराज़ नवाब ने उन्हें इस काम को रोकने का आदेश दिया जिसकी कि अंग्रेज़ों ने अवज्ञा कर फ़ोर्ट में अपना निर्माण कार्य जारी रखा। **20** जून, **1756** को नवाब ने फ़ोर्ट विलियम पर अधिकार कर लिया और वहां मौजूद लोगों को कैद कर ब्लैक होल में डाल दिया।

ब्लैक होल कलकत्ते के पुराने फ़ोर्ट विलियम में एक छोटे आकार की (**18** फ़ुट लम्बी और **14** फ़ुट, **10** इन्च चौड़ी, कुल क्षेत्रफल - **267** वर्ग फ़ीट) मात्र एक खिड़की वाली काल कोठरी थी। बंगाल के नवाब सिराज-उद्-दौला पर तथाकथित एक भुक्तभोगी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना के एक शल्य चिकित्सक डॉक्टर हॉल्वेल ने यह आरोप लगाया था कि उसने **20** जून, **1756** को फ़ोर्ट विलियम पर अधिकार करने के बाद वहां पर मौजूद **146** लोगों को (जिनमें कि कुछ महिलाएं और बच्चे भी शामिल थे) शाम **8** बजे ब्लैक होल में बन्द कर दिया। रात भर काल कोठरी में बन्द कैदी गर्मी, प्यास और दम घुटने के कारण चीखते रहे किन्तु कोई भी उनकी मदद के लिए नहीं आया। अगले दिन सवेरे **6** बजे जब इस काल कोठरी का दरवाज़ा खोला गया तब बन्दियों में से **123** गर्मी, भगदड़ और दम घुटने की वजह से अपना दम तोड़ चुके थे। नवाब ने मृतकों को एक खाई में फिंकवा दिया। हॉल्वेल का यह वृतान्त **1758** के एनुअल रजिस्टर में प्रकाशित हुआ था।

अंग्रेज़ों ने नवाब सिराज-उद्-दौला की इस तथाकथित अमानवीय क्रूरता के बाद उसके विरुद्ध अपने द्वारा किए गए सभी षडयन्त्रों को उचित ठहराया। ब्लैक होल ट्रैजेडी सिराज-उद्-दौला पर एक घिनौना आरोप है किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। डॉक्टर हॉल्वेल ने इस दुर्घटना के लिए मुख्यतः नवाब के निम्न स्तरीय कर्मचारियों को दोषी ठहराया है किन्तु उसने नवाब पर यह आरोप लगाया है कि उसने इस दुर्घटना के बाद किसी भी प्रकार का अफ़सोस नहीं जताया।

अंग्रेज़ शासकों की ओर से ब्लैक होल दुर्घटना की सत्यता पर कभी प्रश्न चिह्न नहीं लगाया गया। स्टैनली वोल्पर्ट ब्लैक होल दुर्घटना को सत्य मानता है किन्तु उसके अनुसार इसमें ब्लैक होल में बन्द किए गए कैदियों की संख्या **64** व मृतकों की संख्या **43** थी। वोल्पर्ट इस दुर्घटना के लिए नवाब को दोषी नहीं मानता है। डॉक्टर हॉल्वेल के दिए आंकड़ों को एक बंगाली ज़मींदार भोलानाथ चन्दर ने झुठलाने के लिए ब्लैक होल के आकार के एक कक्ष में व्यक्तियों को ठूंस-ठूंस कर भरकर यह दिखाया कि इतने छोटे कमरे में इतने अधिक व्यक्तियों का बन्द किया जाना सम्भव ही नहीं है। डॉक्टर हॉल्वेल के वृतान्त की किसी अन्य भुक्तभोगी ने पुष्टि नहीं की है। भारतीय इतिहासकारों ने ब्लैक होल दुर्घटना

को अंग्रेज़ों की कपोल कल्पना कहा है। वास्तव में ब्लैक होल दुर्घटना एक मनगढ़न्त कल्पना नही तो कम से कम एक अतिरंजित वृतान्त तो है ही। अंग्रेज़ नवाब सिराज-उद्-दौला की तथाकथित क्रूरता का हवाला देकर उसके विरुद्ध रचे गए अपने सभी षडयन्त्रों को उचित ठहराना चाहते थे।

11.3.3 दस्तक

1717 में मुगल बादशाह फ़र्रुखसियर ने एक फ़रमान द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल (जिसमें बिहार व उड़ीसा भी शामिल थे) में बिना चुगी व्यापार करने का विशेषाधिकार (दस्तक) दिया था। इसके लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को परवाने प्रदान किए जाते थे। यह विशेषाधिकार कम्पनी के व्यापार के लिए था न कि कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार के लिए। कम्पनी के कर्मचारी बादशाह फ़र्रुखसियर के **1717** के फ़रमान के अन्तर्गत अन्तर्देशीय व्यापार हिस्सेदारी के विशेषाधिकार का दावा करते थे और इस सुविधा का खुद लाभ उठाने के साथ-साथ पैसे लेकर अपने नाम पर इस सुविधा का लाभ दूसरों को भी देते थे। बंगाल के नवाबों ने **1717** के शाही फ़रमान द्वारा अंग्रेज़ों को बिना चुगी व्यापार करने की सुविधा का दुरुपयोग करने पर सदैव अपना विरोध जताया। **1757** में कठपुतली नवाब मीर जाफ़र की नियुक्ति के बाद अंग्रेज़ों ने दस्तक का और भी दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक भारतीय व्यापारियों और विदेशी व्यापारियों (जैसे आर्मीनियन व्यापारी) ने अंग्रेज़ों को पैसे देकर दस्तक का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। कम्पनी के भारतीय गुमाश्ते भी इस बहती गंगा में अपने हाथ धो रहे थे। जिन व्यापारियों ने दस्तक के दुरुपयोग के लिए अंग्रेज़ों के साथ साठ-गांठ नहीं की थी उन्हें व्यापारिक क्षेत्र में इस साठ-गांठ में शामिल व्यापारियों से स्वस्थ प्रतियोगिता करने में अत्यन्त कठिनाई हो रही थी। दस्तक के दुरुपयोग से कर वसूली में गिरावट आ रही थी। मीर कासिम ने नवाब बनने के बाद अंग्रेज़ों द्वारा दस्तक के दुरुपयोग किए जाने पर आपत्ति उठाई। बंगाल के गवर्नर वैन्सिटार्ट ने इस मामले में नवाब से समझौते का प्रस्ताव रखा किन्तु स्वयं इस अवैध व्यापार में लिप्त कलकत्ता काउंसिल के अधिकांश सदस्यों के विरोध के कारण इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। व्यापारिक अधिकारों में एकरूपता स्थापित करने तथा दस्तक का दुरुपयोग रोकने के लिए मीर कासिम ने मार्च, **1763** में दो वर्ष के लिए समस्त व्यापारिक करों और चुंगियों को माफ़ कर दिया। अंग्रेज़ों को नवाब का यह निर्णय स्वीकार्य नहीं था। इस निर्णय को कलकत्ता काउंसिल ने बादशाह फ़र्रुखसियर के **1717** के फ़रमान की भावना के विरुद्ध बताया। मीर कासिम पर यह आरोप लगाया गया कि वह अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का षडयन्त्र रच रहा है। जुलाई, **1763** में अंग्रेज़ों ने मीर कासिम के विरुद्ध युद्ध की औपचारिक घोषणा कर दी और मीर जाफ़र को बंगाल के नवाब के पद पर पुनर्स्थापित कर दिया।

दस्तक के विवाद में मीर कासिम का कोई दोष नहीं था। उसने अंग्रेज़ों द्वारा दस्तक के दुरुपयोग को रोकने का भरसक प्रयत्न तो किया परन्तु इस प्रयास में स्वयं उसका पतन हो गया।

11.3.4 भू स्वामी

लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासनकाल में **1793** में बंगाल, बिहार, उड़ीसा में भूमि का स्थायी बन्दोबस्त लागू किया गया। बाद में इसका विस्तार वर्तमान उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और कर्नाटक के उत्तरी भाग में किया गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ज़मींदार के रूप में एक भू-स्वामी वर्ग का उदय हुआ। मुगल काल में ज़मींदारी वंशानुगत होती थी। भू-स्वामियों की तुलना हम मध्यकालीन इंग्लैण्ड के स्क्वायर तथा लेअर्ड से कर सकते हैं।

कॉर्नवालिस के समय में भू-स्वामियों की चार श्रेणियां थीं -

1. पूर्व में स्वतन्त्र रह चुके शासक जिन्होंने मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली थी।

2. वंशानुगत ज़मींदार जो कि शासक को एक निश्चित भूमि कर देते थे।

3. मुगलों के काल में नियुक्त राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारी जिनके कि पद आगे चलकर वंशानुगत हो गए थे।

4. ग्रान्ट ऑफ़ दीवानी के बाद राजस्व एकत्र करने के लिए नियुक्त अधिकारी।

इन चार श्रेणियों में से भू-स्वामी कहलाने का अधिकार स्वाभाविक रूप से पहली दो श्रेणियों का अधिक था किन्तु कॉर्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त में भू-स्वामी के निर्धारण में उपरोक्त चारो श्रेणियों में अन्तर नहीं किया गया। निर्धारित भू-राजस्व का **1/10** अथवा **1/11** भाग जमींदारों को अपने पास रखने का अधिकार था। ज़मींदारों को कृषि-विकास और कृषि योग्य भूमि के विस्तार के लिए प्रेरित किया गया और अपने प्रयासों से उसकी अपनी ज़मींदारी में राजस्व-प्राप्ति की वृद्धि में सरकार की कोई भी हिस्सेदारी नहीं होनी थी। प्रारम्भ में भू-राजस्व की निर्धारित राशि इतनी अधिक थी कि ज़मींदारों के लिए सरकारी खज़ाने में पूरी लगान भरना अत्यन्त कठिन हो गया था। किन्तु बाद में कृषि योग्य भूमि के विस्तार तथा खेती की तकनीक में विकास के कारण उनकी आय में वृद्धि हुई और अपनी समृद्धि के लिए वो ब्रिटिश शासन के कृतज्ञ हुए। इस प्रकार अंग्रेज़ों को भारत में एक नया स्वामिभक्त वर्ग प्राप्त हो गया। भूमि के स्थायी बन्दोबस्त ने किसानों को निर्धनता की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। एक ओर उनका अनियन्त्रित शोषण करने के लिए ज़मींदार थे तो दूसरी ओर महाजन थे।

अधिकांश ज़मींदार शहरों में रहकर अपने गुमाश्तों के माध्यम से किसानों से कर वसूला करते थे। किसान को भूमि कर चुकाने के लिए और प्रायः अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महाजन से कर्ज़ लेना पड़ता था। मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान में ज़मींदारी व्यवस्था में ज़मींदारों की शोषक एवं दमनकारी प्रवृत्ति तथा किसानों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

सरकार ने लैण्ड टेनेन्सी एक्ट्स के माध्यम से किसानों की दशा सुधारने के निष्फल प्रयास किए किन्तु उनकी दशा में कोई सुधार नहीं हुआ।

ज़मींदार अर्थात् इस नए भू-स्वामी वर्ग ने भारतीय पुनर्जागरण अथवा नव-जागरण एवं पुनरुत्थानवादी आन्दोलन में उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी।भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार के साथ किसानों की दुर्दशा सुधारने की दिशा में सार्थक प्रयास हुए। कांग्रेस, समाजवादी दल, वामपंथियों और स्वयं जागरूक किसानों ने किसान आन्दोलनों का नेतृत्व किया। भू-राजस्व में कमी करने की और ज़मींदारी व्यवस्था के उन्मूलन की मांग की गई और अन्ततः भारत की स्वतन्त्रता के बाद ज़मींदारी व्यवस्था का उन्मूलन कर दिया गया।

11.3.5 रैयत

रैयत शब्द समस्त भारत में कृषकों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। रैयत काश्तकार एवं कृषक होते थे अथवा खेतिहर मज़दूर होते थे। काश्तकार रैयत को अपनी भूमि पर खेती करने का पुश्तैनी अधिकार होता था। **16** वीं शताब्दी में शेरशाह ने अपनी भू-राजस्व व्यवस्था में शासक और कृषकों के बीच मध्यस्थों को हटा दिया था और भू-राजस्व निर्धारण में भूमि की नापजोख की व्यवस्था की थी। शेरशाह ने लगान के नकद भुगतान को वरीयता दी। मुगल काल में रैयत की दो श्रेणियां-

खुद-काश्त और पै-काश्त होती थीं। खुद-काश्त अपनी भूमि से स्थायी रूप से जुड़े रहते थे। खुद-काश्त रैयत के भूमि पर खेती करने के पुश्तैनी अधिकार होते थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में टॉमस मुनरो तथा एलेक्ज़ेण्डर रीड ने मद्रास प्रेसीडेन्सी में रैयतवारी व्यवस्था का प्रारूप तैयार किया था। टॉमस मुनरो के **1820** में मद्रास के गवर्नर बनने पर इसे मद्रास में लागू किया गया। बाद में इसका विस्तार बॉम्बे प्रेसीडेन्सी, मालाबार, कोयम्बटूर, कुर्ग, पूर्वी बंगाल तथा आसाम के एक भाग में तथा बर्मा विजय के बाद वहां भी किया गया। इस व्यवस्था में सरकार और किसानों के बीच मध्यस्थ की भूमिका हटा दी गई। भूमि की नापजोख की गई तथा भूमि की किस्म के अनुसार उसकी उत्पादन क्षमता का भी अनुमान लगाया गया और उसके बाद लगान का निर्धारण किया गया। लगान का नकदी में लिया जाना निश्चित किया गया। रैयत को अपनी भूमि बेचने अथवा उसे हस्तान्तरित करने का अधिकार दिया गया।

रैयतवारी व्यवस्था किसानों के लिए हितकारी सिद्ध नहीं हुई इसमें भू-राजस्व एकत्र करने वाले निम्न-पदीय कर्मचारियों ने उनका भरपूर शोषण किया। रैयत को पूरा लगान चुकाने के लिए प्रायः सूदखोरों से ऊंची ब्याज दर पर कर्ज़ लेना पड़ता था। रमेश चन्द्र दत्त ने लॉर्ड कर्ज़न के नाम खुले पत्र में रैयतवारी व्यवस्था तथा किसानों के कर निर्धारण में ज़्यादती को दक्षिण भारत में किसानों की दरिद्रता और बार-बार अकाल पड़ने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया था।

11.3.6 निलहे

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के बाद कपड़ों को रंगने के काम में नील की प्रचुर मात्रा में आवश्यकता पड़ने लगी थी। **1777** में लुई बोनार्ड ने बंगाल में नील की खेती प्रारम्भ की। उसको हम भारतीय इतिहास का पहला निलहा साहब कह

सकते हैं। बंगाल के बर्दवान, बाकुरा, बीरभूम और मुर्शिदाबाद में नील की खेती का विस्तार हुआ। बाद में बिहार में भी इसका विस्तार हुआ। नील की खेती किए जाने वाले विशाल भू-क्षेत्रों को नील के बागों की संज्ञा दी गई। इन बागों पर आमतौर पर गोरों का ही अधिकार था और नील के बागों के भू-स्वामियों को निलहा साहब के रूप में जाना जाता था। इन निलहे साहबों पर सरकार का वरद हस्त रहता था और ज़मींदार व महाजन भी किसानों का शोषण करने में इनके सहायक रहते थे। सबसे पहले निलहे साहब सदैव आर्थिक संकट से जूझ रहे किसानों को कर्ज़ देकर उन्हें अपने चंगुल में फंसा लेते थे। निरीह किसान ब्याज की बहुत ऊंची दरों के कारण अपने ऋण से कभी उबर नहीं पाते थे और फिर पीढ़ी दर पीढ़ी बंधुआ मज़दूर बनकर इन निलहे साहबों के लिए नील की खेती करने के लिए विवश हो जाते थे। निलहे किसानों को कृषिदास, अर्ध-दास अथवा बंधुआ मज़दूरों से अधिक कुछ नहीं समझते थे।

1833 में कम्पनी की सरकार ने एक एक्ट द्वारा निलहों को अपना व्यापार एवं अपना लाभ बढ़ाने के लिए किसानों पर अत्याचार करने की खुली छूट दे दी थी।

1839 में बंगाल में हाजी दादू मियां के नेतृत्व में निलहे साहबों के अत्याचारों के विरुद्ध फ़ैराज़ी आन्दोलन हुआ तथा **1859** में बिश्नचरन बिस्वास तथा दिगम्बर बिस्वास के नेतृत्व में बंगाल में निलहों के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह हुए। हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय ने अपने पत्र दि हिन्दू पैट्रिएट तथा दीन बंधु मित्र ने अपने नाटक नील दर्पण (**1858-59)** में नील की खेती करने वाले किसानों की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण किया था। नील दर्पण के दो पात्र निलहे साहब जे**0** जे**0** वुड तथा पी**0** पी**0** रोज़ के माध्यम से निलहों की तथा उनके परिवार की महिला सदस्यों तक की अमानवीयता, उनकी शोषक प्रवृत्ति आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है। उनके इस अत्याचार में मजिस्ट्रेट, पुलिस वाले, राजस्व कर्मचारी, जेलर, निरीक्षक, पण्डित, डॉक्टर आदि सभी की मिलीभगत है।

1860 में निलहों के अत्याचार व किसानों की दुर्दशा की जांच हेतु इण्डिगो कमीशन स्थापित किया गया। इस कमीशन की रिपोर्ट में डब्लू**0** एल**0** टॉवर ने लिखा-

'बिना खून के दागों के एक थैली भर नील भी इंग्लैण्ड नहीं पहुंचता है।'

कपड़े रंगने के लिए रासायनिक रंगों के प्रयोग से बाज़ार में नील की मांग कम पड़ने लगी और नील की खेती का क्षेत्र कम हो गया किन्तु जहां भी नील की खेती होती थी वहां निलहों का अत्याचार पूर्ववत जारी रहा।

बिहार के चम्पारन जिले में हज़ारों भूमिहीन कृषिदासों, बंधुआ मज़दूरों तथा निर्धन किसानों को अपना व अपने परिवार पेट पालने के लिए ज़रूरी अनाज बोने के स्थान पर नील तथा अन्य नकदी फ़सलों को बोने के लिए बाध्य किया जाता था। निलहे साहबों के लठैत निरीह किसानों पर मनमाने ढंग से अत्याचार करते थे। नील की खेती करने वाले किसानों को बाज़ार भाव की **1/40** कीमत दी जाती थी। **1917** में गांधीजी ने नील की खेती करने वाले चम्पारन के किसानों के हितों की रक्षार्थ आन्दोलन का नेतृत्व किया। गांधीजी के प्रयासों से नील के बागानों के मालिकों के किसानों पर किए

जाने वाले अत्याचार रोकने के लिए **1917** का 'चम्पारन एग्रेरियन बिल' प्रस्तावित किया गया और दमनकारी तिनकथिया प्रणाली रद्द कर दी गई।

11.3.7 ठगी प्रथा

ठगों का आतंक अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी की अराजकतापूर्ण राजनीतिक स्थिति में शान्ति एवं व्यवस्था पूर्णरूपेण नष्ट हो जाने के कारण बहुत बढ़ गया था। ठग वंश परम्परागत लुटेरे एवं हत्यारे थे जो अपने अपराध एकरूप प्रणाली से किया करते थे। ठग अन्धविश्वासपूरित कथाओं से अपने चारों ओर सुरक्षा की एक दीवार खड़ी कर दिया करते थे। ठग हैदराबाद से लेकर अवध तक और बुन्देलखण्ड से लेकर राजपूताने तक फैले हुए थे और इन्हें स्थानीय शासकों व ज़मींदारों का संरक्षण प्राप्त था। ठगों के संरक्षणों को उनकी लूट में से एक हिस्सा भी प्राप्त होता था। ठग चाहे मुसलमान हों या हिन्दू, वह मां काली के भक्त थे और उनका यह विश्वास था कि जब तक वो ठग विद्या के नियमों का पालन करते रहेंगे और उससे सम्बन्धित शगुनों का पालन करते रहेंगे तब तक मां काली का वरद हस्त उनके सर पर बना रहेगा। ठग अपनी उत्पत्ति मां काली द्वारा रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न राक्षसों के वध के समय से जोड़ते थे। ठग यह प्रचार करते थे कि जो भी उनको हानि पहुंचाने का प्रयास करेगा उसे मां काली के कोप का भाजन होना पड़ेगा।

लॉर्ड हेस्टिंग्स के शासनकाल में पिण्डारियों के दमन के बाद लॉर्ड विलियम बेंटिंग के शासन काल में ठगों का उन्मूलन करने का निश्चय किया गया। कर्नल स्लीमन, रैम्ज़े, रेनॉल्ड्स, मैल्कम, ग्राहम, एफ0 सी0 स्मिथ, लुडलो, मेजर विल्सन, कर्नल स्टेवार्ट तथा अन्य अधिकारियों को यह गुरुतर दायित्व सौंपा गया।

ठगों की अपनी एक गुप्तचर व्यवस्था थी जो कि उनके सम्भावित शिकारों की धन-सम्पत्ति और उनकी आगामी यात्राओं की अग्रिम सूचना उन तक पहुंचाती थी। ठग अपनी आपराधिक गतिविधियों को छुपाने के लिए किसी न किसी सम्मानजनक व्यवसाय से भी जुड़े रहते थे और उसी व्यवसाय के सम्बन्ध में अपने साथियों के साथ यात्रा करने के दौरान रास्ते में सहयात्रियों से मित्रता कर, उनका विश्वास प्राप्त कर लेते थे। अपने सरदार का गुप्त संकेत पाते ही किसी सुनसान इलाके में फिर एक ठग अपने शिकार के गले में पीछे से कपड़े का फन्दा डाल देता था और दूसरा ठग उसकी टांगों को आगे खींच लेता था। दम घुटने से शिकार की मृत्यु हो जाती थी। बाद में उसका माल-असबाब लूट कर, शिकार का शव जंगल में अथवा किसी उजाड़ क्षेत्र में गाड़कर ठग आगे बढ़ जाते थे।

कर्नल स्लीमन ठगों के दमन का महानायक था। स्लीमन ने अपनी जांच-पड़ताल के दौरान यह पता लगाया कि ठग अपने दल में स्त्रियों और बच्चों को भी साथ रखते थे इसलिए उनपर किसी को कोई शक नहीं होता था। ठगों के डर से या मां काली के प्रकोप के डर से उनके विरुद्ध कोई गवाही देने के लिए भी तैयार नहीं होता था। वैसे भी अपने शिकार को तो वो जीवित छोड़ते भी नहीं थे।

अंग्रेज़ों ने ठगों के दमन हेतु कठोर कानून बनाए और एक विशाल पुलिस दल ठगों को पकड़ने के लिए खड़ा किया गया। यह कानून भी बनाया गया कि चाहे जिस इलाके में ठगी की वारदात हो पर ठगों पर मुकदमा ब्रिटिश अदालतों में ही चलाया जाएगा। ग्वालियर के सिन्धिया, हैदराबाद के निज़ाम आदि भारतीय शासकों को ठगों दमन में ब्रिटिश अधिकारियों को सहयोग देने का निर्देश दिया गया। कुछ ठगों को पकड़ कर, फिर उन्हें क्षमा करने का आश्वासन देकर उनसे ठगों की कार्य-प्रणाली, उनके ठिकानों, उनके संरक्षकों आदि की जानकारी प्राप्त की गई।

कुछ ही समय में ठगों के सैकड़ों गैंग नष्ट कर दिए गए। इस प्रकार ठगों का दमन कर अंग्रेज़ों ने शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

11.3.8 गोद प्रथा

बच्चे को गोद लेने का और फिर उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार भारत में हर धर्मावलम्बी को आदिकाल से रहा है। प्रायः निःसन्तानों में इस परम्परागत अधिकार का प्रयोग किया जाता था। चूंकि भारत में आमतौर पर पुत्र को ही परिवार का उत्तराधिकारी माना जाता है अतः निःसन्तान अथवा पुत्रहीन व्यक्ति अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए अपने ही कुल अथवा आत्मीय जन के परिवार का कोई छोटा बालक गोद ले लेते थे। निःसन्तान विधवाओं को भी बच्चा गोद लेने का अधिकार होता था। शासक वर्ग में चूंकि उत्तराधिकार का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था, अतः निःसन्तान अथवा पुत्रहीन शासकों में पुत्र गोद लेना एक सर्वमान्य प्रथा थी। दत्तक पुत्र को एक औरस सन्तान के सभी वैधानिक, सामाजिक व धार्मिक अधिकार प्राप्त थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में साम्राज्य विस्तार के लिए अपनी मित्र, सहयोगी एवं अधीनस्थ शक्तियों के साथ स्वार्थ सिद्धि हेतु वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि कोई किसी शत्रु के साथ करता है। मराठा राज्य संघ के पतन के बाद अंग्रेज़ भारत में अपनी सम्प्रभुता स्थापित कर चुके थे। किन्तु अंग्रेज़ अभी भी सीधे अपने अधिकार वाले क्षेत्र को बढ़ाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 'डॉक्ट्रिन ऑफ़ लैप्स' अर्थात् व्यपगत का सिद्धान्त अपनाया। इस सिद्धान्त का कोई नैतिक, ऐतिहासिक अथवा परम्परागत आधार नहीं था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि हेतु मत्स्य-न्याय का एक निर्लज्ज उदाहरण था। लॉर्ड डलहौज़ी के शासनकाल से बहुत पहले सर्वप्रथम **1824** में कित्तूर का अधिग्रहण व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत हुआ था। **1834** में कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स ने भारत सरकार को भेजे गए एक पत्र में उसे निःसन्तान अथवा पुत्रहीन भारतीय शासकों द्वारा पुत्र गोद लिए जाने की प्रक्रिया को वैधता देने में संकोच करने का निर्देश दिया था।

व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत **1839** में माण्डवी, **1840** में कोलाबा तथा जलौन व **1842** में सूरत का अधिग्रहण किया गया। **1848** में भारत का गवर्नर जनरल का पद भार सम्भालते ही लॉर्ड डलहौज़ी साम्राज्य विस्तार में जुट गया था।

डलहौज़ी ने संरक्षित राज्य (ऐसा राज्य जिसने सहायक संधि पर हस्ताक्षर किए हों) जहां कि शासक की मृत्यु बिना नैसर्गिक उत्तराधिकारी (औरस पुत्र) के हो गई हो तो उन राज्यों को व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने का निश्चय किया। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत उसने सतारा **(1848),** सम्भलपुर **(1849),** जैतपुर **(1849),** बघात **(1850),** छोटा उदयपुर **(1852),** झांसी **(1853)** और नागपुर **(1854)** का अधिग्रहण किया। व्यपगत के सिद्धान्त का पालन करते हुए उसने कर्नाटक के नवाब तथा तंजौर के राजा की उपाधियां ज़ब्त कर लीं एवं पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब की आठ लाख रुपये वार्षिक की पेंशन रोक दी।

लॉर्ड डलहौज़ी के व्यपगत के सिद्धान्त और अवध के हस्तांतरण ने जन-आक्रोश को बढ़ाया। उसकी साम्राज्य विस्तार की नीतियां **1857** के विद्रोह का एक प्रमुख कारण बनीं। व्यपगत के सिद्धान्त के अनुपालन से प्रभावित नाना साहब और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने **1857** के विद्रोह में अंग्रेज़ों के विरुद्ध भाग लिया। **1857** के विद्रोह के दमन के बाद **1858** में महारानी के घोषणा पत्र में व्यपगत के सिद्धान्त के अनुपालन को रद्द करते हुए भारतीय शासकों को यह आश्वासन दिया गया कि किसी भी स्थिति में उनके राज्य का ब्रिटिश साम्राज्य में अधिग्रहण नहीं किया जाएगा।

11.3.9 निस्युन्दन का सिद्धान्त

11.3.9.1 अंग्रेज़ो का शिक्षा-प्रसार का सीमित दायित्व

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए **1813** के चार्टर एक्ट में एक लाख वार्षिक और **1833** के चार्टर एक्ट में लाख रुपये वार्षिक की राशि आवंटित की थी इसलिए सरकार की ओर से सम्पूर्ण जनता को शिक्षा सुलभ कराना सम्भव ही नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में कम्पनी की सरकार द्वारा 'अधोमुखी निस्युन्दन का सिद्धान्त' अपनाया गया जिसका अर्थ था - शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जाए और इस वर्ग के माध्यम से शिक्षा छन-छन कर जनसाधारण तक पहुंचे।

आर्थिक विषमताओं और सीमित संसाधनों के कारण इस नीति को व्यावहारिक माना गया। लॉर्ड मैकॉले ने **1835** के अपने अंग्रेज़ी शिक्षा के विवरणपत्र में इसी नीति का पालन करते हुए कुछ चुने हुए भारतीयों को ही अंग्रेज़ी शिक्षा उपलब्ध कराए जाने की सिफ़ारिश की थी -

'चूंकि हमारे साधन सीमित हैं अतः जन-समूह को शिक्षित करने का प्रयास करना हमारे लिए सम्भव नहीं है। हमको इस समय एक ऐसे वर्ग को तैयार करने का भरसक प्रयास करना चाहिए जो हमारे (शासक वर्ग) और लाखों शासितों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभा सके।'

लॉर्ड ऑकलैण्ड के काल में जब अंग्रेज़ी शिक्षा का विधिवत प्रचलन किया गया तो उसके शिक्षा आदेश में निस्युन्दन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया -

'सरकार को समाज के उच्च वर्ग को शिक्षा देनी चाहिए जिससे सभ्यता छन-छन कर जनता के मध्य तक पहुंचे।'

भारत में शिक्षित शहरी मध्य वर्ग अंग्रेज़ी शिक्षा के दूरगामी लाभों को समझकर उसे ग्रहण करने में और उसके फलस्वरूप सरकारी सेवाओं में स्थान प्राप्त करने में उत्सुक था। अन्ततः इस वर्ग को ही अंग्रेज़ी शिक्षा से लाभान्वित कराने का निश्चय किया गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जनता में शिक्षा प्रसार का प्रत्यक्ष दायित्व अपने ऊपर नहीं लिया। लगभग **1870** तक अंग्रेज़ी शासन ने 'निस्युन्दन सिद्धान्त' पर अमल किया।

11.3.9.2 'निस्युन्दन सिद्धान्त' की असफलता

1. अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीय आमतौर पर सरकारी सेवाओं तथा अन्य लाभकारी व्यवसायों में जाना चाहते थे न कि अल्प-वेतन उपलब्ध कराने वाले शिक्षण व्यवसाय में।

2. अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त भारतीय वर्ग की विचारधारा पश्चिमोन्मुख हो गई, उसे अपनी श्रेष्ठता का अहंकार हो गया और वह निर्धन व पाश्चात्य शिक्षा से वंचित भारतीयों को तिरस्कार व उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगा। इन परिस्थितियों में आम जनता में शिक्षा प्रसार का दायित्व निभाने की इस वर्ग में कोई अभिरुचि नहीं थी। प्रसिद्ध प्राच्यवादी एच**0** एच**0** विल्सन ने **1853** में पार्लियामेन्ट की सेलेक्ट कमेटी के समक्ष कहा था -

'वास्तव में हमने अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त एक ऐसा वर्ग बना दिया है जिसे अपने देशवासियों के साथ कोई सहानुभूति नहीं है और अगर है भी तो बहुत ही कम।'

3. 'अधोमुखी निस्युन्दन सिद्धान्त' में भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्रसार करने वाली पाठशालाओं तथा विद्यालयों की उपेक्षा की गई जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक शिक्षा-प्रसार को क्षति पहुंची। मद्रास में मुनरो, बम्बई में एलफ़िन्सटन और बंगाल में एडम्स की इस सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए शिक्षा प्रसार के प्रयास निष्फल हुए जब कि पश्चिमोत्तर प्रान्त में टॉम्सन ने 'निस्युन्दन सिद्धान्त' का परित्याग कर देशी भाषाओं के माध्यम से जन-साधारण में शिक्षा प्रसार का प्रयास किया और वह अपने लक्ष्य में सफल रहा। **1854** के चार्ल्सवुड के शिक्षा सम्बन्धी खरीते में टॉम्सन के शिक्षा-प्रसार सम्बन्धी प्रयासों को महत्व दिया गया और 'निस्युन्दन सिद्धान्त' की प्रायः उपेक्षा की गई।

19 वीं शताब्दी के आठवें दशक के प्रारम्भ तक ब्रिटिश भारत में सरकार द्वारा शिक्षा प्रसार का कोई स्पष्ट दायित्व नहीं लिया गया और 'निस्युन्दन सिद्धान्त' का ही अनुपालन किया जाता रहा।

11.3.9.3 'निस्युन्दन सिद्धान्त' के लाभ

अपनी तमाम कमियों के बावजूद इस सिद्धान्त का पालन करते हुए अंग्रेज़ों ने भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ किया। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त प्रबुद्ध भारतीयों ने व्यक्तिगत प्रयासों से सार्वजनिक शिक्षा हेतु स्कूलों, माध्यमिक विद्यालयों

तथा महाविद्यालयों की स्थापना की, भारतीय नवजागरण में इस वर्ग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही और भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार में व बाद में राष्ट्रीय आन्दोलन में इस वर्ग का ही मुख्यतः नेतृत्व रहा। भारत में आधुनिक प्रेस, विशेषकर भारतीय भाषाओं के प्रेस के विकास में इस वर्ग का अमूल्य योगदान रहा।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. ब्लैक होल
2. निलहे
3. गोद प्रथा

11.4 सारांश

'महाजनी' ब्याज पर ऋण के आदान-प्रदान से सम्बन्धित व्यवसाय को कहा जाता है। महाजन आज की तुलना में बहुत ही ऊंची ब्याज दरों पर ऋण देते थे। हज़ारों-लाखों ग्रामीण महाजनों के बंधुआ मज़दूर बनने के लिए विवश होते थे। स्थायी बन्दोबस्त स्थापित हो जाने के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में महाजन अत्यधिक प्रभावशाली हो गए।

ब्लैक होल कलकत्ते के पुराने फ़ोर्ट विलियम में एक छोटे आकार की काल कोठरी थी। बंगाल के नवाब सिराज-उद्-दौला पर तथाकथित एक भुक्तभोगी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना के एक शल्य चिकित्सक डॉक्टर हॉल्वेल ने यह आरोप लगाया था कि उसने **20** जून, **1756** को फ़ोर्ट विलियम पर अधिकार करने के बाद वहां पर मौजूद **146** लोगों को ब्लैक होल में बन्द कर दिया जिसमें **123** गर्मी, भगदड़ और दम घुटने की वजह से मौत का शिकार हो गए। अंग्रेज़ों ने नवाब की इस अमानवीय क्रूरता के बाद उसके विरुद्ध अपने द्वारा किए गए सभी षडयन्त्रों को उचित ठहराया।

1717 में मुगल बादशाह फ़र्रुखसियर ने एक फ़रमान द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल में बिना चुगी व्यापार करने का विशेषाधिकार (दस्तक) दिया था। कम्पनी के कर्मचारी बिना चुगी दिए व्यापार करने की सुविधा का खुद लाभ उठाने के साथ-साथ पैसे लेकर अपने नाम पर इस सुविधा का लाभ दूसरों को भी देते रहे। मीर कासिम ने नवाब बनने के बाद अंग्रेज़ों द्वारा दस्तक के दुरुपयोग किए जाने पर आपत्ति उठाई। मीर कासिम ने मार्च, **1763** में दो वर्ष के लिए समस्त व्यापारिक करों और चुंगियों को माफ़ कर दिया। अंग्रेज़ों को नवाब का यह निर्णय स्वीकार्य नहीं था। अंग्रेज़ों ने मीर कासिम को अपदस्थ कर मीर जाफ़र को फिर से बंगाल का नवाब बना दिया।

लॉर्ड कॉर्नवालिस की भूमि के स्थायी बन्दोबस्त के अन्तर्गत ज़मींदार के रूप में एक भू-स्वामी वर्ग का उदय हुआ। निर्धारित भू-राजस्व का **1/10** अथवा **1/11** भाग जमींदारों को अपने पास रखने का अधिकार था। भूमि के स्थायी बन्दोबस्त ने किसानों को निर्धनता की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। भारत की स्वतन्त्रता के बाद ज़मींदारी व्यवस्था का उन्मूलन कर दिया गया।

रैयत काश्तकार एवं कृषक होते थे अथवा खेतिहर मज़दूर होते थे। टॉमस मुनरो तथा एलेक्ज़ेण्डर रीड ने मद्रास प्रेसीडेन्सी में रैयतवारी व्यवस्था का प्रारूप तैयार किया था। **1820** में मद्रास में लागू किया गया। बाद में इसका विस्तार बॉम्बे प्रेसीडेन्सी, तथा अन्य क्षेत्रों में किया गया। भू-राजस्व एकत्र करने वाले निम्न-पदीय कर्मचारियों ने रैयत का भरपूर शोषण किया। इस व्यवस्था में निर्धारित लगान चुकाना रैयत के बस में नहीं था। रैयतवारी व्यवस्था एक शोषक एवं दमनकारी व्यवस्था थी।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के बाद कपड़ों को रंगने के काम में नील की प्रचुर मात्रा में आवश्यकता पड़ने लगी थी। बंगाल व बिहार में नील की खेती का विस्तार हुआ। नील के बागों के भू-स्वामियों को निलहा कहा जाता था। इन निलहों पर सरकार का वरद हस्त रहता था और ज़मींदार व महाजन भी किसानों का शोषण करने में इनके सहायक रहते थे। दीन बंधु मित्र ने अपने नाटक नील दर्पण **(1858-59)** में नील की खेती करने वाले किसानों की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण किया था। **1917** में गांधीजी ने नील की खेती करने वाले चम्पारन के किसानों के हितों की रक्षार्थ आन्दोलन का नेतृत्व किया। और 'चम्पारन एग्रेरियन बिल' पारित कराने में सफलता प्राप्त की।

ठग वंश परम्परागत लुटेरे एवं हत्यारे थे। ठग भारत के एक बड़े भाग में फैले थे। इन्हें स्थानीय शासकों व ज़मींदारों का संरक्षण प्राप्त था। ठग मां काली के भक्त थे। लॉर्ड विलियम बेंटिंग के शासन काल में ठगों का उन्मूलन करने का निश्चय किया गया। कर्नल स्लीमन ठगों के दमन का महानायक था। ठगों का दमन कर अंग्रेज़ों ने शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

भारत में दत्तक पुत्र को एक औरस सन्तान के सभी वैधानिक, सामाजिक व धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में साम्राज्य विस्तार के लिए व्यपगत का सिद्धान्त अपनाया। डलहौज़ी से पूर्व भी अनेक राज्यों का इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अधिग्रहण किया गया। डलहौज़ी के शासनकाल में इस नीति के अन्तर्गत सतारा, सम्भलपुर, जैतपुर, बघात, छोटा उदयपुर, झांसी और नागपुर का अधिग्रहण किया। **1858** में महारानी के घोषणा पत्र में व्यपगत के सिद्धान्त को रद्द कर दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में कम्पनी की सरकार द्वारा 'अधोमुखी निस्युन्दन का सिद्धान्त' अपनाया गया जिसका अर्थ था - शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जाए और इस वर्ग के माध्यम से शिक्षा छन-छन कर जनसाधारण तक पहुंचे। लॉर्ड मैकॉले तथा लॉर्ड ऑकलैण्ड ने इसी नीति का पालन करते हुए कुछ चुने हुए भारतीयों को ही अंग्रेज़ी शिक्षा उपलब्ध कराए जाने की सिफ़ारिश की थी। **19** वीं शताब्दी के आठवें दशक के प्रारम्भ तक ब्रिटिश भारत में सरकार द्वारा शिक्षा प्रसार का कोई स्पष्ट दायित्व नहीं लिया गया।

11.5 पारिभाषिक शब्दावली

मवेशी - जानवर

पुश्तैनी - वंशानुगत

बंधुआ - अनुबन्धित

रक्तबीज - एक वरदान प्राप्त राक्षस, जिसका जितनी बूंद भी रक्त धरती पर गिरता था, उतने ही और रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे।

निस्युन्दन - छन्नीकरण

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए **11.3.2** ब्लैक होल

2. देखिए **11.3.6** निलहे

3. देखिए **11.3.8** गोद प्रथा

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

नायक, जे0 पी0, नूरुल्ला, एस0 - ए स्टूडेन्ट्स हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन इण्डिया **1800-1973, 1992,** मद्रास

मुकर्जी, एन0 - दि रैयतवारी सिस्टम इन मैड्रास, **1797-1827,** कलकत्ता, **1962**

देसाई, ए0 आर0 (सम्पादक) - पीज़ेन्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया , बम्बई, **1979**

स्ट्रोक्स, ई0 - दि इंग्लिश यूटिलिटेरियन्स इन इण्डिया, ऑक्सफ़ोर्ड, **1959**

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

गोपाल, राम - ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, बम्बई, **1963**

दत्त, के0 के0 - बैंगाल सूबा, कलकत्ता, **1936**

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में भू-स्वामियों तथा महाजनों की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई बारह

पुनर्जागरण, अंधविश्वास, थियोसोफ़िस्ट, शुद्धि आन्दोलन, देवदासी, वुड्स डिस्पैच, सिविल सेवा, गवर्नर जनरल

12.1 **प्रस्तावना**

12.2 **उद्देश्य**

12.3 **पुनर्जागरण, अंधविश्वास, थियोसोफ़िस्ट, शुद्धि आन्दोलन, देवदासी, वुड्स डिस्पैच, सिविल सेवा तथा गवर्नर जनरल**

12.3.1 **पुनर्जागरण**

12.3.2 **अंधविश्वास**

12.3.3 **थियोसोफ़िस्ट**

12.3.4 **शुद्धि आन्दोलन**

12.3.5 **देवदासी**

12.3.6 **वुड्स डिस्पैच**

12.3.7 **सिविल सेवा**

12.3.8 **गवर्नर जनरल**

12.4 **सारांश**

12.5 **पारिभाषिक शब्दावली**

12.6 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

12.7 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

12.8 **सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री**

12.9 **निबंधात्मक प्रश्न**

12.1 प्रस्तावना

यूरोपीय पुनर्जागरण ने विश्व को और भारतीय पुनर्जागरण ने भारत को आधुनिक युग की प्रगतिशील धारा में प्रविष्ट कराया। अंधविश्वास का मूल कारण मनुष्य का अज्ञान है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय सुधारकों ने धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त अंधविश्वासों के उन्मूलन हेतु यार्थक प्रयास किए। थियोसोफ़िस्ट रहस्यवादी विचारधारा में आस्था रखता है। श्रीमती एनीबीसेन्ट ने थियोसोफ़िकल सोसायटी के माध्यम से भारतीय पुनरुत्थानवादी आन्दोलन को

सशक्त बनाया। हिन्दू पुनरुत्थान के पक्षधर आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन द्वारा धर्मपरिवर्तन करने वालों की हिन्दू समाज में प्रविष्टि को सम्भव बनाया। प्राचीन काल से चली आ रही देवदासी प्रथा धार्मिक विकृति और नारी के शोषण का उदाहरण थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सुधारकों द्वारा इस कुप्रथा के उन्मूलन हेतु प्रयास किए गए। भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति का दूसरा महत्वपूर्ण चरण वुड्स डिस्पैच था। इसमें निस्युन्दन सिद्धान्त के स्थान पर जन-साधारण में शिक्षा प्रसार की नीति अपनाई गई थी। इण्डियन सिविल सर्विस ब्रिटिश भारतीय शासन-तन्त्र का एक प्रमुख आधार थी। इसके सदस्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के रक्षक थे। **1773** से लेकर **1833** तक बंगाल का गवर्नर जनरल और **1833** से **1950** तक भारत का गवर्नर जनरल भारत का सर्वोच्च प्रशासक रहा। **1858** से यह ब्रिटिश ताज के प्रतिनिधि के रूप में वाइसराय भी कहलाया। इस इकाई में आप पुनर्जागरण, अंधविश्वास, थियोसोफ़िस्ट, शुद्धि आन्दोलन, देवदासी, वुड्स डिस्पैच, सिविल सेवा तथा गवर्नर जनरल के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारतीय पुनर्जागरण, पुनरुत्थानवादी आन्दोलन, ब्रिटिश प्रशासन तथा ब्रिटिश शिक्षा नीति के महत्वपूर्ण अंगों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- भारतीय पुनर्जागरण तथा इसी के अन्तर्गत अंधविश्वास तथा देवदासी प्रथा के उन्मूलन के विषय में।

2- पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के अन्तर्गत शुद्धि आन्दोलन तथा भारत में थियोसोफ़िकल सोसायटी के क्रियाकलाप के विषय में।

3- ब्रिटिश प्रशासन के महत्वपूर्ण अंग सिविल सेवा तथा गवर्नर जनरल के विषय में।

4- ब्रिटिश शिक्षा नीति के दूसरे महत्वपूर्ण चरण चार्ल्स वुड डिस्पैच के विषय में।

12.3 **पुनर्जागरण**, **अंधविश्वास**, **थियोसोफ़िस्ट**, **शुद्धि आन्दोलन**, **देवदासी**, **वुड्स डिस्पैच**, **सिविल सेवा तथा गवर्नर जनरल**

12.3.1 पुनर्जागरण

पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ है फिर से जागना। ऐतिहासिक सन्दर्भ में **14** वीं शताब्दी से **17** वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में विकसित सांस्कृतिक आन्दोलन को हम पुनर्जागरण कहते हैं। यूरोपीय पुर्जागरण का सूत्रधार पेटार्क माना जाता है। पुनर्जागरण में विज्ञान, कला, शिक्षा तथा राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सन् **1453** में कुन्सतुनतुनिया (कॉन्सटैन्टिनोपल) के पतन के बाद ग्रीक विद्वानों ने प्राचीन ग्रीक तथा लैटिन ग्रंथों से शेष यूरोपवासियों को परिचित कराया और इसके फलस्वरूप यूरोप ने मध्यकाल की पिछड़ी परम्परावादी मानसिकता व अकर्मण्यता से उबर कर एक बौद्धिक युग में प्रवेश किया। विज्ञान, तकनीक, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में अभिनव प्रयोग करने

की प्रवृत्ति अब प्रबल हो गई थी। राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रवादी विचारधारा के विकास के साथ राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ और लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना का शुभारम्भ हुआ। इस प्रकार पुनर्जागरण ने यूरोप को आधुनिक युग में प्रविष्ट कराया।

भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण अथवा नवजागरण **19** वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, साहित्यिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जागृति के रूप में अभिव्यक्त हुआ। भारतीय पुनर्जागरण अथवा नवजागरण का अग्रदूत हम राजा राममोहन राय को मान सकते हैं।

राजा राममोहन राय ने परम्परा के नाम पर अंधविश्वास, धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक, सामाजिक व लैगिक असमानता, अनुपयोगी शिक्षा-पद्धति तथा शासन के दमनकारी व शोषक स्वरूप को अस्वीकार किया। उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में कृषि, उद्योग व व्यापार में हुई प्रगति को भारत में अपनाए जाने पर बल दिया। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की महत्ता और जन-जागृति में प्रेस की सृजनात्मक भूमिका समझने वाले वह पहले भारतीय थे।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर भारतीय स्त्रियों के उद्धारक थे। उन्होंने स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। विधवा विवाह को मान्यता दिलाने में उन्हें सफलता मिली। नवजागरण काल में बी**0** एम**0** माल्बरी तथा पण्डिता रमा बाई ने स्त्री-समाज से जुड़ी सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के प्रयास किए। दलित समाज के उत्थान के लिए आर्य समाज जैसा पुनरुत्थानवादी आन्दोलन अत्यन्त सजग था। जोतिबा फुले नवजागरण काल में दलित चेतना के अग्रदूत थे। सर सैयद अहमद तथा उनके सहयोगी अल्ताफ़ हुसेन हाली ने मुसलमानों को नवजागरण की प्रगतिशील विचारधारा को अपनाने की प्रेरणा दी। दादा भाई नौरोजी तथा उनके साथियों ने रहनुमाई मजदेआसन सभा के माध्यम से पारसी समाज में जागृति के प्रयास किए। नामधारी व निरंकारी आन्दोलनों ने सिक्ख समाज में फैली धार्मिक, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन पर बल दिया।

नवजागरण काल में परम्परागत धार्मिक शिक्षा के स्थान पर धर्म-निर्पेक्ष आधुनिक शिक्षा को महत्ता दी गई। साहित्य, भाषा, कला, अर्थ शास्त्र, इतिहास, कानून की शिक्षा के साथ तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा को भी महत्व दिया गया।

नवजागरण काल में साहित्य को दरबार से निकाल कर जन-साधारण तक पहुंचाया गया। भारतीय भाषाओं का विकास कर उनमें उपयोगी मौलिक एवं अनुवादित ग्रंथों की रचना की गई। इस काल में सामाजिक परिष्कार, आर्थिक व राजनीतिक जागृति के प्रति समर्पित पत्रकारिता का विकास हुआ।

नवजागरण काल में दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास ने जहां एक ओर औपनिवेशिक शासन की शोषक नीतियों का पर्दाफ़ाश किया वहीं दूसरी ओर इसने भारतीयों को आर्थिक आत्म-निर्भरता व स्वदेशी की महत्ता का पाठ पढ़ाया।

नवजागरण काल में भारतीयों ने अपनी हीन भावना का परित्याग कर आत्म-गौरव तथा आत्म-विश्वास का विकास किया। नवजागरण ने भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया। नागरिक अधिकार, लोक-कल्याणकारी शासन, शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी, मताधिकार और अन्ततः उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांगों ने भारतीयों को पहले सरकार का सलाहकार, फिर आलोचक और बाद में विरोधी बना दिया।भारतीय नवजागरण ने भारत को सर्वतोमुखी प्रगति की ओर अग्रसर किया।

12.3.2 अंधविश्वास

अलौकिक चमत्कारी शक्तियों में बुद्धि, विवेक और तर्क से परे अटूट विश्वास रखने की प्रवृत्ति के लिए निन्दात्मक शब्द 'अंधविश्वास' का प्रयोग किया जाता है। ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र, प्रेत-विद्या, जादू, टौना, गण्डा, ताबीज़, मन्नत, बलि प्रथा, काला जादू, मूठ, शुभ-अशुभ का भेद, शगुन, असगुन आदि अनगिनत अंधविश्वास मानव जीवन को प्रभावित करते आए हैं। सभी धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों के पीछे भी कोई न कोई अंधविश्वास जुड़ा रहता है।

सभी क्षेत्रों के सभी धर्मावलम्बियों, सम्प्रदायों और समुदायों में अनादिकाल से अंधविश्वासों का प्रभुत्व रहा है। मनुष्य के अज्ञान अथवा सीमित ज्ञान ने हर घटना के पीछे उसके कारणों को समझ पाने में उसे असमर्थ बना दिया और कुटिल एवं धूर्त व्यक्तियों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इनके कारणों की व्याख्या करने के लिए चमत्कार व अलौकिक शक्तियों का आश्रय लेकर उसे पथभ्रष्ट किया। ईसाई धर्म में धन प्राप्त कर धर्म पुरोहित पाप-मुक्ति तथा स्वर्ग जाने हेतु अधिकार पत्र निर्गत करते थे। हिन्दुओं में यह मान्यता थी कि श्राद्ध के दिनों में पण्डितों को दिया गया दान और कौओं को खिलाए गए पकवान पुरखों तक पहुंच जाते हैं।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व धार्मिक और सामाजिक अंधविश्वासों के विरुद्ध विश्व-व्यापी आन्दोलन हुआ। पन्द्रहवीं, सोलहवीं शताब्दी में हुए बौद्धिक जागरण में हर बात को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखने पर बल दिया गया। कबीर, मार्टिन लूथर, कोपरनिकस, गैलीलियो आदि ने पूर्व निश्चित धारणाओं व परम्पराओं के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

भारत में धर्म, आस्था और परम्परा के नाम पर पुरोहित, मौलवी, ओझा, ज्योतिषी, सयाने, फ़कीर, दरवेश, कापालिक, अघोरी आदि भोली जनता का आर्थिक दोहन तो कर ही रहे थे, साथ ही उसे दिग्भ्रमित कर दलितों, निरीह कन्याओं और स्त्रियों का हर सम्भव शोषण भी कर रहे थे। कन्या का यदि कौमार्यावस्था में ही विवाह न किया जाए तो उसके माता-पिता व भाई-बंधु नरक जाते हैं, मृत पति की चिता में उसके साथ सह-मरण करने से स्त्री व उसके परिवार-जनों का लोक-परलोक सुधर जाता है, विधवा स्त्री यदि केश-मुण्डन न कराए तो उसके बाल उसके मृत पति को स्वर्ग लोक से जाने से रोकने में बन्धन का काम करते हैं, आदि अंधविश्वासों ने धर्म को विकृत कर दिया था। भारत में यह सब कुछ तब घट रहा था जब पाश्चात्य जगत में वैचारिक क्रान्ति आ चुकी थी और हर बात को बुद्धि तथा विवेक की कसौटी पर परखा जा रहा था।

19 वीं शताब्दी में सती प्रथा, नर बलि, कुलीन प्रथा, बालिका-वध, बाल-विवाह, चरक पूजा, दरगाहों में जाकर मन्नत मांगना आदि आम बात हो गई थी। ठग खुद को मां काली की सन्तान बताकर और जनता के अंधविश्वास का लाभ उठाकर निडर होकर अपनी आपराधिक गतिविधियां करते रहते थे। तन्त्र, मन्त्र और काले जादू को भी अब धर्म में स्थान मिल चुका था। ओझाओं तथा कलन्दरों और फ़कीरों का भी सामाजिक प्रभुत्व स्थापित हो चुका था।

भारतीय पुनर्जागरण काल में सुधारकों, ईसाई मिशनरियों तथा उदार ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीयों में फैले अंधविश्वासों के विरुद्ध अभियान छेड़ा। शिक्षा-प्रसार को अंध-विश्वास उन्मूलन के लिए आवश्यक शर्त माना गया और धार्मिक विकृतियों को दूर कर धर्म के विशुद्ध रूप को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, जोतिबा फुले, पण्डिता रमा बाई, सैयद अहमद खान आदि ने अंधविश्वास के विरुद्ध वातावरण विकसित किया। सैयद अहमद खान के सहयोगी अल्ताफ़ हुसेन हाली ने अपनी पुस्तक मजालिस-उन-निसा में समाज में, विशेषकर स्त्री समाज में प्रचलित अंधविश्वासों पर विस्तृत चर्चा की है।

लॉर्ड विलियम बेंटिंग ने सती प्रथा को एक अपराध घोषित करा दिया और नर बलि पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

शिक्षा-प्रसार व धार्मिक-सामाजिक जागृति के साथ अंधविश्वास का प्रभुत्व कम अवश्य हुआ है किन्तु आज भी समाज के हर वर्ग में अंधविश्वास किसी न किसी रूप में विद्यमान है। शिक्षित व तथाकथित जागरूक भी बिल्ली द्वारा रास्ता काटने को अनदेखा नहीं कर पाते, शनिवार को शनि महाराज के नाम पर दान देते हुए कितने लोग मिल जाते हैं, कितनी ही मांओं को अपने बच्चे की नज़र उतारते हुए और कितने ही मुरीदों को दरगाहों पर मन्नत मांगते हुए देखा जा सकता है। आज भी ज्योतिषी, ओझा, फ़कीर, तान्त्रिक, स्वयं-भू भगवान आदि अपने चमत्कारों और अपनी करामातों का ढोल पीटकर हमारे अंधविश्वास की आंच में अपनी रोटियां सेक रहे हैं। अंधविश्वास का उन्मूलन हमारी प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक है और इसके लिए अनवरत रूप से सामाजिक जागृति हेतु व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

12.3.3 थियोसोफ़िस्ट

'थियोसोफ़ी' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द 'थियोसोफ़िया' से हुई है जिसका कि शाब्दिक अर्थ है - दिव्य ज्ञान। एक थियोसोफ़िस्ट, साधना, ध्यान, दिव्य-अनुभूतियों तथा ज्ञान के माध्यम से प्रकृति एवं परम सत्ता के गूढ़ रहस्यों की खोज करता है। थियोसोफ़िस्ट ब्रह्माण्ड के रहस्यों की खोज करता है तथा ब्रह्माण्ड, प्रकृति एवं मनुष्य के मध्य अटूट बन्धन को समझने का प्रयास करता है। थियोसोफ़िस्ट का परम लक्ष्य ज्ञानोदय (परम सत्ता का ज्ञान) तथा मोक्ष है। थियोसोफ़िकल विचारधारा में प्राचीन यूनान, प्राचीन मिस्र, यहूदी, नव-अफ़लातूनी, इस्लाम के अन्तर्गत सूफ़ी तथा भारतीय रहस्यवाद का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

17 वीं शताब्दी में जैकब बोर्मे ने थियोसोफ़ी को दिव्य-ज्ञानबोध के रूप में परिभाषित किया। **18** वीं शताब्दी में जॉन जैकब ब्रुकर की **1741** में रचित पुस्तक हिस्टोरिया क्रिटिका फ़िलोसोफ़िया में थियोसोफ़िकल विचारधारा पर प्रकाश डाला गया। जर्मन दार्शनिक सैमुअल रिक्टर ने इस विचारधारा को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया। थियोसोफ़िकल सोसायटी की स्थापना अमेरिका में, **1875** में, मैडम हेलेना ब्लैवेट्सकी, कर्नल ऑलकॉट तथा विलियम क्वान जज द्वारा की गई। इसके तीन प्रमुख लक्ष्य थे -

1. विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करना।

2. प्राच्य धर्म, प्राच्य दर्शन और विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित करना।

3. प्रकृति के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना तथा मनुष्य में निहित दैविक शक्ति का विकास करना।

थियोसोफ़िकल सोसायटी की विचारधारा वेदो, उपनिषदों तथा बौद्ध साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित थी। वसुधैव कुटुम्बकम् तथा सर्वेश्वरवाद की अवधारणा इसने भारतीय दर्शन से ही ग्रहण की थी। थियोसोफ़िकल सोसायटी सभी धर्मों में एक ही परम सत्य के दर्शन करती थी। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने हिन्दू धर्म की प्रचलित मान्यताओं को अंगीकार किया। इसने भारतीय स्त्रियों की दशा सुधारने का पक्ष तो लिया किन्तु उन्हें स्वेच्छाचारी पाश्चात्य महिलाओं का अनुकरण करने के स्थान पर सावित्री और सीता को अपना आदर्श बनाने के लिए प्रेरित किया। इसने देवदासी प्रथा जैसी प्राचीन किन्तु निन्दनीय प्रथा को परिष्कृत कर उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

श्रीमती एनीबीसेन्ट ने **1893** में थियोसोफ़िकल सोसायटी के अड्यार (मद्रास) केन्द्र की कमान सम्भाली। उनके प्रयास से अनेक प्रभावशाली भारतीय इसके सदस्य बने। प्राचीन हिन्दू धर्म, ब्रह्म विद्या और गुह्य विद्या का उन्होंने प्रचार-प्रसार किया। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने हिन्दुओं को अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर गर्व करने का संदेश दिया। श्रीमती एनीबीसेन्ट ने भगवद् गीता का अनुवाद किया और रामायण तथा महाभारत पर संक्षिप्त भाष्य लिखे। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने पाश्चात्य देशों को वेद, उपनिषद, पुराण, बौद्ध दर्शन, रामायण तथा महाभारत से परिचित कराया। श्रीमती बीसेन्ट ने भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र, हिन्दू पूजा-अर्चन विधि, योगशास्त्र, तन्त्र-विद्या, गुरु की महत्ता, आत्मा-परमात्मा के मिलन, पुनर्जन्म, आत्मा के अमरत्व, अवतारवाद तथा बहुदेववाद में अपनी आस्था व्यक्त की। हिन्दुओं की सहिष्णुता की नीति को थियोसोफ़िस्टों ने समस्त मानवजाति के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी बताया।

12.3.4 शुद्धि आन्दोलन

आर्य समाज ने वैदिक धर्म पर प्रहार करने वालों के प्रति आक्रामक रूप धारण किया। वैदिक धर्म की रक्षा करते हुए उन्होंने मुस्लिम और ईसाई धर्म प्रचारकों की आक्रामकता का उनकी ही शैली में उत्तर दिया। आर्य समाज के शुद्धि आन्दोलन तथा गो-रक्षा आन्दोलन विवादास्पद रहे।

मुसलमानों ने मुस्लिम प्रभुत्व काल में तलवार के बल पर अथवा प्रलोभन देकर अथवा इस्लाम के अन्तर्गत सामाजिक समानता व मुस्लिम-विश्वबंधुत्व का हवाला देकर एक विशाल जनसमूह को इस्लाम कुबूल करने के लिए बाध्य अथवा प्रेरित किया था। ईसाई मिशनरियों ने भी ईसाई शासकों की शह पाकर लाखों हिन्दुओं को सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक व शैक्षिक लाभ का प्रलोभन देकर अथवा ईसाई धर्म की अतिरंजित श्रेष्ठता का हवाला देकर लाखों हिन्दुओं को ईसाई धर्म में दीक्षित किया था। जिन हिन्दुओं ने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया था, उनके लिए अपने धर्म में वापस लौटने के सभी मार्ग हिन्दू समाज ने अवरुद्ध कर दिए थे परन्तु दयानन्द सरस्वती ने शुद्धि आन्दोलन के द्वारा ऐसे लोगों के लिए अपनी शुद्धि करा के फिर से हिन्दू बनने का रास्ता साफ़ कर दिया। आर्य समाज द्वारा अपनाई गई इस धार्मिक आक्रामकता का परिणाम साम्प्रदायिक कटुता में वृद्धि के रूप में दिखाई दिया। परन्तु आर्य समाज को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि इसने हिन्दुओं में व्याप्त हीनभावना का उन्मूलन करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की।

शुद्धि आन्दोलन को कट्टरपंथी हिन्दू समाज ने सहज ही स्वीकार नहीं किया। **1910** में शुद्धि सभाओं का गठन किया गया। **1922** में असहयोग आन्दोलन को वापस लिए जाने तथा **1923** में तुर्की में कमालपाशा के नेतृत्व में लोकतन्त्र की स्थापना के बाद भारत में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में एक बार फिर से दरार पड़ने लगी थी। साम्प्रदायिक शक्तियां फिर सर उठाने लगी थीं। आर्य समाज, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा हिन्दू महासभा द्वारा पोषित गो-रक्षा व शुद्धि-संघटन, और कट्टरपंथी मुसलमानों के तब्लीक तथा तन्ज़ीम जैसे प्रतिक्रियावादी आन्दोलनों की लहर ने साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में अहम भूमिका निभाई थी। **1923** से लेकर **1926** तक संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी भाग में बड़ी संख्या में मलकाना राजपूतों को पुनः धर्म परिवर्तित कर हिन्दू बनाया गया। शुद्धि सभा के मुख्य संचालक स्वामी श्रद्धानन्द ने मलकाना राजपूतों के शुद्धि द्वारा मुसलमान से फिर हिन्दू धर्म में परिवर्तित होने की घटना को 'पुनर्जागरण की उषा वेला' कहा था। **1926** में की एक धर्मांध मुसलमान ने हत्या कर दी। पंजाब में लाला लाजपत राय ने लाखों मुसलमानों की शुद्धि कराकर उन्हें हिन्दू धर्म में पुनर्प्रविष्ट कराया था।

शुद्धि आन्दोलन पर परवर्ती काल में आर्य समाज का एकाधिकार नहीं रहा और इसका कलेवर सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन से अधिक राजनीतिक आन्दोलन का हो गया।

12.3.5 देवदासी

नृत्य को भारतीय भक्ति परम्परा में सदैव आदरपूर्ण स्थान दिया गया है। प्राचीन काल से ही भारत के मन्दिरों में ईश्वर की आराधना करने में नृत्य एवं गायन की परम्परा रही है। इस परम्परा को स्थायित्व देने के लिए और मन्दिरों में आयोजित कार्यक्रमों की शोभा बढ़ाने के उद्देश्य से देवदासी प्रथा का विकास किया गया था। देवदासी किसी मन्दिर के आराध्यदेव के साथ प्रतीकात्मक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसके प्रति अपना जीवन समर्पित कर देती थी और नृत्य और संगीत के माध्यम से उसके प्रति अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति करती थी। कालिदास के मेघदूत में उज्जैन के

महाकाल मन्दिर में नृत्यांगनाओं द्वारा महाकाल की प्रतिमा के समक्ष नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। पुराणों में भी इस प्रथा का उल्लेख मिलता है। **10** वीं शताब्दी तक यह प्रथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों के मन्दिरों में पोषित की जाने लगी और धीरे-धीरे मन्दिरों की प्रतिष्ठानुसार देवदासियों की संख्या का निर्धारण होने लगा। दक्षिण में चोल शासकों ने देवदासी प्रथा को प्रोत्साहित किया। वृहदेश्वर मन्दिर में **400** देवदासियां नित्य पूजा-अर्चना के समय तथा विशेष रूप से मन्दिर में आयोजित धार्मिक उत्सवों के समय नृत्य करती थीं।

देवदासियों को कौमार्यावस्था से ही अपने आराध्यदेव के सेवा-कार्य में लगा दिया जाता था। इष्टदेव के साथ उनके प्रतीकात्मक विवाह का एक समारोह किया जाता था। अपने इष्टदेव के सम्मुख नृत्य करने के अतिरिक्त उन्हें मन्दिर से जुड़े अन्य कार्य भी करने पड़ते थे और इसके लिए उन्हें पूजा के विधि-विधान का ज्ञान भी दिया जाता था।

देवदासियों को शास्त्रीय नृत्य का प्रशिक्षण दिया जाता था। तमिलनाडु में सादिर अथवा दासी अट्टम (भरत नाट्य) और उड़ीसा में पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में ओडिसी नृत्य कर देवदासियां मन्दिरों के समारोहों की शोभा बढ़ाती थीं। देवदासियों को मन्दिर में पुजारी के बाद सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। राज परिवारों का संरक्षण मिलने के कारण समाज में भी इनका मान था। भगवान से इनका विवाह कर दिए जाने के कारण इन्हें नित्य सुमंगली अर्थात् चिर-सुहागिनी कहा जाता था। चैतन्य महाप्रभु ने देवदासियों को जयदेव के गीत गोविन्द के पदों पर नृत्य करने की प्रेरणा दी थी।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में देवदासियों के अलग-अलग नाम थे। इन्हें वेंकटसनी, नैली, मुरली, थेरादियान, येल्लम्मा, महरी, जोगिनी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था।

वास्तव में देवदासी प्रथा धर्म के विकृत रूप और धर्म के नाम पर स्त्री के यौन-शोषण का एक जीवन्त उदाहरण था। देवदासियां नित्य ही राज-परिवारों के अथवा धर्म-पुरोहितों के अथवा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त परिवारों के पुरुषों की वासना का शिकार होती थीं। इस अनाचार से उत्पन्न उनकी पुत्रियां भी देवदासियां बना दी जाती थीं और उनके पुत्र मन्दिर से जुड़े कामों में लगा दिए जाते थे। इन देवदासियों की वृद्धावस्था प्रायः एकाकीपन और अभाव में बीतती थी। देवदासी प्रथा में धर्म और समाज के ठेकेदार एक कन्या को धर्म के नाम पर आजीवन एक बन्दिनी, एक दासी अथवा एक वेश्या का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करते थे। यह कृत्य व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना का हनन था।

ब्रिटिश काल में राज-रजवाड़ों के पतन के बाद देवदासी प्रथा को राजाओं का संरक्षण मिलना बहुत कम हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। ईसाई मिशनरियों, ब्रिटिश अधिकारियों तथा भारतीय समाज सुधारकों ने देवदासी प्रथा को वेश्यावृत्ति के समतुल्य मानकर इसके उन्मूलन के प्रयास किए। एम**0** जी**0** रानाडे, केशव ढोढो कर्वे, मुथु लक्ष्मी रेड्डी, सी**0** पी**0** रामस्वामी अय्यर, पेरियार, एस**0** मुथैया मुदलियार आदि ने उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में इस प्रथा के उन्मूलन हेतु अभियानों का नेतृत्व किया। दि इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर,

लाहौर प्योरिटी सर्वेन्ट, रिफ़ॉर्मिस्ट मूवमेन्ट तथा अबोलिशन मूवमेन्ट की भी इसके विरोध में भूमिका रही। भाग्य रेड्डी वर्मा ने इस प्रथा को निज़ाम के राज्य में एक अपराध घोषित करवा दिया था। थियोसोफिकल सोसायटी जैसे पुनरुत्थानवादी आन्दोलन ने देवदासी प्रथा में आई विकृतियों को दूर कर इसके शुद्ध रूप को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था। थियोसोफ़िस्ट रुक्मिनी अरुण्डेल ने सादिर अथवा दासीअट्टम को भरतनाट्यम नाम दिया और कला के क्षेत्र में सम्मानित स्थान दिलाया। देवदासी प्रथा के पीछे धार्मिक अवनति, अशिक्षा, निर्धनता और अंधविश्वास का हाथ था। प्रायः दलित समाज की असहाय कन्याओं के माता-पिता को धन का तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रलोभन देकर देवदासी बनने के लिए तैयार किया जाता था।

वीरेसालिंगम पांतलु द्वारा स्थापित मैड्रास हिंदू सोशल रिफ़ॉर्म कमेटी ने देवदासी प्रथा का विरोध किया और **1892** में मद्रास के गवर्नर तथा भारत के गवर्नर जनरल से इस प्रथा के उन्मूलन हेतु कानून बनाए जाने की अपील की। **1934** में 'बॉम्बे देवदासी प्रोटेक्शन एक्ट' पारित कर कन्याओं का भगवान को समर्पित किया जाना गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। **1947** में मद्रास में भी इसी प्रकार का कानून बनाया गया। देवदासी के विवाह को मान्यता दी गई तथा उसकी सन्तानों को वैध माना गया। पूर्व देवदासियों के पुनर्वास हेतु सरकार की ओर से तथा सामाजिक संस्थाओं की ओर से प्रयास किए गए। धीरे-धीरे शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक जागृति के कारण इस कुप्रथा का प्रसार कम होता चला गया। **1988** में सम्पूर्ण भारत में देवदासी प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया।

12.3.6 वुड्स डिस्पैच

पश्चिमोत्तर प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर टॉम्सन (**1843-1853)** ने देशी भाषाओं के माध्यम से प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा दिए जाने के लाभ का प्रत्यक्ष प्रमाण देते हुए 'निस्युन्दन सिद्धान्त' के अन्तर्गत अंग्रेज़ी शिक्षा का सीमित जनसंख्या तक प्रचार करने की अव्यावहारिकता को गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी तथा कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स के समक्ष दर्शाया था। अब शिक्षा के क्षेत्र में विशद सर्वेक्षण की आवश्यकता थी। **1853** में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण के समय एक संसदीय समिति नियुक्त की गई। **19** जुलाई, **1854** को ईस्ट ऑफ़ इण्डिया कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कन्ट्रोल' के अध्यक्ष चार्ल्सवुड द्वारा कम्पनी के डायरेक्टरों की ओर से भारत के गवर्नर जनरल को एक खरीता भेजा गया जिसमें भारत में शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य तथा शिक्षा-सुधार की योजनाओं की विस्तृत चर्चा की गई थी। इस खरीते को 'चार्ल्सवुड डिस्पैच' के नाम से जाना जाता है।

शिक्षा के उद्देश्य के विषय में इस डिस्पैच में कहा गया -

'यह हमारे पुनीत कर्तव्यों में से एक है कि हम अपनी सामर्थ्य भर भारत के मूल निवासियों को शिक्षा के नैतिक व मौलिक वरदान से लाभान्वित होने का अवसर प्रदान करें।'

मैकॉले के विचारों को दोहराते हुए इस डिस्पैच में यह आशा व्यक्त की गई कि इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके भारतीयों का एक ऐसा विश्वस्त वर्ग विकसित होगा जिसकी निष्ठा पर सन्देह किए बिना उसे सरकारी नौकरियों में रखा जा सकेगा।

शिक्षित भारतीयों में पाश्चात्य माल की अच्छी खपत की सम्भावना की दृष्टि से भारत में शिक्षा प्रसार को ब्रिटिश उद्योग एवं व्यापार के लिए भी लाभकारी बताया गया। पौर्वात्य ज्ञान की तुलना में पाश्चात्य ज्ञान की श्रेष्ठता व उपयोगिता के विषय में इस डिस्पैच में व्यक्त विचार भी मैकॉले के विचारों की प्रतिध्वनि हैं किन्तु इसमें संस्कृत, फ़ारसी, अरबी जैसी शास्त्रीय भाषाओं की ऐतिहासिक व कानूनी दृष्टि से भारत में उपयोगिता तथा क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा-प्रसार की व्यावहारिकता को भी स्वीकार किया गया।

1. इस डिस्पैच के अन्तर्गत बंगाल, मद्रास, बम्बई, पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा पंजाब में लोक शिक्षा निदेशक (डायरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स) के आधीन शिक्षा विभागों की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया।

2. दूसरा प्रस्ताव भारत में लन्दन विश्वविद्यालय के नमूने पर कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना करने के विषय में था।

3. तीसरा प्रस्ताव क्रमबद्ध (ग्रेडेड) स्कूलों और विद्यालयों का भारत में जाल बिछाने के सम्बन्ध में था। इसमें सबसे नीचे प्राथमिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हाईस्कूल तथा सबसे ऊपर विश्वविद्यालय आते थे।

इस डिस्पैच में 'निस्युन्दन सिद्धान्त' की सीमित उपयोगिता के परिप्रेक्ष्य में उसका परित्याग कर जन-साधारण तक व्यावहारिक शिक्षा के प्रसार की नीति अपनाए जाने की सिफ़ारिश की गई। शिक्षा प्रसार हेतु सरकार के पास सीमित संसाधन को देखते हुए सहायता-अनुदान (ग्रान्ट्स-इन-एड) का सुझाव दिया गया। भारतीयों तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा निजी प्रयासों से स्कूल, कॉलेजों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओ आदिं की स्थापना किए जाने को इसने प्रोत्साहन दिया। मेधावी छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्ति दिए जाने का भी प्रस्ताव रखा गया। अध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु प्रत्येक प्रान्त में प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना का भी प्रस्ताव रखा गया। स्त्री-शिक्षा के प्रसार को भी महत्व दिया गया। विभिन्न विषयों पर अंग्रेज़ी भाषा की उपयोगी पुस्तकों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद हेतु अनुवादकों को पुरस्कार दिए जाने की सिफ़ारिश की गई। व्यावसायिक शिक्षा के विस्तार हेतु स्कूल व कॉलेजों की स्थापना की भी संस्तुति की गई।

वुड्स डिस्पैच को 'भारतीय शिक्षा के इतिहास का मैग्नाकार्टा' (भारतीय इतिहास में मील का पत्थर) कहना ब्रिटिश भारतीय शासकों की अनुचित गर्वोक्ति थी। यह सही है कि इस डिस्पैच में ब्रिटिश शासन में भारतीय शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या की गई थी और भविष्य के लिए शिक्षा-नीति का निर्धारण किया गया था किन्तु इसमें सरकार ने सार्वजनिक शिक्षा प्रसार का दायित्व स्वीकार नहीं किया था। इस डिस्पैच में भारत के औद्योगिक विकास हेतु समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं की गई थी अपितु यह अपेक्षा की गई थी। वुड्स डिस्पैच में प्राथमिक शिक्षा के

विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। **1882** के हन्टर आयोग नेयह सुझाया था कि कम से कम प्राथमिक शिक्षा तक के विकास का दायित्व सरकार निजी प्रयासों के स्थान पर स्वयं लेना स्वीकार करे।

12.3.7 सिविल सेवा

ब्रिटिश प्रशासन के तीन प्रमुख स्तम्भ थे- इण्डियन सिविल सर्विस, भारतीय सेना तथा पुलिस। इनके दायित्व क्रमशः प्रशासन चलाना, रक्षा करना तथा शांति व्यवस्था बनाए रखना था। भारतीय नागरिक सेवा को वह फ़ौलादी ढांचा माना जाता है जिसने कि भारत में ब्रिटिश शासन को आगे बढ़ाया और सुदृढ़ किया। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के कारण भारतीय प्रशासनिक सेवा के गठन की आवश्यकता पड़ी थी।

पहले कम्पनी के कर्मचारी निजी व्यापार करने के साथ प्रशासनिक दायित्व भी निभाते थे। लॉर्ड कार्नवालिस ने अधिकारियों के निजी व्यापार पर रोक लगाई। उसी ने इंण्डियन सिविल सर्विसेज़ का गठन किया। **1800** में कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से प्रशासनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। **1853** के चार्टर एक्ट के द्वारा इन सेवाओं के चयन के लिए प्रतियोगिता परीक्षा प्रारम्भ की गई और इन में भारतीयों के प्रवेश की व्यवस्था की गई परन्तु परीक्षा अंग्रेज़ी में और केवल इंग्लैण्ड में आयोजित किए जाने के कारण यह आम भारतीयों की पहुंच के बाहर रही। भारत में ब्रिटिश नौकरशाही प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों के प्रवेश की विरोधी थी। लॉर्ड लिटन की भी यही विचारधारा थी। वह भारतीयों के लिए उच्च प्रशासनिक सेवाओं के द्वार बन्द करना चाहता था परन्तु ऐसा करना **1858** के महारानी के घोषणापत्र में दिए गए जातीयता, राष्ट्रीयता एवं वर्णगत समानता की नीति का खुलेआम विरोध होता। इसलिए उसने भारतीयों के लिए भारतीय नागरिक सेवा में प्रविष्टि के मार्ग में रुकावटें खड़ी करने की नीति अपनाई। **1877** में उसने इण्डियन सिविल सर्विसेज़ में प्रवेश के लिए अभ्यार्थियों की न्यूनतम आयु **21** से घटाकर **19** वर्ष करा दी। स्वाभाविक था कि इस व्यवस्था से इस प्रतियोगिता के लिए उन अभ्यार्थियों की संख्या तो बढ़ गई जिनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी थी किन्तु भारतीयों को तो अंग्रेज़ी जैसी विदेशी भाषा में निष्णात होकर प्रतियोगिता में उतरने के लिए वर्षों के अध्ययन की आवश्यकता थी। इसलिए भारतीय सिविल सर्विस की प्रतियोगिता के लिए अभ्यार्थियों की न्यूनतम आयु **21** से घटाकर **19** करने से भारतीय अभ्यार्थियों के चयन की सम्भावना पहले से भी कम हो गई। भारतीय राजनीतिज्ञों तथा भारतीय प्रेस ने लिटन के इस निर्णय की कटु आलोचना की।

सत्येंद्रनाथ टैगोर. इण्डियन सिविल सर्विस में चुने गए पहले भारतीय थे। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी को उनके राजनीतिक विचारों के कारण इण्डियन सिविल सर्विस के लिए अयोग्य ठहरा दिया गया था। इण्डियन सिविल सर्विस में भारतीयों को अत्यधिक सीमित स्थान दिए जाने के दो मुख्य कारण थे -

1. उच्च पदों पर वेतन बहुत अधिक था अतः रंगभेद व जातिभेद में विश्वास करने वाली ब्रिटिश सरकार इनको अंग्रेज़ों के लिए ही सुरक्षित रखना चाहती थी।

2. अंग्रेज़ों को भारतीयों की योग्यता, ईमानदारी और स्वामिभक्ति पर पूरा भरोसा नहीं था अतः इतने ज़िम्मेदारी के पदों पर भारतीयों की नियुक्ति करने में उन्हें संकोच था।

नरमपंथियों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के तुरन्त बाद यह मांग रखी कि उच्च सेवाओं का भारतीयकरण किया जाए अर्थात् अधिक से अधिक उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति हो और इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा के लिए न्यूनतम आयु में वृद्धि की जाए तथा उसकी परीक्षा को भारत में भी कराया जाए। किन्तु **1947** तक भी इसमें भारतीयों की कुल हिस्सेदारी अंग्रेज़ों की तुलना में बहुत कम थी। इण्डियन सिविल सर्विस विश्व की सबसे अधिक विकसित और सक्षम प्रशासनिक सेवाओं में एक थी परन्तु राजसी वैभव का जीवन बिताने वाले इसके सदस्य भारतीयों के हितों के प्रति प्रायः उदासीन और राजनीतिक दमन के पक्षधर थे।

12.3.8 गवर्नर जनरल

1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत की सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्थापित किया गया और गवर्नर जनरल व गवर्नरों की कार्यकारिणी का गठन हुआ। वारेन हेस्टिंग्स बंगाल का पहला गवर्नर जनरल बनाया गया। इस एक्ट में गवर्नर जनरल की शक्तियां सीमित थीं। उसका अपनी कार्यकारिणी तथा अन्य प्रान्तों की सरकारों पर कोई खास नियन्त्रण नहीं था। **1784** के पिट्स इण्डिया एक्ट तथा **1886** के पूरक एक्ट में गवर्नर जनरल के अधिकारों तथा कर्तव्यों को बढ़ाया गया। **1833** के चार्टर एक्ट में शक्ति का केन्द्रीयकरण करने के उद्देश्य से बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रास की सरकारों से कानून बनाने का अधिकार तक छीन लिया गया और यह दायित्व गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के विधि सदस्य को सौंपा गया। अगस्त, **1858** में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर भारत को ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया और गवर्नर जनरल को भारत के सर्वोच्च प्रशासक का कार्य करने के साथ-साथ वाइसराय (ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि) की भूमिका निभाने का दायित्व भी सौंप दिया गया। **1861, 1892** तथा **1909** के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में भारतीयों को किंचित राजनीतिक एवं संवैधानिक सुधार दिए जाने के बाद भी भारतीय प्रशासन पर गवर्नर जनरल की पकड़ मज़बूत बनी रही। **1919** के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में केन्द्रीय विधान सभा का विस्तार किया गया परन्तु केन्दीय विधान मण्डल को गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारी परिषद को संचालित अथवा नियन्त्रित करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया। गवर्नर जनरल को महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लेने का अधिकार था और उसकी शक्ति इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री और संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति से भी अधिक थी। **1935** के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई जिसमें गवर्नर जनरल को रक्षा, विदेश, संचार और धार्मिक मामलों के शासन का दायित्व दिया गया। रिज़र्व बैंक, मुद्रा, भारतीय ऋण, रेलवे बोर्ड, ब्रिटिश भारतीय सेना आदि पर भी केन्द्रीय विधान परिषद का कोई अधिकार नहीं रखा गया। गवर्नर जनरल की सम्मति के बिना कोई वित्तीय बिल केन्द्रीय विधान

परिषद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। गवर्नर जनरल को भारत सचिव की निगरानी में अत्यधिक सर्टिफ़ाइंग शक्तियां दी गईं।

भारत का गवर्नर जनरल मुगल बादशाहों जैसे शाही ठाठबाट का जीवन बिताता था। अपनी गर्मियां वह शिमला के राजमहल में बिताता था। उसके आवागमन के लिए विशेष रेलगाड़ी की व्यवस्था की गई थी। नई दिल्ली में बने वाइसराय रेज़ीडेन्स की भव्यता के सामने लन्दन का बकिंघम पैलेस एक कुटिया सा लगता है।

लॉर्ड माउन्टबैटन परतन्त्र भारत के अन्तिम व स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल थे और सी**0** राजगोपालाचारी **26** जनवरी**, 1950** से पूर्व तक अर्थात् भारत में गणतन्त्र की स्थापना से पूर्व तक भारत के अन्तिम गवर्नर जनरल थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. अंधविश्वास

2. शुद्धि आन्दोलन

3. सिविल सेवा

12.4 सारांश

14 वीं शताब्दी से **17** वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में विकसित सांस्कृतिक आन्दोलन को हम पुनर्जागरण कहते हैं। पुनर्जागरण में विज्ञान, कला, शिक्षा तथा राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण अथवा नवजागरण **19** वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, साहित्यिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जागृति के रूप में अभिव्यक्त हुआ।

ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र, प्रेत-विद्या, जादू, टौना, गण्डा, ताबीज़, मन्नत, बलि प्रथा, काला जादू, मूठ, शुभ-अशुभ का भेद, शगुन, असगुन आदि अनगिनत अंधविश्वास मानव जीवन को प्रभावित करते आए हैं। भारतीय पुनर्जागरण काल में सुधारकों, ईसाई मिशनरियों तथा उदार ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीयों में फैले अंधविश्वासों के विरुद्ध अभियान छेड़ा। शिक्षा-प्रसार को अंध-विश्वास उन्मूलन के लिए आवश्यक शर्त माना गया।

थियोसोफ़िस्ट ब्रह्माण्ड के रहस्यों की खोज करता है तथा ब्रह्माण्ड, प्रकृति एवं मनुष्य के मध्य अटूट बन्धन को समझने का प्रयास करता है। थियोसोफ़िस्ट का परम लक्ष्य ज्ञानोदय (परम सत्ता का ज्ञान) तथा मोक्ष है। थियोसोफ़िकल सोसायटी की विचारधारा वेदो, उपनिषदों तथा बौद्ध साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित थी। इसने हिन्दुओं को अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर गर्व करने का संदेश दिया।

आर्य समाज ने वैदिक धर्म पर प्रहार करने वालों के प्रति आक्रामक रूप धारण किया। जिन हिन्दुओं ने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया था, उनके लिए अपने धर्म में वापस लौटने का मार्ग शुद्धि आन्दोलन के द्वारा खोल दिया गया।

देवदासी किसी मन्दिर के आराध्यदेव के साथ प्रतीकात्मक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसके प्रति अपना जीवन समर्पित कर देती थी और नृत्य और संगीत के माध्यम से उसके प्रति अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति करती थी। देवदासी प्रथा धर्म के विकृत रूप और धर्म के नाम पर स्त्री के यौन-शोषण का एक जीवन्त उदाहरण था।

ईसाई मिशनरियों, ब्रिटिश अधिकारियों तथा भारतीय समाज सुधारकों ने देवदासी प्रथा को वेश्यावृत्ति के समतुल्य मानकर इसके उन्मूलन के प्रयास किए। **1988** में सम्पूर्ण भारत में देवदासी प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया।

19 जुलाई, **1854** के 'चार्ल्सवुड डिस्पैच' में 'निस्युन्दन सिद्धान्त' की सीमित उपयोगिता के परिप्रेक्ष्य में उसका परित्याग कर जन-साधारण तक व्यावहारिक शिक्षा के प्रसार की नीति अपनाए जाने की सिफ़ारिश की गई थी। वुड्स डिस्पैच को 'भारतीय शिक्षा के इतिहास का मैग्नाकार्टा' कहा जाता है।

भारतीय नागरिक सेवा को वह फ़ौलादी ढांचा माना जाता है जिसने कि भारत में ब्रिटिश शासन को आगे बढ़ाया और सुदृढ़ किया। लॉर्ड कार्नवालिस ने इंण्डियन सिविल सर्विसेज़ का गठन किया। इण्डियन सिविल सर्विस में भारतीयों को अत्यधिक सीमित स्थान दिए गए। इसके सदस्य भारतीयों के हितों के प्रति प्रायः उदासीन और राजनीतिक दमन के पक्षधर थे।

1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत की सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्थापित किया गया। **1833** के चार्टर एक्ट में शक्ति का केन्द्रीयकरण करने के उद्देश्य से बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया। **1858** में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर भारत को ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया और गवर्नर जनरल को भारत के सर्वोच्च प्रशासक का कार्य करने के साथ-साथ वाइसराय (ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि) की भूमिका निभाने का दायित्व भी सौंप दिया गया। सी**0** राजगोपालाचारी भारत के अन्तिम गवर्नर जनरल थे।

12.5 पारिभाषिक शब्दावली

लोक-कल्याणकारी शासन - जनता के कल्याण के प्रति समपर्पित शासन

थियोसोफ़िस्ट - दिव्य ज्ञान का अन्वेषक

मूठ - अपने शत्रु को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किए जाने वाले काले जादू का एक प्रकार।

सादिर - भरत नाट्यम्

डिस्पैच - खरीता

वाइसराय - ताज का प्रतिनिधि

12.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए **12.3.2** अंधविश्वास।

2. देखिए **12.3.4** शुद्धि आन्दोलन।

3. देखिए **12.3.7** सिविल सेवा।

12.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

मर्सी, विसकाउंट - दि वाइसरायज़ एण्ड गवर्नर जनरल्ज़ ऑफ़ इण्डिया, **1757-1947**, लन्दन, **1949**

रॉय, एन**0** सी**0** - दि सिविल सर्विस इन इण्डिया, कलकत्ता, **1960**

नायक, जे**0** पी**0**, नूरुल्ला, एस**0** - ए स्टूडेन्ट्स हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन इण्डिया **1800-1973**, मद्रास, **1992**

दत्त, के**0** के**0** सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, **1975**

मजूमदार, आर**0** सी**0** (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, भाग दो, बम्बई, **1965**

कुमार, रविन्दरः एसेज़ इन दि सोशल हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया, दिल्ली, **1983**

12.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

देसाई, नीरा - वोमैन इन मॉडर्न इण्डिया, बम्बई, **1957**

रे, भारती (सम्पादक) - एसेज़ ऑन इण्डियन वीमेन, दिल्ली, **1995**

शुक्ल, रामलखन (सम्पादक) - आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्ली, **2003**

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

भारत के आधुनिकीकरण में भारतीय पुनर्जागरण के योगदान का आकलन कीजिए।

इकाई तेरह

वॉयसराय, गदर परतन्त्रता, उदारवादी, गरमपन्थी, स्वराज्य, धन का निष्कासन, अग्रगामी नीति, हण्टर कमीशन।

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 वायसराय

13.4 गदर

13.4.1 उपलब्धियाँ और असफलताएँ

13.4.2 कमजोरियाँ

13.5 निर्भरता

13.6 नरमदली

13.7 भारत में अंग्रेजी राज के आर्थिक परिणामों का मूल्यांकन

13.8 गरमदली

13.8.1 गरमदली राजनीति के उभार के कारण

13.8.2 गरमदली राजनीति का मूल्यांकन

13.8 स्वराज

13.9 धन निकासी (Drain of Wealth)

13.9.1 धन निकासी के विभिन्न तत्व

13.9.1.1 विदेशी बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी कम्पनियाँ

13.9.1.2 विदेशी पूंजी निवेशों पर ब्याज

13.9.2 धन निकासी का प्रभाव

13.10 फारवर्ड पॉलिसी

13.11 हन्टर आयोग

13.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

वर्तमान अध्ययन इकाई में उन अवधारणाओं और विचारों की चर्चा की जाएगी जो किसी खास विषय वस्तु की सामान्य जानकारी के लिहाज से तो महत्वपूर्ण हैं ही, इतिहास और समाज को समझने के लिए जरूरी सैद्धान्तिक रूपरेखा विकसित करने में भी मददगार हैं।

अध्ययन इकाइयों के पुराने खन्डों के अध्ययन से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो चुके छात्रों के लिए भी वर्तमान अध्ययन इकाइयों से अपने ज्ञान को मांजने का एक और मौका मिलेगा। हम चर्चा के दौरान वर्तमान इकाई के लिए तय शब्दावलियों के अर्थ और उनके सन्दर्भ पर प्रकाश डालेंगे।

हमारी कोशिश का मकसद सीमित शब्दों में किसी अवधारणा को स्पष्ट करना है, ताकि उस शब्दावली के सार तत्व को समझते हुए आप उसे आत्मसात कर सकें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- वायसराय, फारवर्ड पॉलिसी, निर्भरता, स्वराज, हंटर आयोग जैसी शब्दावलियों का अर्थ और सन्दर्भ समझेंगे
- गदर आन्दोलन की गतिविधियों और उसके महत्व को समझेंगे
- राष्ट्रीय आन्दोलन में नरमदल और गरमदल की विचारधाराओं, उनके तरीकों और योगदान के ऐतिहासिक सन्दर्भ को जानेंगे
- धन निकासी के अर्थ और उसके मूल तत्वों को जानेंगे

13.3 वायसराय

वायसराय वह शाही अधिकारी है जो सम्राट के नाम पर या उसके प्रतिनिधि के बतौर किसी देश या उपनिवेश का शासन चलाता है। यह शब्द लैटिन उपसर्ग वाइस, जिसका अर्थ ''के स्थान पर'' और फ्रेन्च शब्द रोइ, यानी सम्राट के योग से बना है। फ्रान्सिस्को द अल्मीड़ा पुर्तगाली भारत का पहला वायसराय था।

आधुनिक भारतीय इतिहास में वायसराय शब्द 1858 में गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया एक्ट के लागू होने के बाद प्रचलन में आया। 1858 में इस एक्ट के लागू होने से 1947 में भारत के आजाद होने तक, अंग्रेज सम्राट का सबसे महत्वपूर्ण प्रतिनिधि और अधिकारी ''वायसराय और भारत का गवर्नर जनरल'' कहलाता था। वायसराय की नियुक्ति ब्रिटेन का सम्राट करता था, और बर्तानवी साम्राज्य का प्रशासन करना व नाममात्र के आजाद भारतीय रजवाड़ों से जुड़े मसलों को निपटाना उसकी जिम्मेदारी होती थी। वायसराय लंदन के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के प्रति जवाबदेह था। एक समूचे उपमहाद्वीप के प्रशासन और ब्रिटिश इन्डियन सेना के रूप में एक विशाल सेना का नियन्त्रण करने वाले वायसराय की

शख्सियत काफी बड़ी हो जाया करती थी। वह भारत में अंग्रेजी राज का प्रतीक होने के कारण अनेक सार्वजनिक समारोहों में शामिल होने के अलावा देश के राजनीतिक मामलों को निपटाया करता था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

प्रश्न 1. भारत में अंग्रेजी राज का पहला 'वायसराय' कौन था?

प्रश्न 2. किस कानून के जरिए भारत में वायसराय का पद सृजित किया गया था?

13.4 गदर

गदर उर्दू/पंजाबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'विद्रोह'। संगठन के नाम को उसके सदस्य मुख्यतया ''गदर पार्टी'' या 'गद्र पार्टी'' लिखा करते थे। गदर क्रान्तिकारियों का सामाजिक स्रोत मुख्यतया उत्तरी अमरीका में बसे पंजाबी आप्रवासी थे। अपनी दशा सुधारने और नस्लवादी व उत्पीड़क अंग्रेज सरकार से भारत को आजाद कराने के मकसद से उन्होंने गदर संगठन का गठन किया था। संगठन के इस मकसद में एक केन्द्रीकृत संगठन और प्रभावशाली नेता की कमी थी, जो भारत से निर्वासित लाला हरदयाल के उनके बीच शामिल हो जाने से पूरी हो गई थी। मई 1913 में, पोर्टलैन्ड में, उन्होंने हिन्दी एसोशिएशन की स्थापना की थी, बाद में, (1 नवम्बर 1913, सेन फ्रान्सिस्को में) जिसका नाम बदलकर हिन्दुस्तान गदर पार्टी कर दिया गया था। इस संगठन की पहली बैठक में सोहन सिंह भकना अध्यक्ष, लाला हरदयाल महासचिव और पंडित कांशीराम मरोली कोषाध्यक्ष चुने गए थे। इस बैठक में युगान्तर आश्रम नाम से एक मुख्यालय बनाने और मुफ्त वितरण के लिए एक साप्ताहिक अखबार गदर को प्रकाशित करने का फैसला किया गया था।

गदर साप्ताहिक का पहला अंक 1 नवम्बर 1913 में सैन फ्रांसिस्को से निकला था। पार्टी द्वारा यह अंक 1857 के विद्रोह की स्मृति में प्रकाशित किया गया था। गदर के पहले अंक में यह घोषणा छपी थी- ''आज विदेशी भूमि पर गदर शुरू हो रहा है, लेकिन यह अपनी मादरे जबान में अंग्रेजी राज के खिलाफ जंग की शुरुआत है। हमारा नाम क्या है? गदर। हमारा काम क्या है? गदर। क्रान्ति कहाँ होगी? भारत में। वह वक्त भी जल्द आएगा जब कलम और स्याही की जगह खून और बन्दूक बोलेगी।''

अपने मुखपृष्ठ पर ''अंग्रेजी राज का दुश्मन'' नारा प्रकाशित करने वाले अखबार में घोषित किया जाता था, ''चाहिए जाँबाज सिपाही, भारत में विद्रोह की आग सुलगाने के लिए। पगार-मौत; कीमत- शहादत; पेंशन- आजादी; युद्धभूमि- भारत''। पार्टी का वैचारिक मिजाज धर्मनिरपेक्ष था। वे देशभक्ति से लबरेज थे, और औपनिवेशिक शासन के उत्पीड़न से भारत को आजाद कराने की उत्कट इच्छा रखते थे। पार्टी द्वारा एक संस्था, युगान्तर आश्रम बनाई गई थी, जिसका मकसद युवा भारतीयों में देशभक्ति जगाना और भारत के विद्रोह के लिए प्रशिक्षित करना था। गदर के हर अंक में

अंग्रेजी राज का कच्चा चिट्ठा प्रकाशित किया जाता था, जिससे औपनिवेशिक राज के दुष्परिणामों से पाठक परिचित हुआ करते थे।

उन्हें विश्वास था कि अंग्रेजी राज का खात्मा सशस्त्र विद्रोह के जरिए संभव है, इसलिए भारतीय आप्रवासियों को बड़ी संख्या में भारत जाने और जनता व सेना के सिपाहियों के बीच वैचारिक प्रचार संगठित करने की जरूरत है। वे यह जानते थे कि जब तक अपने देश में आजादी हासिल नहीं होती, विदेशों में बसे भारतीयों के साथ समानता का सलूक नहीं किया जाएगा।

गदर का वितरण न सिर्फ उत्तरी अमरीका के भारतीय आप्रवासियों के बीच काफी ज्यादा होता था, हांगकांग, फिलीपीन्स, सिंगापुर, चीन, मलेशिया, ट्रिनिडाड, होन्डुरास और अन्य जगहों पर भी उसका वितरण काफी बढ़ चुका था। गदर में प्रकाशित कविताओं के एक संकलन को गदर की गूंज नाम से प्रकाशित किया गया था, जिसमें संकलित गीत भारतीय सभाओं में खूब गाए जाते थे।

प्रथम विश्व युद्ध के आगाज़ के साथ लाला हरदयाल और उनके कुछ साथी जर्मनी पहुँच गए, और उन्होंने बर्लिन में भारतीय इन्डिपेन्डेन्स कमेटी की स्थापना की। कमेटी ने भारतीय सेनाओं में विद्रोह संगठित करने के लिए कार्यकर्ताओं को भारत रवाना करने, भारतीय क्रान्तिकारियों को विस्फोटक मुहैया कराने और औपनिवेशिक शासन से आजादी के लिए भारत की अंग्रेजी सरकार पर धावा बोलने जैसी योजनाएँ भी बनाई थीं।

कामागाटा मारू कान्ड के बाद पंजाब में स्थितियाँ विस्फोटक हो गई थीं। कनाड़ा सरकार ने ''सीधी जहाज यात्रा'' के बगैर आए लोगों का कनाड़ा मे प्रवेश प्रतिबन्धित कर दिया था, इस नियम को चुनौती देते हुए एक भारतीय ठेकेदार गुरदीत सिंह कामागाटा मारू नामक जहाज को किराए पर लेकर 400 यात्रियों के साथ वैंकूवर के लिए रवाना हो गया। कनाडाई अधिकारियों ने उस जहाज को अपने यहाँ प्रवेश नहीं करने दिया, और मजबूर होकर जहाज वापस कलकत्ता लौट आया। अनेक भारतीय महसूस करते थे कि कनाड़ा सरकार की यह कार्यवाही अंग्रेजों के दबाव में की गई है। यही नहीं, अंग्रेजों के आक्रामक रवैए के कारण जहाज के कलकत्ता पहुँचने पर यात्रियों की सैनिकों के साथ झड़प हो गई, जिसमें कई यात्री मारे गए थे।

13.4.1 उपलब्धियाँ और असफलताएँ

गदर आन्दोलन को राष्ट्रवाद की विचारधारा, खासकर उपनिवेशवाद की राष्ट्रवादी आलोचना को लोकप्रिय बनाने में खासी कामयाबी हासिल हुई थी। नतीजतन, भारत और विदेशों में बसे भारतीयों के बीच यह धारणा व्यापक तौर पर फैल गई थी कि भारतीय गरीबी व पिछड़ापन औपनिवेशिक राज का परिणाम है। गदर की विचारधारा समतामूलक और लोकतान्त्रिक तत्वों के लिहाज से बेहद मजबूत थी। उसका धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण काफी मजबूत था। सोहन सिंह भकना ने कहा था, ''हम सिख और पंजाबी नहीं हैं, हमारा धर्म देशभक्ति है।''

13.4.2 कमजोरियाँ

आन्दोलन की अपनी तैयारियों का उसका मूल्यांकन अतिरंजित था। उनका यह निष्कर्ष भी गलत था कि भारत में अधिकांश जनता अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह के लिए तैयार है। उनका यह भरोसा और भी भ्रामक था कि भारत में क्रान्ति की परिपक्व परिस्थितियाँ सिर्फ विद्रोह के आह्वान का इन्तजार कर रही हैं।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः

सही या गलत का निशान लगायें

क. गदर पार्टी का गठन न्यूयार्क में किया गया था।

ख. गदर साप्ताहिक का पहला अंक उर्दू में निकला था।

ग. कामागाटा मारू घटना गदर आन्दोलन से जुड़ी है।

घ. लाला हरदयाल गदर पार्टी के सदस्य नहीं थे।

13.5 निर्भरता

निर्भरता से हमारा मतलब अपनी घरेलू और विदेशी नीतियाँ निर्मित करने और उन्हें संचालित करने के मामले में किसी देश का स्वतन्त्र न होना है। औपनिवेशिक शासन के कारण नीतियों के मामले में भारत को अंग्रेजों पर निर्भर बना दिया गया था, जिसके कारण अंग्रेज तमाम क्षेत्रों में भारत की गतिविधियों को पूर्णतया नियन्त्रित करते थे। इस सन्दर्भ में दादाभाई नौरोजी का कथन प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार अंग्रेज भारत का धन ब्रिटेन की ओर बहा रहे हैं और इस तरह ''खून चूसकर भारत को स्याह कर चुके हैं''। औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियाँ अंग्रेजों को फायदा पहुँचा रही थीं, जबकि भारत आर्थिक तौर पर गरीब और पिछड़ा बनता जा रहा था।

उपनिवेश के राजनीतिक व प्रशासनिक ढांचे में भारत के लोगों को अपने मामलों को संचालित करने की राजनीतिक आजादी और अधिकार उपलब्ध न थे। भारतीय हित अंग्रेज-हितों के अधीन किए जा चुके थे।

विदेश नीति के क्षेत्र में सभी निर्णय औपनिवेशिक सरकार द्वारा किए जाते थे। वे अपना हित साधते हुए बर्तानवी साम्राज्य के भारतीय उपनिवेश के विदेशी सम्बन्धों को तय करते थे, और इस मामले में भारतीयों के किसी हस्तक्षेप की इजाजत न थी। यही नहीं, भारतीय रजवाड़ों के आपसी रिश्तों का संचालन भी उनके नियन्त्रण में था।

सामाजिक मामलों में अंग्रेज भारतीय समाज के विभिन्न सामाजिक और धार्मिक रीतिरिवाजों पर हमलावर रवैया रखते थे। वे भारतीय समाज के अन्धविश्वासों और पिछड़ी मान्यताओं की आलोचना करते थे। इन विषयों में उन्होंने कई कानून भी पारित किए थे।

सांस्कृतिक तौर पर उन्होंने खुद को एक ऐसी बेहतर नस्ल के बतौर पेश करने की कोशिश की थी, जिसे विधाता ने मानो बर्बर बाशिन्दों पर राज करने के लिए ही गढ़ा था। देशी बाशिन्दों को बर्बर और 'स्त्रैण' और खुद को 'सभ्य' और

'मर्दाना' बताने वाले उनके धूर्त प्रचार का मकसद देशी बाशिन्दों पर मनोवैज्ञानिक प्रभुत्व कायम करना था, ताकि वे अपना अनैतिक राज कायम रख सकें।

इस तरह, आजादी की बनिस्पत निर्भरता किसी राष्ट्र, जनता या नस्ल पर पराए देश के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व में बदल जाती है। यही नहीं, राजनीति और अर्थव्यवस्था पर पराया नियन्त्रण देशी जनता की प्रशासनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी निर्भरता का औजार बन जाता है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. भारतीयों ने औपनिवेशिक शासन के दौर में अंग्रेजी प्रभुत्व झेला था।

ख. 'गोरों पर सभ्यता का बोझ' की अवधारणा औपनिवेशिक शासन को सही ठहराने के लिए गढ़ी गई थी।

ग. दादाभाई नौरोजी ने कहा था कि अंग्रेजी शासन 'खून चूसकर भारत को स्याह कर चुका है'।

घ. भारतीयों को सभ्य और अंग्रेजों को बर्बर बताया जाता था।

13.6 नरमदली

नरमदलियों को ''भारतीय उदारपंथी'' भी कहा जाता था। नरमदलियों ने ही 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शुरुआत की थी, और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पहले दौर में उनका काफी दबदबा था। वे अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की राजनीति में भरोसा करते थे, वे अंग्रेज शासन की न्यायप्रियता के स्वाभाविक समर्थक थे और अंग्रेजों द्वारा तय ढाँचे में हासिल स्वराज का सपना देखते थे। वे संविधानवाद और क्रमिकतावाद की नीतियों के पक्के समर्थक थे। आलोचक उनकी नीतियों को ''प्रार्थनावृत्ति'' और स्वयं उनको जमीन से कटा बुद्धिजीवी कहते थे।

नरमदलियों की महत्वपूर्ण माँगें:

- भारतीय सिविल सेवा की परीक्षाओं को भारत और विदेश में एक साथ आयाजित किया जाए
- कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग किया जाए
- प्रान्तीय काउन्सिलों का गठन किया जाए
- सैन्य खर्चों में कटौती की जाए
- आर्म्स एक्ट वापस लिया जाए
- भारत की काउन्सिल को या तो भंग करें या पुनर्गठित करें
- भारत के अन्य हिस्सों में भी स्थाई बन्दोबस्ती की जाय
- विदेशों में गए गिरमिटिया मजदूरों के लिए कल्याणकारी कदम उठाएँ

उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीय नियन्त्रण की मांग की थी, और अमरीकी स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान उठे नारे को दोहराते हुए कहा था, ''प्रतिनिधित्व नहीं, तो टैक्स नहीं''। उन्होंने भारतीयों के लिए कनाड़ा और आस्ट्रेलिया के स्वायत्त उपनिवेशों की तर्ज पर औपनिवेशिक साम्राज्य के ढाँचे के भीतर स्वराज की माँग उठाई थी। 1905 के बनारस सम्मेलन में पहले गोपाल कृष्ण गोखले और उसके बाद 1906 के कलकत्ता सम्मेलन में दादा भाई नौरोजी ने इस माँग को उठाया था।

13.7 भारत में अंग्रेजी राज के आर्थिक परिणामों का मूल्यांकन

नरमदली नेताओं ने भारत की गरीबी और आर्थिक पिछड़ेपन को उजागर किया और जोरदार तर्को के साथ साबित किया कि देश की यह बदहाली मुख्यतया अंग्रेजों द्वारा भारतीय संसाधनों के दोहन का नतीजा है। दादाभाई नौरोजी, आर.सी. दत्त, वाचा जैसे नेताओं द्वारा प्रवर्तित धन निकासी के सिद्धान्त ने औपनिवेशिक राज को भारत का ''हितैषी'' बताने वाले दावों का दम निकाल दिया था।

आर्थिक क्षेत्र में उनके द्वारा उठाई जाने वाली माँगें इस प्रकार थीं-

- भू-राजस्व में कमी की जाए, ताकि किसानों पर कर का बोझ कम हो सके
- भारत से धन निकासी बन्द की जाए
- नमक कर खत्म किया जाए
- भारत सरकार के भारी सैन्य-खर्चों में कटौती की जाए

सेना और सिविल सेवाओं पर किए जाने वाले खर्चे पर सवाल उठाकर वे अप्रत्यक्ष तौर पर भारत में अंग्रेजी राज के आधार पर चोट कर रहे थे। भारत में अंग्रेजी प्रशासन को कमजोर करने की उनकी ख्वाहिश उनकी भू राजस्व और करारोपण विरोधी माँगों में भी झलकती है।

नरमपंथियों का एक मूल्यांकन

- उनके कार्यक्रम की व्यापकता विविध हितों को समावेशित करती थी
- उपनिवेशवाद की उनकी आर्थिक आलोचना भारतीय गरीबी का वैज्ञानिक विश्लेषण पेश करती थी।
- उन्होंने विकृत और शोषक औपनिवेशिक राज के खिलाफ संगठित आन्दोलन की नींव डाल दी थी।
- उपनिवेशवाद की उनकी आर्थिक आलोचना भावी स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. दादाभाई नौरोजी ने 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में स्वराज की मांग उठाई थी।

ख. नरमपंथी अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की नीति में भरोसा करते थे।

ग. दादाभाई नौरोजी पॉवर्टी एन्ड अनब्रिटिश रूल इन इन्डिया किताब के लेखक हैं।

घ. गोपाल कृष्ण गोखले ने 1905 में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

13.8 गरमदली

भारतीय राजनीति में गरमदली धड़े का उदय नरमदलियों की अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की राजनीति से बढ़ते मोहभंग का नतीजा था। अंग्रेजी राज की न्यायप्रियता पर नरमदलियों के विश्वास और उनकी ''प्रार्थनावृत्ति'' की तीखी आलोचना गरमदली किया करते थे। उनमें स्वाभिमान का भाव काफी गहरा था और वे सर उठा कर चलने की इच्छा रखते थे, इसलिए नरमदलियों का वे विरोध करते थे जिनमें उन्हें अंग्रेजों के प्रति समर्पण और सम्मान का भाव दिखाई देता था। गरमदली राजनीति के तीन गुट थे, बंगाल गुट का नेतृत्व बिपिन चन्द्र पाल और अरबिन्दो करते थे, जबकि महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, और पंजाब में इस राजनीति का नेतृत्व लाला लाजपत राय कर रहे थे।

13.8.1 गरमदली राजनीति के उभार के कारण

औपनिवेशिक राज के असली चरित्र का एहसासः दादाभाई नौरोजी ने औपनिवेशिक राज के शोषक चरित्र को उजागर करते हुए अकाट्य तौर पर साबित कर दिया था कि ब्रिटेन को होने वाली भारतीय धन की निकासी ही भारत की बदहाली और गरीबी का मूल कारण है। पश्चिमीकरण के विस्तार के खिलाफ प्रतिक्रियाः बंकिम चन्द्र, विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द का लेखन उन्हें प्रेरित कर रहा था। वे भारत की आध्यात्मिक धरोहर से भी प्रेरणा हासिल कर रहे थे। भारत के बदतर आर्थिक हालातः भयानक अकाल, करों के भारी बोझ औरसरकारी असंवेदनशीलता के कारण औपनिवेशिक राज के खिलाफ असन्तोष गहरा होता जा रहा था।तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभावः अबीसीनिया द्वारा इटली की सेना को पीछे धकेल देना (1896) और जापान की रूस पर विजय (1905) जैसी घटनाओं ने यूरोप की अजेयता की धारणा को झकझोर दिया था। इन घटनाओं से भारतीय राष्ट्रवादियों में आत्मविश्वास और प्रेरणा का संचार हुआ था। कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ उसके कार्यकाल में उठाए गए विभिन्न कदम भारतीयों में गहरा असन्तोष पैदा कर रहे थे। भारतीयों के चरित्र पर उसकी ओछी टिप्पणियाँ और 1889-1900 के भयानक अकाल की काली छाया से उबरने के पहले 1903 में उसके द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार ने आग में घी डालने का काम किया था। बंगाल का विभाजनः 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा औपनिवेशिक प्रशासन की सबसे बदतर राजनीतिक पहल थी। इस कदम ने बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन की लहर पैदा कर दी थी।

गरमदली राजनीति के कार्यक्रम में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, स्वदेशी उत्पादों का इस्तेमाल, राष्ट्रीय शिक्षा पर जोर और सत्याग्रह की वकालत जैसी बातें शामिल थीं। स्वदेशी और बहिष्कार का उद्देश्य भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देना

और भारतीय लोगों को काम व रोजगार के अधिक अवसर मुहैह्या कराना था। इसी दौर में कलकत्ता में बंगाल नेशलन कॉलेज स्थापित किया गया था। मद्रास में पचैयप्पा नेशनल कॉलेज शुरू किया गया था। पंजाब में डीएवी आन्दोलन शिक्षा के क्षेत्र में काफी सफल रहा था। राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार करने के लिए शुरू किए गए थे।

13.8.2 गरमदली राजनीति का मूल्यांकन

गरमदली नेता लोकतन्त्र, संविधानवाद की वकालत करते थे और अपनी राजनीति के जरिए राष्ट्रीय आन्दोलन के सामाजिक आधार को व्यापक बनाना चाहते थे। उन्होंने देशी भाषाओं में अखबार प्रकाशित किए ताकि वे एक व्यापक पाठकवर्ग तक अपनी पहुँच बना सकें। वे भारत में अंग्रेजी राज के नकारात्मक प्रभावों से पूरी तरह वाकिफ थे और उनका पर्दाफाश किया करते थे हालाँकि, सामाजिक सुधार के क्षेत्र में गरमदली नेता पुनरुत्थानवादी और रूढ़िवादी थे। विवाह के लिए लड़कियों की उम्र को 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष करने वाले एज ऑफ कन्सेन्ट बिल के प्रति तिलक का विरोध, गोहत्या-विरोधी संगठनों से उनके सम्बन्ध और उनके द्वारा गणेश उत्सव (1893) व शिवाजी उत्सव (1895) की शुरुआत उनके कट्टर हिन्दू व हिन्दू राष्ट्रवादी चेहरे को उजागर करते हैं। लाला लाजपत राय और बिपिनचन्द्र पाल भी हिन्दू राष्ट्र और राजनीतिक स्तर पर हिन्दू हित-रक्षा की जरूरत पर बल देते थे। भले ही गरमदली राजनीति के पुनरुत्थानवादी कदम मुख्यतया औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लक्षित रहे हों, इसमें शक नहीं कि वे धर्म और राजनीति के नुकसानदेह घालमेल को पनपाने व साम्प्रदायिकता और मुस्लिम अलगाववाद को हवा देने में मददगार थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. लाला लाजपत राय-बाल गंगाधर तिलक-बिपिन चन्द्र पाल कांग्रेस के नरमदली खेमे के महत्वपूर्ण नेता थे।

ख. गरमदली अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की राजनीति में यकीन करते थे

ग. बालगंगाधर तिलक ने गणपति उत्सव और शिवाजी उत्सव की शुरुआत की थी

घ. लार्ड लिटन ने दो हिस्सों में बंगाल को बाँट दिया था

13.8 स्वराज

नरमदली नेताओं का स्वराज अंग्रेजी साम्राज्य के ढाँचे के अन्दर महज औपनिवेशिक स्वशासन की माँग थी। यह ध्यान रखने की बात है कि गरमदली नेताओं का स्वराज हर तरह की विदेशी पाबन्दियों के बगैर राष्ट्र का कामकाज संचालित करने व विदेशी प्रभुत्व से सम्पूर्ण मुक्ति की माँग थी।

गरमदलियों का मुख्य मकसद स्वराज था, लेकिन इसकी व्याख्या हरेक नेता अलग-अलग ढंग से करते थे। तिलक के लिए इसका मतलब प्रशासन पर भारतीय नियन्त्रण था, लेकिन इसके लिए उन्हें ब्रिटेन के साथ सम्पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद

करना जरूरी नहीं लगता था। बिपिन चन्द्र पाल को अंग्रेजों के सर्वोच्च नियन्त्रण के बने रहने तक स्वराज सम्भव नहीं लगता था, यानी उनकी समझ से स्वराज अंग्रेजी राज से पूर्ण मुक्ति के बाद ही संभव था। बंगाल में अरबिन्दो घोष भी स्वराज की व्याख्या पूर्ण मुक्ति के रूप में करते थे। हालाँकि अधिकांश अन्य नेताओं के लिए स्वराज का मतलब अंग्रेजों के औपनिवेशिक ढाँचे के अन्दर स्वशासन हासिल करने से ज्यादा कुछ नहीं था।

गरमदली नेता मानते थे कि अपने घर की चाबी भारतीयों के पास ही रहनी चाहिए, और वे स्वशासन हासिल करने का उद्देश्य रखते थे। तिलक भारतीयों से हथियार उठाने की अपेक्षा नहीं करते थे, बल्कि चाहते थे वे अपने आत्म-त्याग और आत्म-संयम को इस तरह विकसित करें कि किसी विदेशी सत्ता को उनके ऊपर राज चलाने में मदद न मिले। तिलक ने अपने हमवतनों को अपने लिए न्यायालय स्वयं स्थापित करने की सलाह दी थी, और उचित समय पर कर अदायगी बन्द करने के लिए कहा था। तिलक का नारा थाः ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लेकर रहूँगा।''

अरबिन्दो भारत में सरकार की वर्तमान दुर्दशा को पश्चिम के विकृत प्रभाव का नतीजा मानते थे। वे मानते थे कि इस प्रभाव से भारत को मुक्त कराने, और अपनी श्रेष्ठतर सभ्यता में आश्रय लेने के जरिए ही हम इस दुर्दशा से बाहर निकल सकते हैं। राष्ट्रवाद के लिए उन्होंने यह कार्य बताया थाः

क. भारत में स्वराज लाना, ताकि उस बीमार राजनीतिक जीवन का पूर्ण व रैडिकल निदान हो सके, जो उन राजनीतिक और आर्थिक बीमारी के विषाणुओं से ग्रस्त है जो यूरोप को बेजार बना चुके हैं।

ख. इस बात की पक्की गारन्टी करना ताकि भारत में जो स्वराज आए वह स्वदेशी स्वराज हो, न कि यूरोपीय। उनका मत था कि स्वराज आन्दोलन सर्वप्रथम स्वदेशी की उस माँग में परिलक्षित हुआ जो सिर्फ विदेशी वस्तुओं का विरोधी न था, बल्कि विदेशी पसन्द, फैशन, तौर-तरीकों और विदेशी शिक्षा के भी खिलाफ था, और जिसने जनता को अपनी सभ्यता की ओर वापस ले चलने की कोशिश की थी।

अरबिन्दो जोर देकर कहते थे 'राजनीतिक आजादी किसी राष्ट्र की प्राणवायु होती है' और राजनीतिक आजादी को लक्षित किए बगैर हर तरह के सामाजिक व शैक्षिक सुधार, औद्योगिक व जातीय नैतिक विकास इत्यादि की कोशिशें निरर्थक ही नहीं अज्ञानता के भी परिचायक हैं।

लाजपत राय ने कहा था कि आत्मा के अभाव वाला मनुष्य महज पशु होता है और आत्मा के अभाव वाला राष्ट्र 'बेजुबान हाँका गया पशु होता है'। इसलिए स्वराज राष्ट्र की बुनियादी जरूरत है, जिसकी भरपाई सुधार या सुशासन से संभव नहीं है।

महात्मा गाँधी ने 19 मार्च 1931 के यंग इन्डिया में लिखते हुए कहा था कि स्वराज का मतलब आत्म संयम और स्व-राज है, न कि हरेक अनुशासन से मुक्ति, जैसा आम तौर पर आजादी का मतलब मान लिया जाता है। बाद में उन्होंने

यह भी कहा था कि स्वराज का मतलब हरेक द्वारा 'स्वस्थ और सम्मानजनक आजादी' हासिल करना है। यह विदेशी नियन्त्रण से सम्पूर्ण मुक्ति और सम्पूर्ण आर्थिक आजादी होगी। स्वराज सत्य और अहिंसा के जरिए हासिल किया जाएगा।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

1.''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे हासिल करके रहूँगा।''-यह किसका कथन है?

''राजनीतिक आजादी राष्ट्र की प्राण वायु है''- किसने कहा था?

13.9 धन निकासी (Drain of Wealth)

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं और अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारत से ब्रिटेन को होने वाला धन का वह नियमित प्रवाह जिसके बदले भारत को कोई मुनाफा नहीं मिलता, भारतीय ''धन निकासी'' है। धन निकासी के सिद्धान्त के केन्द्रीय तर्क के अनुसार भारत के राष्ट्रीय सकल उत्पाद का एक अंश ब्रिटेन को निर्यात कर दिया जाता है, और इस तरह वह अपने लोगों के उपभोग या देश के पूंजी निर्माण के लिए अनुपलब्ध रहता है। अपने राजनीतिक, औपनिवेशिक, व साम्राज्यवादी हितों को साधने वाली अंग्रेजों की यह नीति ही भारत के पिछड़ेपन का कारण है।

13.9.1 धन निकासी के विभिन्न तत्व

1. होम चार्जेज: ब्रिटेन में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के कार्यनिष्पादन से जुड़े वे खर्चे थे जो भारत के नाम पर किए जाने के कारण उस पर थोप दिए जाते थे। इस मद के मुख्य खर्चे इस प्रकार थे:

क. नागरिक और सैन्य खर्चे: इस मद में भारत में रहने वाले ब्रिटिश नागरिक या सैन्य अधिकारियों के पेंशन और छुट्टी के खर्चे, लंदन स्थित इन्डिया ऑफिस और वार ऑफिस के खर्चे शामिल किए जाते थे।

ख. विदेशों से लिए गए कर्ज का ब्याज: भारत पर कब्जा करने के लिए किए गए युद्धों के लिए ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने

सार्वजनिक कर्ज लिए थे। 1900 तक यह कर्ज 22 करोड़ 40 लाख डालर तक हो चुका था। इस कर्ज का एक हिस्सा सिंचाई साधनों के निर्माण और सार्वजनिक व रेलवे से जुड़े दूसरे निर्माण कार्यों जैसे उत्पादक मदों में खर्च होता था। यह भी गौरतलब है कि ये खर्चे अंग्रेजों द्वारा औपनिवेशिक शासन को अपने लिए सुविधाजनक बनाने की नीयत से किए गए थे।

ग. ईस्ट इन्डिया कम्पनी के शेयरधारकों के बोनस: ये बोनस भी भारतीय राजस्व से दिए जाते थे। 1833 के चार्टर एक्ट के प्रावधान के अनुसार कम्पनी के शेयरधारकों को 6 लाख 30 हजार का वार्षिक बोनस भारतीय राजस्व से निर्गत होता था।

घ. गोदाम के लिए ब्रिटेन में खरीद: सेक्रेटरी ऑफ स्टेट और भारत सरकार सैन्य, नागरिक और नाविक विभागों के गोदामों के लिए सामान ब्रिटेन के बाजार से खरीदा करती थी।

13.9.1.1 विदेशी बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी कम्पनियाँ

बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी सेवाओं के लिए भारत को भारी भुगतान करना पड़ता था। इन विदेशी कम्पनियों की निर्बाध गतिविधियों का इन क्षेत्रों के भारतीय उद्यमों पर नकारात्मक असर भी पड़ता था।

13.9.1.2 विदेशी पूंजी निवेशों पर ब्याज

निजी विदेशी पूंजी को मिलने वाला ब्याज व मुनाफा भी भारत से धन निकासी का अंग था। गौरतलब है कि विदेशी पूंजीपति अपने मुनाफे के लिए भारतीय संसाधनों के दोहन से मुनाफा कमाते थे और देशी पूंजी उद्यमों को हर तरीके अपनाकर बाधित करते थे।

दादाभाई नौरोजी ने बताया था कि भारत से बाहर निकलने वाला धन देश का वह संभावित पूंजी अधिशेष है जिसके उचित निवेश से भारत की आय में काफी बढ़ोत्तरी संभव है। उनके अनुमान के मुताबिक भारत में अंग्रेजी राज की शुरुआत से 1865-66 के अवधि में अंग्रेजों की नीतियों के कारण भारत से 150 करोड़ डालन ब्रिटेन की ओर बह चुके थे। बाद में, 1901 में, आर.सी. दत्त ने अनुमान लगाते हुए बताया कि हर साल 2 करोड़ बीस लाख डालर की राशि ब्रिटेन द्वारा हड़पी जा रही है।

13.9.2 धन निकासी का प्रभाव

इसके कारण भारत में पूंजी निवेश धीमा हो गया, और भारत का औद्योगीकरण बाधित हुआ। दूसरी ओर इस परिघटना ने ब्रिटेन के लिए अनुकूल स्थितियों का निर्माण किया, और औद्योगीकरण की शुरुआत अवस्था में उसको मदद पहुँचाई। यही नहीं, ब्रिटिश पूंजी का वह हिस्सा वित्तीय पूंजी के रूप में भारत लौट आता था और भारत से धन निकासी को और तीव्र करता था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न: सही या गलत का निशान लगायें

क. धन निकासी का सिद्धान्त गरमदली नेताओं द्वारा विकसित किया गया था

ख. होम चार्जेज भारत से होने वाली धन निकासी का अंग हुआ करते थे

ग. धन निकासी प्रक्रिया को दादाभाई नौरोजी भारतीय गरीबी का मुख्य कारण मानते थे।

घ. विदेशी पूंजी निवेश पर लगने वाला ब्याज भारत से होने वाली धन निकासी का अंग था।

क. गलत, ख. सही, ग. सही, घ, सही

13.10 फारवर्ड पॉलिसी

रूस और इंगलैन्ड के बीच हुए क्रीमिया युद्ध के बाद रूस बड़ी तेजी के साथ मध्य एशिया में पसरने लगा। अपना मकसद हासिल करने के लिए रूस अपनी सीमाओं को 1864 तक बोखारा, 1868 तक समरकन्द और 1873 तक खीव तक बढ़ा चुका था। वह रूसी तुर्किस्तान को अपना नया प्रान्त बना चुका था और बोखारा को अपने आधिपत्य में ला चुका था। रूस की इन चालों की प्रति इंगलैन्ड ने दोतरफा रवैया अपनाया। 1863-75 के दरमियान अंग्रेज 'कुशल निष्क्रियता की नीति' पर चलते रहे, जिसका मकसद रूस के साथ कूटनीतिक समझदारी बढ़ाना और अफगानिस्तान को लेकर चौकस अहस्तक्षेप की नीति बनाए रखना था। इस नीति के तहत, भारतीय सीमाओं पर ही रूसी खतरे से निपटने का निर्णय अंग्रेजों ने किया था, क्योंकि अफगानिस्तान पर राजनीतिक प्रभुत्व की कोशिशें जोखिमभरी थीं। इसके अलावा, टकराव के सम्भावित बिन्दुओं से रूस का सैनिक कैम्प दूर था, इसलिए भारतीय सीमाओं पर ही उनसे लड़ने में ज्यादा बुद्धिमानी थी।

रूसियों के प्रति इस ब्रिटिश नीति के विरोधी ही 'फारवर्ड पॉलिसी' के पैरोकार थे, जिन्हें लगता था कि आसन्न रूसी आक्रमण के खतरे का सामना भारत-अफगान सीमा से दूर किया जाना चाहिए, ताकि सीमा के पास तनाव की जद में रहने वाली भारतीय जनसंख्या पर पड़ने वाले खतरों से बचा जा सके। उनकी इस नीति का आशय यही था कि औपनिवेशिक सरकार अग्रिम कूच करके अफगानिस्तान पर अपना वर्चस्व कायम करे व हिन्दुकुश सीमा पर रूसियों की अग्रगति पर रोक लगाए।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. मध्य एशिया में रूसियों की अग्रगति ब्रिटेन के लिए कोई खतरा न थी।

ख. कन्जर्वेटिव पार्टी 'फारवर्ड पॉलिसी' की समर्थक थी।

ग. पहले अफगान युद्ध के दौरान लार्ड लिटन भारत के गवर्नर जनरल थे।

घ. 'फारवर्ड पॉलिसी' इंगलैन्ड और फ्रान्स के सामाजिक रिश्तों से सम्बन्धित थी।

क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत

13.11 हन्टर आयोग

अक्टूबर 1919 में भारत की औपनिवेशिक सरकार ने पंजाब की कार्यवाहियों की जाँच के लिए एक जाँच आयोग गठित किया था। उपद्रवों की जाँच कमेटी का नाम होने के बावजूद इस कमेटी को बाद में आम तौर पर हंटर आयोग के नाम से ही जाना गया है, जो पंजाब के उपद्रवों और जलियाँवाला बाग जनसंहार सम्बन्धी जाँच आयोग के चेयरमैन लार्ड विलियम हंटर के नाम की वजह से हुआ है।

आयोग के सदस्यों के नाम इस प्रकार थेः

- लार्ड हन्टर, आयोग के चेयरमैन
- न्यायमूर्ति जार्ज रैनकिन, कलकत्ता
- डब्ल्यू. एफ. राइस, गृह विभाग के सदस्य
- मेजर जनरल सर जार्ज बैरो
- एच.सी. स्टोक्स, कमीशन के सचिव और गृह विभाग के सदस्य
- थॉमस स्मिथ, संयुक्त प्रान्त की विधान परिषद के सदस्य
- पंडित जगत नरायन, वकील और संयुक्त प्रान्त विधान परिषद के सदस्य
- सर चिमनलाल हरीलाल सेतलवाड़, बॉम्बे विश्वविद्यालय के कुलपति और बॉम्बे उच्च न्यायालय के वकील
- सरदार साहिबजादा सुलतान अहमद खान, ग्वालियर राज के वकील

आयोग एक आधिकारिक कानूनी न्यायालय नहीं था, इसलिए गवाह शपथ लेकर गवाही देने के लिए बाध्य न थे। जनरल डायर ने आयोग के सामने अपने बयान में बताया कि वह भीड़ देखने पर पर गोली चलवाने का पूर्व संकल्प कर चुकने के बाद जलियाँवाला बाग गया था। डायर ने बताया कि उसका मकसद पूरे पंजाब में खौफ पैदा करना और ''विद्रोहियों'' की नैतिक साख को कमजोर करना था। उसने बताया कि भीड़ हटने की शुरुआत देखकर उसने गोली चलवाना बंद नहीं किया, क्योंकि जब तक भीड़ पूरी तरह न हट जाए उन पर गोलियाँ चलवाते रहना वह अपना कर्तव्य समझता था। डायर को सिर्फ यही मलाल था कि उसका गोला बारूद अपर्याप्त था और वह आसपास की सँकरी गलियों के कारण बख्तरबंद गाड़ियाँ वहाँ न ले जा सका था। भीड़ को तितर-बितर करना उसके लिए काफी न था, क्योंकि वह उन्हें एक नैतिक सबक सिखाना चाहता था।

आयोग ने अपनी रपट में कहा थाः

- गोली चलाने के पहले भीड़ को तितर-बितर होने की चेतावनी न देना गलत था।
- डायर द्वारा लोगों को सबक सिखाने का मकसद गलत था
- डायर ने अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया था
- पंजाब में अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने का कोई षड़यन्त्र नहीं किया गया था।

हंटर आयोग ने जनरल डायर पर कोई अनुशासनात्मक या दण्डात्मक कार्यवाही नहीं की। वायसराय की परिषद के कानून और गृह विभाग से जुड़े सदस्यों ने अन्ततः यही फैसला किया कि जनरल डायर का व्यवहार संवेदनहीन और

क्रूर था, लेकिन राजनीतिक कारणों के चलते उन पर सैनिक या कानूनी अभियोग चलाया जाना संभव नहीं है। वैसे भी ब्रिटेन के उच्च सदन द्वारा जनरल डायर के पक्ष में मतदान करने के बाद आयोग की कार्यवाही सिर्फ औपचारिक रह गई थी। यही नहीं, 'मार्निंग पोस्ट' अखबार ने जनरल डायर की सहायतार्थ 30,000 डालर का कोष भी इकट्ठा किया था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. हंटर कमीशन का गठन पंजाब के उपद्रवों और जलियाँवाला बाग जनसंहार की जाँच के लिए किया गया था।

ख. ब्रिटेन के उच्च सदन ने जनरल डायर के समर्थन में अपना मत नहीं दिया था।

ग. जलियाँवाला बाग जनसंहार के समय माइकल ओ डायर पंजाब का राज्यपाल था।

घ. जलियाँवाला बाग जनसंहार साम्राज्य के घमन्ड और प्रभुत्व का एक और उदाहरण था।

13.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

13.4.2 के उत्तर

क. गलत, ख. सही, ग. सही, घ, गलत

13**.5** के उत्तर

क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. गलत।

13**.7** के उत्तर

क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही

13**.8.2 के** उत्तर

क. गलत, ख. गलत, ग. सही, घ. गलत

13**.9.2** के उत्तर

क. गलत, ख. सही, ग. सही, घ, सही

13**.10** के उत्तर

क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत

13**.10** के उत्तर

क. सही, ख. गलत, ग. सही, घ. सही

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चन्द्र, बिपन एवं अन्य (1993), इन्डियाज स्ट्रगल फार इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

चन्द्र, बिपन एवं अन्य (1999), इन्डिया आफ्टर इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

ग्रोवर बी.एल., और ग्रोवर, एस (1998 16वां संस्करण) एन इन्ट्रोडक्शन टु माडर्न इन्डिया, एस चन्द एन्ड कम्पनी, दिल्ली

इग्नू पाठ्य सामग्री, आधुनिक भारतीय इतिहास (1999)

13.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बन्द्योपाध्याय, शेखर, फ्रॉम प्लासी टु पार्टीशनः अ हिस्ट्री ऑफ माडर्न इन्डिया, ओरियन्ट ब्लैकस्वैन, दिल्ली,2004

गान्धी, एम.के., हिन्द स्वराज या इन्डियन होम रूल (1996) नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न1. भारत में ब्रिटिश वायसराय के अधिकार व दायित्व क्या थे।

प्रश्न2. गदर आन्दोलन की उपलब्धियाँ व कमियाँ क्या थीं?

प्रश्न 3. नरमदली नेताओं की माँगों और उनकी उपलब्धियों पर एक टिप्पणी लिखें

प्रश्न 4. गरमदली नेताओं के उभार के कारणों की चर्चा करें

प्रश्न 5. गरमदली नेताओं का मूल्यांकन करें?

इकाई चौदह

स्वदेशी, अनुशीलन समिति, निहिलिस्ट (नकारवादी), क्रान्तिकारी या रैडिकल

14.1 **परिचय**

14.2 **उद्देश्य**

14.3 **स्वदेशी**

14.**3.1 स्वयंसेवकों की समितियाँ और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ**

14.**3.2 एक मूल्यांकन**

14.4 **अनुशीलन समिति**

14.5 **निहिलिस्ट**

14.6 **क्रान्तिकारी या रैडिकल**

14.**6.1 गुप्त समितियाँ**

14.6.**2 क्रान्तिकारी गतिविधियों का दूसरा दौर**

14.**6.3 एचआरए और एचएसआरए की विचारधारात्मक दिशा**

14.**7 बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ**

14.**8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर**

14.9 **निबंधात्मक प्रश्न**

14.1 परिचय

इस इकाई में राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी कुछेक महत्वपूर्ण अवधारणाओं, विचारों व गतिविधियों और स्वतन्त्रता आन्दोलन पर उनके प्रभाव की चर्चा की जाएगी। इसके अलावा, औपनिवेशिक राज के खिलाफ लड़ाई के व्यापक सन्दर्भ में इन धारणाओं ओर गतिविधियों के महत्व से भी आपको परिचित कराने का प्रयास किया जाएगा। आप इन धारणाओं को न सिर्फ समझें बल्कि भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में इन्हें देखने की कोशिश करें।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- स्वदेशी का अर्थ और सन्दर्भ समझने लगेंगे
- यह जानेंगे कि स्वदेशी आन्दोलन का विकास कैसे हुआ, और इसकी राजनीतिक प्रवृत्तियाँ, तरीके, ताकत और कमजोरियाँ क्या थी
- अनुशीलन समिति की विचारधारा और कार्यक्रम क्या था
- भारतीय क्रान्तिकारियों पर रूसी निहिलिस्टों (नकारवादियों) की विचारधारा और आन्दोलन का क्या असर पड़ा था
- राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रान्तिकारी या रैडिकल तेवर से परिचित होंगे

14.3 स्वदेशी

स्वदेशी का अर्थ स्वदेश-विनिर्मित वस्तुओं का इस्तेमाल, उनकी पैरोकारी व स्वदेशी शिक्षा पर जोर देना था। कांग्रेस के दोनों धड़ों, नरमदल और गरमदल के नेता स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल पर जोर देते थे और उनके विचारों की परिणति **1905** में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन शुरू करने में दिखती है। स्वदेशी आन्दोलन का तात्कालिक कारण अंग्रेजों द्वारा बंगाल का बँटवारा करने का निर्णय था। वैसे तो अंग्रेज दावा कर रहे थे कि उनका निर्णय प्रशासनिक कारणों से लिया गया है, क्योंकि इतने बड़े प्रान्त का प्रशासन चलाना दुष्कर हो रहा है। लेकिन विभाजन के ढंग से ही जाहिर हो गया था कि उनका असल मकसद राष्ट्रीय आन्दोलन की बढ़ती ताकत को कमजोर करना था। भारत सरकार के गृह सचिव ने टिप्पणी भी की थी कि एकताबद्ध बंगाल ताकतवर है, और उसका बँटवारा उसे कमजोर कर देगा।

बंगाल का विभाजन इस तरह किया गया था, कि वहाँ बंगाली दो अलग प्रशासनिक इकाइयों में बँटने के अलावा खुदअपने प्रान्त में ही अल्पसंख्यक बना दिए गए थे। बँटवारे के बाद के नए प्रस्तावित प्रान्त में एक करोड़ सत्तर लाख बंगालियों को तीन करोड़ सत्तर लाख उड़िया और हिन्दी भाषी लोगों के साथ जोड़ दिया गया था। इसके अलावा यह विभाजन धर्म के आधार पर किया गया था। खुद कर्जन ने कहा था कि ढाका नए मुस्लिम बहुल प्रान्त की राजधानी होगी (जहाँ एक करोड़ अस्सी लाख मुसलमानों के साथ एक करोड़ बीस लाख हिन्दू होंगे)। **19** जुलाई **1905** के दिन बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी गई। बँटवारे के खिलाफ छोटे कस्बों में लोगों ने अनेक विरोध सभाएं कीं। बाद में, **7** अगस्त **1905** को, टाउन हाल की सभा में स्वदेशी आन्दोलन की औपचारिक घोषणा कर दी गई। उधर, **1** सितम्बर **1905** को सरकार ने भी घोषित कर दिया कि **16** अक्टूबर **1905** को बंगाल-विभाजन अमल में आ जाएगा।

पूरे बंगाल में **16** अक्टूबर **1905** का दिन शोक दिवस घोषित कर दिया गया और उसे अरन्धन (चूल्हाबंदी) के बतौर मनाया गया। भाईचारे और एकता के प्रतीक के बतौर रक्षा बन्धन का कार्यक्रम बंगाल के दोनों हिस्सों में चलाया गया। स्वदेशी इस विरोध आन्दोलन का घोषित मकसद बन गया। अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार के आह्वान से स्वदेशी आन्दोलन की ताकतें मजबूत हो रही थीं। स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देना राष्ट्रीय कर्तव्य समझा जाने लगा। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए आयोजित स्वदेशी मेले चर्चित हो रहे थे। चरखा देश को आत्मनिर्भर बनाने की आम भारतीय ख्वाब का प्रतीक बन गया था।

स्वदेशी या भारतीय उपक्रम स्थापित करने के लिए देश में काफी उत्साह पैदा हो रहा था। अनेक भारतीय उद्यमों की शुरुआत हुई, जिनमें कलकत्ता पॉटरीज, नेशनल टैनरी, बंगाल केमिकल्स, माहिनी मिल्स और बंग लक्ष्मी कॉटन मिल्स शामिल थे। माचिस, साबुन, तेल मिलों इत्यादि सामानों की अनेक उत्पादक इकाइयाँ स्थापित की जा रही थीं। विदेशी वस्तुओं की बड़ी-बड़ी होलियाँ जलाई जा रही थीं।

अंग्रेजी वस्तुओं की दुकानों पर शुरू धरने की कार्यवाही बाद में अंग्रेज-प्रबन्धन वाली शैक्षिक संस्थाओं के बहिष्कार के रूप में आगे बढ़ने लगी। सरकार ने 'कार्लाइल सर्कुलर' जारी करके धरना देने वाले छात्रों को धमकाया, उन्हें कहा गया कि धरना बंद न करने पर अनुदान और वजीफे बन्द हो जाएंगे, और शुल्क दंड व निष्कासन की कार्यवहियाँ की जाएंगी। उधर, स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार के कार्यक्रम ने स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं को बंगाल में समानान्तर शिक्षा की व्यवस्था स्थापित करने पर मजबूर किया। और इस मकसद के लिए संसाधन जुटाए जाने लगे, जिनके परिणामस्वरूप बंगाल टेक्निकल इन्स्टीट्यूट, बंगाल नेशनल कॉलेज और स्कूल व जिलों में अनेक प्राथमिक व माध्यमिक स्कूल अस्तित्व में आए।

14.3.1 स्वयंसेवकों की समितियाँ और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ

स्वदेशी आन्दोलन के दौरान समितियाँ जनगोलबन्दी का एक महत्वपूर्ण जरिया थीं। इनमें स्वदेशी बान्धब समिति, सर्कुलर विरोधी समिति, अनुशीलन समिति जैसी समितियाँ ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थीं। वे स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन के महत्वपूर्ण पहलुओं का प्रचार करती थीं, अकाल और महामारियों के दौरान राहत कार्यों का आयोजन करती थीं, नैतिक और शारीरिक शिक्षा देती थीं, शिल्पकारी और राष्ट्रीय स्कूलों के आयोजन करती थीं, और विवादों के समाधान के लिए पंचायतों का आयोजन किया करती थीं।

वे स्वदेशी विषयों और क्षेत्रीय भाषाओं में लोक गायकों और कलाकारों की प्रस्तुतियाँ को प्रोत्साहित करती थीं। इसके अलावा, जनगोलबन्दी बढ़ाने के लिए पारम्परिक उत्सवों और मेलों का भी इस्तेमाल किया जाता था। स्वदेशी के जन-प्रचार के लिए बंगाल की पारम्परिक लोक नाट्य शैली जात्रा का व्यापक उपयोग हो रहा था। बिपन चन्द्र बताते हैं कि समितियों की विचारधारा का दायरा व्यापक था, और वह धर्मनिरपेक्षता से धार्मिक पुनरुत्थानवाद, नरमपंथी राजनीति,

सामाजिक सुधार (उत्पादक, सामाजिक-आर्थिक व शैक्षिक कार्यक्रमों के जरिए) से लेकर राजनीतिक चरमपंथ की धारा को अपने में समेटे था।

स्वदेशी आन्दोलन में विभिन्न विचारधारा वाली राजनीतिक प्रवृत्तियाँ मौजूद थीं-

- नरमदली नहीं चाहते थे कि यह आन्दोलन ज्यादा आगे बढ़े। आन्दोलन के प्रति अपनी उदासीनता के चलते उनकी लोकप्रियता खत्म हो गई।
- 'रचनात्मक स्वदेशी' वाली समाज-सुधार की धारा स्वयंसेवा और आत्मनिर्भरता (रबीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में आत्मशक्ति) को केन्द्रित करके एक नियमित आन्दोलन चलाना चाहती थी, और इसके लिए वे स्वदेशी व्यावसायिक उद्यम, राष्ट्रवादी शैक्षिक कार्यक्रम और गाँव उत्थान समितियों की स्थापना पर जोर देते थे।
- राजनीतिक चरमपंथ की धारा भारत के लिए अंग्रेजी अधीनता के बगैर स्वशासन चाहती थी, और इसके लिए अंग्रेजों से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद ही नहीं बल्कि उनके प्रभाव को भी मिटाने का मकसद रखती थी। वे चाहते थे कि बहिष्कार के दायरे को बढ़ाया जाए और उसमें ब्रिटिश उत्पादों और शैक्षिक संस्थाओं के अलावा औपनिवेशिक प्रशासन, न्यायालय और सेवाओं के बहिष्कार को भी शामिल किया जाए। बिपिन चन्द्र पाल ने इस रास्ते को ''सत्याग्रह'' बताया था। अरबिन्दो घोष ब्रिटिश उत्पादों, उनके शैक्षिक संस्थानों, न्यायालयों और कार्यपालिका के 'संगठित और अनवरत' बहिष्कार के साथ-साथ अंग्रेजी राज के समर्थकों के सामाजिक बहिष्कार की बात कर रहे थे। उन्होंने अन्यायपूर्ण ब्रिटिश कानूनों की नागरिक अवज्ञा का भी आह्वान किया था।

विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता या आत्मशक्ति, दरअसल, राष्ट्रीय सम्मान, इज्जत और आत्मविश्वास को रेखांकित करती थी। यह स्वदेशी यानी देशी उद्यमों को स्थापित करने के प्रयासों में तेजी लाना भी था। इसी दौर में आचार्य पी.सी.रे ने बंगाल केमिकल्स फैक्ट्री की स्थापना की थी।

स्वदेशी आन्दोलन के दौरान लिखे गए गीत आन्दोलनों में जनगोलबन्दी की जबरदस्त ताकत बन गए। रबीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी दौर में आमार सोनार बांगला गीत लिखा था, जो **1971** में बांगलादेश के बनने के बाद उसके राष्ट्रगीत के बतौर प्रसिद्ध है।

कला के क्षेत्र में अबनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय कला पर विक्टोरियाई प्रकृतिवाद के प्रभाव को चुनौती दी थी, और अजन्ता, राजपूत और मुगल चित्रकारी की समृद्ध देशी परम्परा से प्रेरणा हासिल की थी। भारतीय कला पर स्थाई प्रभाव छोड़ने वाले नन्द लाल बोस **1907** में गठित इन्डियन सोसाइटी आफ ओरिएन्टल आर्ट द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्ति के पहले लाभार्थी बने थे।

14.3.2 एक मूल्यांकन

- अपने कार्यक्रमों और तरीकों की विविधता के कारण यह आन्दोलन आधुनिक राष्ट्रीय राजनीति में समाज के विभिन्न हिस्सों की भागीदारी को सुनिश्चित कर सका था।
- सामाजिक लिहाज से स्वदेशी आन्दोलन ने जमींदारों के एक वर्ग, शहरों और कस्बों के निम्न मध्यमवर्ग, स्कूल व कालेज के छात्रों और महिलाओं को अपनी तरफ आकर्षित किया और धरनों व प्रदर्शनों में भी उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की थी।
- यह आन्दोलन किसानों, खासकर गरीब किसानों को गोलबन्द नहीं कर सका था। इसके अलावा, मुसलमानों का भी समर्थन इसे हासिल नहीं हुआ था। पारम्परिक रिवाजों व त्योहारों के इस्तेमाल से विभ्रम भी फैला और औपनिवेशिक सरकार के समर्थक साम्प्रदायिक तत्वों ने इस इस्तेमाल को विकृत करके प्रचारित किया। आन्दोलन के खिलाफ मुसलमानों को भड़काने की अंग्रेजी रणनीति भी इस दुखद स्थिति का एक कारण थी।

कई कारणों से आन्दोलन का जोर कम होता गया थाः

- सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों और प्रेस पर पाबन्दी जैसे सरकार के दमनकारी उपाय। छात्रों-स्कूलों व कालेजों में आन्दोलन के समर्थकों का निष्कासन, अर्थदन्ड और उनकी पुलिस द्वारा पिटाई
- अन्दरूनी कलह, खासकर **1907** में कांग्रेस का विभाजन, जिसकी वजह से आन्दोलन को धक्का पहुँचा था।
- आन्दोलन के अधिकांश प्रमुख नेताओं का निर्वासित या गिरफ्तार कर लिया जाना
- आन्दोलन में एक पार्टी ढाँचा या कुशल संगठन का अभाव। सत्याग्रह, अहिंसक असहयोग, जेलभरो, रचनात्मक कार्य जैसे विविध तरीकों के बावजूद एक केन्द्रीकृत और संस्थाबद्ध स्पष्टता का अभाव था, और वे एक वास्तविक, यथार्थवादी राजनीतिक व्यवहार नहीं बन सके थे, जैसा बाद में गाँधी करने में सफल हुए थे।
- अन्त में यह आन्दोलन अपने ही गतिविज्ञान से टकराने लगा था, क्योंकि किसी जनान्दोलन में जुझारूपन और त्याग की तीव्रता हमेशा एक जैसी बनाए रखना मुश्किल होता है, तब तो और भी ज्यादा जब दमन चक्र अपने चरम पर हो।

स्वमूल्यांकित प्रश्न 1. **अभ्यासः सही या गलत**

क. स्वदेशी आन्दोलन के जन्म का कारण बंगाल का विभाजन था।

ख. स्वदेशी आन्दोलन का मुख्य जोर स्वदेशी वस्तुओं और राष्ट्रीय शिक्षा पर था।

ग. रबीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वदेशी आन्दोलन के दौरान आत्मशक्ति की अवधारणा पर जोर दिया था।

घ. कांग्रेस के सूरत विभाजन का स्वदेशी आन्दोलन पर कोई असर नहीं पड़ा था।

प्रश्न 2 **रिक्त स्थान भरें**

क. ..... ने भारतीय कला पर विक्टोरियाई प्रकृतिवाद के प्रभाव को चुनौती दी थी और ..... , राजपूत और मुगल चित्रकारी की समृद्ध परम्परा से प्रेरणा हासिल की थी।

ख. ..... **1907** में स्थापित इन्डियन सोसाइटी ऑफ ओरिएन्टल आर्ट की छात्रवृत्ति योजना के प्रथम लाभार्थी थे।

ग. बंगाल में एक पारम्परिक लोक नाट्य शैली ..... का इस्तेमाल जनता के बीच स्वदेशी के प्रचार-प्रसार के लिए किया गया था।

घ. '..... 'स्वदेशी के धरनों व बहिष्कार से दूर रहने के लिए छात्रों को धमकाने के लिए जारी किया गया था।

14.4 अनुशीलन समिति

बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान अनेक समितियाँ खूब लोकप्रिय हुईं वे बहुविध गतिविधियों में संलग्न रहती थीं। अकाल और महामारियों के समय रचनात्मक कार्यों के अलावा लोगों के शारीरिक और नैतिक प्रशिक्षण, स्वदेशी का प्रचार, गाँव सभाओं का संचालन, शिल्प मेलों के आयोजन, पंचायतें चलाने और सत्याग्रह के तरीकों पर अमल जैसे कार्यों में वे संलग्न रहती थीं।

1902 में, कलकत्ता शहर में प्रमथ मित्र और बड़ोदा से आए अरबिन्दो के प्रतिनिधि जतीन्द्रनाथ बनर्जी और बारीन्द कुमार घोष ने अनुशीलन समिति की स्थापना की थी। उनकी गतिविधियाँ अपने सदस्यों को शारीरिक और नैतिक प्रशिक्षण देने तक सीमित थीं। (अरबिन्दो के सहयोग से) बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त ने **1906** में युगान्तर साप्ताहिकी का प्रकाशन शुरू किया था। उसी साल उन्होंने दो सैनिक कार्यवाहियों की कोशिशें भी की थीं, जिनमें नए प्रान्त, पूर्वी बंगाल और असम, के कुख्यात राज्यपाल सर बामफील्ड फुलर की हत्या का प्रयास शामिल था। हालाँकि उनकी योजनायें सफल नहीं हुई थीं।

सुमित सरकार बताते हैं कि कलकत्ता अनुशीलन के ठीक विपरीत पुलिन दास के नेतृत्व वाला ढाका अनुशीलन अपनी स्थापना के समय से ही कुछ अलग था। वह अपने सदस्यों के गुप्त प्रशिक्षण पर जोर देता था, जिसमें शारीरिक प्रशिक्षण की प्रमुखता के अलावा हिन्दू कट्टरता में रंगी दीक्षा भी शामिल रहती थी। **1908-09** के दौरान राजकीय दमन के चलते खुली सार्वजनिक गतिविधियों में संलग्न समितियाँ या तो खत्म हो गईं, या रैडिकल गुप्त समितियों में तब्दील हो गई थीं।

भारतीय क्रान्तिकारियों की पहली पीढ़ी में हेम चन्द्र कानूनगो विलक्षण थे। वे सैनिक और राजनीतिक प्रशिक्षण हासिल करने के लिए फ्रान्स गए थे, और वहाँ एक रूसी अप्रवासी से प्रशिक्षित होकर लौटे थे। वतन लौटने पर उन्होंने कलकत्ता के बाहरी इलाके में स्थित मानिकतला मोहल्ले के बगीचे वाले घर में एक धार्मिक स्कूल और बम बनाने का

कारखाना स्थापित किया था। लेकिन **30** अप्रैल **1908** को प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस द्वारा एक बदनाम मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफर्ड को मारने की कोशिश की गई, जिस हमले में गलती से केनेडी माँ-बेटियों की मौत हो गई, जबकि मजिस्ट्रेट साफ बच गया। नेतृत्व (खासकर बारीन्द्र कुमार घोष) की घोर लापरवाही के कारण इस घटना के चन्द घन्टों बाद पुलिस उनके कारखाने तक पहुँच गई और अरबिन्दो समेत समूचा गुट गिरफ्तार का लिया गया। बाद में, प्रफुल्ल चाकी ने खुद को गोली मार ली, जबकि खुदीराम बोस को मुकदमा चलाने के बाद फाँसी दे दी गई। मानिकतला बाग में पुलिस द्वारा हथियारों की तलाशी के दौरान **34** लोग गिरफ्तार किए गए थे, जिनमें दोनों घोष भाई, अरबिन्दो और बारीन्द्र शामिल थे। बाद में, उन पर अलीपुर षड़यन्त्र केस के तहत मुकदमा चलाया गया। मुकदमे के दौरान सरकारी गवाह बन जाने वाले नरेन्द्र गुसाईं की जेल में हत्या कर दी गई। यही नहीं, फरवरी **1909** में सरकारी वकील की कलकत्ता में हत्या कर दी गई, और **24** फरवरी **1910** को, कलकत्ता उच्च न्यायालय से लौटते समय पुलिस उपाधीक्षक भी मार दिए गए थे।

पूर्वी बंगाल में पुलिन दास की ढाका अनुशीलन का संगठन बेहतर था। उनकी पहली बड़ी कार्यवाही **2** जून **1908** की बारा डकैती थी। यह डकैती हथियार और गोला बारूद खरीद के लिए धन जुटाने के लिए की गई थी।

क्रान्तिकारी गतिविधियों के दूसरे दौर में ठहराव आ गया, जो क्रान्तिकारी समूहों की आपसी धड़ेबाजी, निजी रंजिशों, खासकर युगान्तर और अनुशीलन समितियों की आपसी दुश्मनी का परिणाम था।

प्रश्न 1. **अभ्यास: सही या गलत**

क. अंग्रेजों ने खुदीराम बोस पर मुकदमा चलाकर उन्हें फाँसी पर लटका दिया था।

ख. अरबिन्दो और बारीन्द्र को अलीपुर षड़यन्त्र केस के तहत मुकदमा चलाया गया था।

ग. ढाका अनुशीलन समिति के संगठक पुलिन दास थे।

घ. हेमचन्द्र कानूनगो नरमदलियों के एक नेता थे।

क. पुलिन दास के ढाका अनुशीलन की पहली बड़ी कार्यवाही **2** जून **1908** की ..... डकैती थी।

ख. अलीपुर षड़यन्त्र मुकदमे के दौरान सरकारी गवाह बन जाने वाले..... की जेल में हत्या कर दी गई थी।

ग. खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने एक मुजफ्फरपुर में एक कुख्यात मजिस्ट्रेट..... की हत्या करने का प्रयास किया था।

घ. नए प्रान्त..... के कुख्यात लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सर ऋऋऋऋऋ की हत्या करने की योजना बनाई गई थी।

14.5 निहिलिस्ट

1**860** और **1870** के दशक में रूस के रैडिकल माहौल ने कुछ ऐसे विचार वाले लोगों को जन्म दिया जो निहिलिस्ट (यानी नकारवादी) कहे जाते हैं। वे सत्ता और परम्परा दोनों को नकारते थे। निहिलिस्ट शब्दावली का पहला इस्तेमाल

इवान तुर्गनेव (**1818-1883)** ने अपने उपन्यास फादर्स एन्ड सन्स में किया था, वे वहाँ थोड़ी कड़वाहट के साथ नई पीढ़ी का वर्णन कर रहे थे। हालाँकि शब्दावली का उनका इस्तेमाल अपमानजनक अर्थ में किया गया था, लेकिन दिमित्री पिसारेव और उनके समर्थकों ने इसे सम्मान का प्रतीक बना दिया, और अपने एक दौर के आन्दोलन का नाम निहिलिस्ट रख लिया। **1861** से **1866** के दरमियान दिमित्री पिसारेव निहिलिस्टों का प्रवक्ता था। निहिलिस्टों के अन्य महत्वपूर्ण नेताओं में युवा रैडिकल निकोलस चेर्नीशेव्सकी और निकोलस दोब्रोलिबोव का नाम लिया जाता है। वे उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद, भौतिकवाद और खासकर ''यथार्थवाद'' का जोरदार पक्षपोषण करते थे। निहिलिज्म या नकारवाद- और मोटे तौर पर यथार्थवाद, खासकर आलोचनात्मक यथार्थवाद- प्रचलित मूल्यों और मानकों के प्रति गहरे विद्रोह का प्रतीक था, यह अमूर्त विचार और पारिवारिक सत्ता, गेय कविता और स्कूलों पर नियन्त्रण, और धर्म के अलावा वक्तृत्वकला के प्रति विद्रोह था। वे आम तौर पर प्राकृतिक विज्ञानों, गैर-जटिल व गहरे मानवीय रिश्तों, और पूर्वाग्रह, उत्पीड़न, अज्ञानता व शोषण की जगह ज्ञान और विवेक पर आधारित समाज को वास्तविक और उपयुक्त मानते थे। विमुक्ति और आजादी निहिलिज्म (नकारवाद) की नैतिक ताकत थे।

पिसारेव इस मत को प्रचारित करते थे कि कोई अपरिपवर्तनशील सच या मानक बनाना असंभव है, और व्यक्तित्व के मुक्त विकास को बाधित करने वाले किसी प्रयास को तर्कसंगत दिखाना नामुमकिन है। एक तरह से निहिलिज्म (नकारवाद) कोई सिद्धान्त न होकर सिद्धान्तों का खन्डन था। फिर भी, बाद के दौर में रूस के बाहर, और कुछ हद तक उसके अन्दर भी, सभी क्रान्तिकारी आतंकवादियों को, बगैर कोई अन्तर के, निहिलिस्ट कहा जाने लगा, और इस तरह सभी क्रान्तिकारियों को निहिलिस्ट कहना चलन बन गया।

विश्व के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टि और तत्कालीन रूसी व्यवस्था के प्रति विक्षोभ से जुड़ी यह शब्दावली और धारणा उस आडम्बरपूर्ण दौर में बुद्धिजीवियों के बीच लोकप्रिय थी। **1860**वें दशक के रैडिकल मान्य सत्ता के प्रत्येक स्वरूप को नकारने वाली विचारधारा यानी निहिलिज्म की तरफ आकर्षित हो रहे थे। दिमित्री पिसारेव ने कहा था ''जो तोड़ा जा सकता है, उसे तोड देना चाहिए''। उस वक्त रैडिकलों की बढ़ी ताकत उस दौर के भौतिकवादी और यथार्थवादी चरित्र के अलावा रूस की विशिष्ट परिस्थितियों का नतीजा थी; निकोलस प्रथम के राज में बौद्धिकों का दमन, व्यवस्था का अधिनायकवादी व दमनकारी चरित्र, मध्य वर्ग के साथ-साथ उदारता और अन्य समावेशी तत्वों का नगण्य विकास, और शिक्षित समुदाय में लोकतान्त्रिक विकास की धीमी प्रक्रिया जैसे कारक उन्हें मजबूती दे रहे थे। हालाँकि निहिलिज्म (नकारवाद) ने रैडिकल रूसी युवाओं को प्रचलित सत्ता की वफादारी से मुक्त कर दिया था, लेकिन यह सामाजिक न होकर व्यक्तिगत था, और इसके पास अपना कोई सकारात्मक कार्यक्रम नहीं था- पिसारेव और तुर्गनेव दोनो का ही नायक बजारोव फादर्स एन्ड सन्स में युवावस्था में ही मर जाता है। लेकिन इनके महत्व को हम

इस तथ्य से समझ सकते हैं कि बाद के रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन का उत्स **1860**वें दशक के इसी रैडिकल प्रचार और इन्हीं समूहों में मिलता है।

अपने उद्देश्यों के लिए भारत के क्रान्तिकारियों ने भी आयरलैन्ड के राष्ट्रवादियों और रूसी निहिलिस्टों व लोकाधिकारवादियों के तरीके अपनाए थे। उन्होंने बदनाम अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करने का रास्ता चुना था। क्योंकि उन्हें लगता था कि ये हत्याएँ औपनिवेशिक शासकों में दहशत पैदा करेंगी, जनता की देशभक्ति जगाएँगी, और उनमें उत्साह भरते हुए उनके मन से व्यवस्था का खौफ निकाल देंगी। वे मानते थे कि क्रान्तिकारियों द्वारा की गई हत्यायें और उनकी गिरफ्तारी के बाद के मुकदमे प्रचार के 'व्यावहारिक उदाहरण' बन जायेंगे। गौरतलब है कि संघर्ष का यह स्वरूप राष्ट्र के लिए अपनी जान कुर्बान करने वाली युवाओं की फौज माँगता था, युवा पीढ़ी को यह आदर्शवाद झकझोरता था और उनकी सुप्त बहादुरी को जगाता था।

युवा क्रान्तिकारियों ने शौर्य के व्यक्तिवादी रास्ते को चुना था और अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करने के अलावा सरकारी खजाने को लूटना उनकी रणनीति थी। बेशक, उनकी डकैतियाँ हथियार और गोला बारूद की खरीद और अपनी गतिविधियों के लिए जरूरी कोष जुटाने के लिए ही की जाती थीं।

प्रश्न 1. **अभ्यास: सही या गलत**

क. निहिलिस्ट शब्दावली का पहला प्रयोग इवान तुर्गनेव द्वारा अपने उपन्यास फादर्स एन्ड सन्स में किया गया था।

ख. निहिलिस्ट स्वभाव से व्यक्तिवादी, अराजक और रैडिकल थे।

ग. भारतीय क्रान्तिकारी भी निहिलिस्टों से प्रभावित थे।

घ. निकोलस देब्रोलियूबोव, निकालस चेर्नीशेव्सकी और दिमित्री पिसारेव निहिलिज्म (नकारवाद) के प्रमुख रैडिकल प्रतीक थे।

14.6 **क्रान्तिकारी या रैडिकल**

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रान्तिकारी अपने दृष्टिकोण और तौर-तरीकों में रैडिकल थे। वे हिंसा के रास्ते और व्यक्तिगत शौर्य में यकीन करते थे। अपने उद्देश्यों की खातिर वे बदनाम अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करने और अपनी गतिविधियों के लिए धन उगाही करने के लिए अंग्रेजी सरकार के कोष को लूटने में यकीन करते थे।

वे नरमदली नेताओं की अर्जी-प्रार्थना वाली राजनीति से और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को दिशा देने में गरदमदली नेताओं की असफलता से ऊब चुके थे। अरबिन्दो घोष जैसे नेताओं का एक वर्ग इस नई प्रवृत्ति के विकास में सहायता कर रहा था। क्रान्तिकारी खुद आयरलैन्ड के राष्ट्रवादियों और रूसी निहिलिस्टों व लोकाधिकारवादियों से प्रभावित थे। हिंसक गतिविधियों वाली इस प्रवृत्ति के बढ़ने का एक और कारण औपनिवेशिक शासन द्वारा स्वदेशी आन्दोलन का निर्मम दमन भी था। **27** अप्रैल **1906** को बारीसाल के एक राजनीतिक सम्मेलन पर बगैर उकसावे के पुलिस का बर्बर

हमला हुआ था, जिस पर राष्ट्रवादी अखबार जुगान्तर ने लोगों का आह्वान करते हुए कहा था, ''ताकत का जवाब ताकत से दिया जाना चाहिए''। सूरत (**1907**) में कांग्रेस विभाजन के बाद औपनिवेशिक प्रशासन में दमनकारी तत्व और मजबूत हो गए थे और वे चरमपंथियों पर जोरदार हमला शुरू कर चुके थे। गौरतलब है कि अरबिन्दो घोष अलीपुर षड़यन्त्र केस में गिरफ्तार कर लिए गए थे और तिलक छह साल के लिए जेल में डाल दिए गए थे।
इस दौर में, खासकर बंगाल में, राष्ट्रवादी युवाओं की एक समूची पीढ़ी उभरी थी जोः

- औपनिवेशिक सरकार के दमन से क्षुब्ध थी
- नरमपंथी राजनीति की निरर्थकता से क्षुब्ध थी
- गरमपंथी नेताओं द्वारा सरकार से सहूलियतें न हासिल कर पाने या बड़ी जनगोलबन्दी न कर पाने के कारण उनसे चिढ़ी हुई थी
- अंग्रेज अधिकारियों की हत्याओं के पीछे उनका मकसदः
- सरकारी अमले में दहशत पैदा करना था।
- जनता के भय और आलस्य को दूर करना था
- जनता की राष्ट्रवादी चेतना को जगाना था।

इस नई प्रवृत्ति की वास्तविक शुरुआत खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी द्वारा मुजफ्फरपुर के बदनाम जिला जज किंग्सफोर्ड की बग्घी पर बम फेंकने के साथ मानी जा सकती है।

14.6.1 गुप्त समितियाँ

स्वदेशी आन्दोलन के सरकारी दमन के कारण गुप्त समितियाँ अस्तित्व में आ गईं। वे अफसरों की हत्या करने के अलावा हथियारों की खरीद के लिए स्वदेशी डकैतियाँ डालने के रास्ते पर चलती थीं। अनुशीलन और युगान्तर क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ करने वाली बंगाल की दो महत्वपूर्ण समितियाँ थीं।
बंगाल से बाहर मद्रास में, चरमपंथी नेता चिदम्बरम पिल्लई की गिरफ्तारी का विरोध कर रही जनता पर गोली चलाई गई, और प्रतिक्रिया में भारत माता एशोसिएशन के वन्ची अ॰यर ने गोलीचालन का आदेश देने वाले अधिकारी की हत्या कर दी। महाराष्ट्र में बम्बई, नासिक, पूना क्रान्तिकारी कार्यवाहियों के केन्द्र बन गए। दिल्ली में भी **23** दिसम्बर **1912** को रासबिहारी बोस ने भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग की हत्या करने का प्रयास किया।
समूचे देश में फैले इन क्रान्तिकारियों का एक समान मकसद था- औपनिवेशिक शासन से देश को आजाद कराना। वे मानते थे कि पश्चिमी साम्राज्यवाद का खात्मा केवल हिंसा के पश्चिमी रास्ते से ही संभव है, इसलिए रिवाल्वर ओर बम की संस्कृति की वे तरफदारी करते थे। इन क्रान्तिकारियों ने गुप्त समितियों का गठन किया, युवाओं को भर्ती किया, और

उनमें देश के लिए आत्म बलिदान करने की भावना पैदा की। उन्होंने अपने सदस्यों को हथियार चलाने और बम बनाने का प्रशिक्षण भी दिया।

इसके पहले, देश में यूरोपीय अधिकारियों की पहली हत्या दो भाइयों, बालकृष्ण और दामोदर चापेकर, द्वारा **22** जून **1897** को पूना में की गई थी। उनका निशाना तो पूना की प्लेग कमेटी के अध्यक्ष रैन्ड थे, लेकिन गलती से हमले में लेफ्टीनेन्ट अयर्सट मारा गया था। यह कार्यवाही प्लेग कमेटी के उस दमनकारी निर्णय की प्रतिक्रिया में की गई थी, जिसके तहत सेना प्लेग से प्रभावित लोगों को पकड़ने के लिए नागरिकों के घरों की तलाशी ले रही थी।

1904 में, नासिक में, वी.डी.सावरकर और उनके भाई गणेश सावरकर द्वारा एक संगठन मित्र मेला का गठन किया गया था, जिसे बाद मे अभिनव भारत नाम की एक गुप्त समिति में बदल दिया गया था।

इन क्रान्तिकारी गतिविधियों का एक और महत्वपूर्ण पहलू भारत से बाहर विदेशों में की जाने वाली उनकी गतिविधियाँ थीं। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में इंडिया हाउस की स्थापना की थी और वी.डी.सावरकर, हरदयाल और मदनलाल ढींगरा उस इंडिया हाउस के सदस्य बने थे। **1909** में मदन लाल ढींगरा ने भारत के राजनीतिक एडीसी कर्नल विलियम वाइली की हत्या कर दी, मदनलाल को फाँसी पर चढ़ा दिया गया, सावरकर भारत निष्कासित कर दिए गए और कृष्णवर्मा लंदन छोड़कर पेरिस चले गए।

यूरोपीय देशों में क्रान्तिकारी सन्देश का प्रचार करने और देश में सक्रिय साथियों को मदद पहुँचाने वाले क्रान्तिकारियों में भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह और भीकाजी कामा की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

मुजफ्फरपुर हत्याकांड, अलीपुर षड़यन्त्र केस और गदर आन्दोलन पर विस्तृत चर्चा हम अन्य इकाइयों में कर चुके हैं (कृपया उन्हें दोबारा देख लें)। इस दौर की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ महत्वपूर्ण थीं, लेकिन राजकीय दमन, काले कानून और जन समर्थन में कमी के कारण उनका ज्वार धीरे-धीरे मन्द पड़ गया।

14.6.2 क्रान्तिकारी गतिविधियों का दूसरा दौर

असहयोग आन्दोलन की असफलता और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से उपजी निराशा के बीच देश में क्रान्तिकारी गतिविधियों का एक नया दौर अस्तित्व में आया था।

उत्तर भारत के क्रान्तिकारी

1922 के बाद क्रान्तिकारियों की दो धाराएँ विकसित हुईं, एक पंजाब, बिहार, यू.पी, और मध्य प्रान्त में तो दूसरी बंगाल में। दोनो धाराओं पर उन नई सामाजिक और वैचारिक ताकतों का असर था, जिनकी परिणिति के बतौर:

- समाजवादी विचारों और समूहों का विकास हुआ था
- एक जुझारू ट्रेड यूनियन आन्दोलन विकसित हुआ था

पुरानी समितियाँ देश के विभिन्न हिस्सों में सक्रिय हो गईं। उस वक्त लोगों को इस बात का आभास हो रहा था कि एक अखिल भारतीय संगठन और बेहतर संयोजन हो जाए तो मकसद हासिल हो सकता है। परिणामस्वरूप, देश के विभिन्न हिस्सों के क्रान्तिकारी अक्टूबर **1924** में कानपुर में इकट्ठा हुए। इस बैठक की चर्चाओं के बाद हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एशोसिएशन नाम के संगठन का गठन किया गया। यही संगठन बाद में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एशोसिएशन या आर्मी (एचएसआए) के नाम से चर्चित हुआ। संगठन की प्रान्तीय इकाइयाँ देश के विभिन्न हिस्सों में गठित हो गईं। एचआरए द्वारा काकोरी डकैती की योजना बनाई गई, जिस पर कई क्रान्तिकारी काकोरी षड़यन्त्र केस में फँसा दिए गए।

सितम्बर **1928** में एचआरए को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एशोसिएशन आर्मी में बदल दिया गया था, और उसने अपना लक्ष्य समाजवाद घोषित कर दिया। एचएसआरए नेतृत्व के विचार व्यक्तिगत शौर्य के रास्ते को छोड़कर जनाधारित सशस्त्र संघर्ष की धारणा की ओर तेजी के साथ बढ़ रहे थे। लेकिन तभी **30** अक्टूबर **1928** को लाहौर में साइमन कमीशन विरोधी जुलूस का नेतृत्व कर रहे लाला लाजपत राय की लाठियों से बर्बर पिटाई की घटना हुई, जिसे वे बर्दाश्त न कर सके, और प्रतिशोध में अंग्रेज अधिकारी की हत्या करने के निर्णय पर पहुंच गए। **17** अक्टूबर **1928** को भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव ने लाठीचार्ज के लिए जिम्मेदार पुलिस अधिकारी सान्डर्स की हत्या कर दी। बाद में, **8** अप्रैल **1929** को भगत सिंह और राजगुरु ने केन्द्रीय विधान सभा में ''बहरों को सुनाने के लिए'' एक बम धमाका भी किया। उन्होंने स्वयं को गिरफ्तार करवाने का निर्णय लिया था, क्योंकि वे मुकदमे के दौरान अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना चाहते थे। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त पर असेम्बली बम कांड और भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को सान्डर्स की हत्या के आरोप पर लाहौर षडयन्त्र केस के तहत मुकदमा चला। गिरफ्तारी के दौरान क्रान्तिकारियों ने जेल की बदहाल दशा का भी विरोध किया और राजनीतिक कैदी का दर्जा दिए जाने की माँग उठाई थी। इस माँग पर जतिन दास आमरण अनशन करते हुए जेल में ही शहीद हो गए। कई क्रान्तिकारियों पर मुकदमे चले और उन्हें सजाएँ सुनाई गईं। कई को अन्डमान की सेलुलर जेल भेज दिया गया। जबकि भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को **23** मार्च **1931** को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

14.6.3 एचआरए और एचएसआरए की विचारधारात्मक दिशा

एचआरए के कार्यक्रम की रूपरेखा मूलतया धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक और समाजवादी थी। उसका बुनियादी सिद्धान्त ''सार्विक मताधिकार हासिल करना और उन सभी व्यवस्थाओं का खात्मा करना था जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को संभव बनाती हैं''।

1929 में अपनी गिरफ्तारी के पहले ही भगत सिंह व्यक्तिगत शौर्य और आतंक के रास्ते में विश्वास खो चुके थे। वे इस पक्के यकीन पर पहुँच चुके थे कि क्रान्ति का मतलब जनता को जगाना और जनान्दोलन संगठित करना है। भगत सिंह

और उनके साथियों ने क्रान्ति की अवधारणा की पुनर्व्याख्या की थी, और अपनी क्रान्ति के पहले पड़ाव के बतौर राष्ट्रीय आजादी की प्राप्ति और बाद में एक नए समाजवादी समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया था। उन्होंने कहा था कि उनका मूल ध्येय ''मनुष्य द्वारा मनुष्य के और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र के शोषण'' को खत्म करना था। भगत सिंह ने समाजवाद को परिभाषित करते हुए उसे पूंजीवाद और वर्गप्रभुत्व का खात्मा कहा था।

14.7 बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

बंगाल में क्रान्तिकारी अपने प्रचार के लिए प्रेस का इस्तेमाल कर रहे थे और अपनी भूमिगत गतिविधियाँ भी चला रहे थे। इसके अलावा वे कांग्रेस के अन्दर अपनी सक्रियता लगातार बनाए हुए थे। सी.आर.दास उनके और कांग्रेस के बीच भावनात्मक कड़ी का काम कर रहे थे। उनकी मौत के बाद कांग्रेस का नेतृत्व दो धड़ों में बँट गया, एक का नेतृत्व सुभाष चन्द्र बोस करने लगे और दूसरे का जे.एम. सेनगुप्ता। उनको लेकर क्रान्तिकारी भी विभाजित हो गए, युगान्तर बोस के पक्ष में था, तो अनुशीलन जे.एम.सेनगुप्ता की तरफदारी करती थी।

गोपीनाथ साहा द्वारा जनवरी **1924** में कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर की हत्या करने की कोशिश व्यक्तिगत शौर्य वाली कार्यवाही का एक और उदाहरण था। वह अपने प्रयास में सफल भी नही हो सका था, लेकिन मुकदमे के बाद उसे **1** मार्च **1924** को फाँसी दे दी गई। **1926** के बाद अनेक युवा क्रान्तिकारी खुद को नए समूहों में संगठित करने लगे थे, लोग उन्हें विद्रोही गुट कहा करते थे। नए समूहों ने आयरलैन्ड और रूस के क्रान्तिकारियों के अनुभवों को आधार बनाते हुए खुद को संगठित करने की कोशिश की थी। वे युगान्तर और अनुशीलन समितियों के ताकतवर धड़ों के साथ मधुर सम्बन्ध रखते थे।

नए क्रान्तिकारी समूहों में सूर्य सेन के चिटागांग समूह की शोहरत और साख सबसे ज्यादा थी। **1949** में चिटागांग शस्त्रागार लूटने की घटना पर एक बांग्ला फिल्म चटाग्राम अस्त्रागार लुंठन बनाई गई, जिसके निर्देशक निर्मल चौधरी हैं। इस घटना पर अभी हाल में दो फिल्में और बनी हैं। एक फिल्म खेले हम जीजान से **(2010)** आशुतोष गौरीकर द्वारा निर्देशित और मानिनी चटर्जी की किताब डू एन्ड डाइः चिटागांग अपराइजिंग **1930-34** पर आधारित है। दूसरी फिल्म चिटागांग **2012** में प्रदर्शित हुई, और इसके निर्देशक डा. बेदब्रत पाइन है और फिल्म के नायक मनोज बाजपेई ने सूर्य सेन का किरदार निभाया है।

18 अप्रैल **1930** को चिटागांग शस्त्रागार पर धावा बोला गया था और अस्थाई क्रान्तिकारी सरकार का गठन करते हुए सूर्य सेन को औपचारिक राष्ट्रपति घोषित किया गया था। सरकार दमन करती रही, लेकिन क्रान्तिकारी लगभग तीन वर्षों तक उनसे लोहा लेते रहे। सूर्य सेन **16** फरवरी **1933** को पकड़े गए और **12** जनवरी **1934** को उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों के नए दौर में महिलाओं की भागीदारी काफी ज्यादा थी। उन्होंने न सिर्फ सुरक्षित आश्रय देने, संदेश पहुँचाने और हथियारों व गोला बारूद को पहुँचाने का काम किया, बल्कि हथियारबन्द लड़ाई में भी क्रान्तिकारियों का साथ दिया। **1931** में कोमिला में सुनीति चौधरी और शान्ति घोष ने जिला मजिस्ट्रेट की हत्या की थी। **1932** में बीना दास ने दीक्षान्त समारोह में डिग्री लेते समय राज्यपाल पर गोली चलाई थी।

बंगाल के नए विद्रोही गुट सशस्त्र विद्रोह को भड़काने के लिए सामूहिक कार्यवाहियाँ किया करते थे। **1920**वें और **1930**वें दशक के क्रान्तिकारी आन्दोलन में **20**वीं सदी के पहले दशक के क्रान्तिकारी आन्दोलन की तुलना में मुसलमानों की भागीदारी ज्यादा थी। कलकत्ता के अब्दुर रज्ज़ाक खान ने एक विद्रोही गुट की स्थापना की थी और वे अनुशीलन, युगान्तर व अन्य क्रान्तिकारी समूहों के साथ अच्छे सम्बन्ध रखते थे।

क्रान्तिकारी गतिविधियों में उतार

गांधी के नेतृत्व वाला राष्ट्रीय आन्दोलन हिंसा का विरोधी था, हालाँकि तब भी कांग्रेस के नेता युवाओं के व्यक्तिगत शौर्य की तारीफ किया करते थे, न्यायालयी कार्यवाहियों में उनका साथ देते थे, और उन पर पुलिस दमन की कार्यवाहियों का विरोध करते थे। बहरहाल, सरकारी दमन के कारण क्रान्तिकारी कतारें कमजोर होती गईं। **27** फरवरी **1931** को चन्द्र शेखर आजाद की शहादत के बाद उत्तरी भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन व्यावहारिक तौर पर खत्म हो गया। उधर, सूर्य सेन की शहादत के बाद बंगाल की क्रान्तिकारी गतिविधियों में बिखराव आ गया। फिर भी, इसमें कोई शक नहीं कि अपने साहस, आत्म-बलिदान, और देशभक्ति से भारतीय जनता को जो प्रेरणा उन्होंने दी थी और जनता में आत्म विश्वास और आत्म सम्मान का जो भाव जगाया था, वह राष्ट्रीय आन्दोलन में इन क्रान्तिकारियों का एक मौलिक व स्थाई योगदान है।

प्रश्न 1. **अभ्यासः खाली जगह भरें:**

क. भगत सिंह पर ..... मुकदमे में केस चला था और फाँसी दी गई थी

ख. जतिन दास ने जेल में कैदियों की भयानक दशा को सुधारने और क्रान्तिकारियों के लिए..... का दर्जा दिए जाने की माँग पर भूख हड़ताल करते हुए अपनी जान दे दी थी।

ग. एचएसआरए अपने दृष्टिकोण में ..... थी

घ. सूर्य सेन ..... पर किए गए हमले के नेता थे।

प्रश्न 2. **अभ्यासः सही या गलत**

क. **27** फरवरी **1931** को चन्द्र शेखर आजाद की शहादत के बाद उत्तरी भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन वाकई खत्म हो गया था।

ख. आशुतोष गौरीकर द्वारा निर्देशित फिल्म खेले हम जी जान से (**2010)** मानिनी चटर्जी की किताब डू एन्ड डाइः द चिटागांग अपराइजिंग **1930-34** पर आधारित है

ग. **2012** में प्रदर्शित फिल्म चिटागांग में सूर्य सेन का किरदार मनोज बाजपेयी ने निभाया है

घ. **1931** में कोमिला में सुनीति चौधरी और शान्ति घोष ने जिला मजिस्ट्रेट की हत्या कर दी थी

14**.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर**

14**.3.2 के प्रश्न के उत्तर** क. सही**,** ख. सही**,** ग. सही**,** घ. गलत

14**.4 के प्रश्न के उत्तर** क. सही**,** ख. सही**,** ग. सही**,** घ. गलत।

14**.5 के प्रश्न के उत्तर** क. सही**,** ख. सही**,** ग. सही**,** घ. सही

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चन्द्र**,** बिपन एवं अन्य (**1993),** इन्डियाज स्ट्रगल फार इन्डेपेन्डेन्स**,** पेन्गुइन बुक्स**,** दिल्ली

चन्द्र**,** बिपन एवं अन्य (**1999),** इन्डिया आफ्टर इन्डेपेन्डेन्स**,** पेन्गुइन बुक्स**,** दिल्ली

सरकार**,** सुमित (**1983)** माडर्न इन्डिया **1885-1947,** मैकमिलन इन्डिया लिमिटेड**,** मद्रास

ग्रोवर बी.एल.**,** और ग्रोवर**,** एस (**1998 16**वां संस्करण) एन इन्ट्रोडक्शन टु माडर्न इन्डिया**,** एस चन्द एन्ड कम्पनी**,** दिल्ली

इग्नू पाठ्य सामग्री**,** आधुनिक भारतीय इतिहास (**1999)**

सुमित सरकार**,** द स्वदेशी मूवमेन्ट इन बेंगाल**, 1903-08,** पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस**,** दिल्ली**, 1973**

रियासनोव्सकी**,** निकोलस पंचम**,** अ हिस्ट्री आफ रशा (**2000),** छठा संस्करण**,** ओयूपी**,** न्यूयार्क

हारकेव**,** सिडनी**,** रशा**,** अ हिस्ट्री**,** क्लीवर ह्यूम प्रेस लिमिटेड**,** लंदन

अध्ययन के लिए ग्रन्थ सूचीः

रियासनोव्सकी**,** निकोलस पंचम**,** अ हिस्ट्री आफ रशा (**2000),** छठा संस्करण**,** ओयूपी**,** न्यूयार्क

हारकेव**,** सिडनी**,** रशा**,** अ हिस्ट्री**,** क्लीवर ह्यूम प्रेस लिमिटेड**,** लंदन

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न. स्वदेशी आन्दोलन का मूल्यांकन करें**?**

प्रश्न**2.** स्वदेशी और बहिष्कार से आप क्या समझते हैं**?**

प्रश्न **3.** अनुशीलन समिति और उसकी गतिविधियों पर टिप्पणी लिखें

प्रश्न **4.** निहिलिस्टों के विचारधारात्मक धारणाओं की चर्चा करें

इकाई पन्द्रह

अवधारणाएँ, नागरिक अवज्ञा, रामराज, खादी/सूती, व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता, राष्ट्रीय एकता

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 असहयोग

15.3.1 समकालीन दौर में असहयोग

15.4 सविनय अवज्ञा

15.5 रामराज

15.6 खादी/सूती

15.8 राष्ट्रीय एकता

15.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.11 सहायक ग्रन्थ सूची

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

गाँधी ने विचारधारा और औपनिवेशिक ताकतों के खिलाफ लड़ाई के तरीकों में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को बदल देने वाली भूमिका निभाई है। आजादी की लड़ाई में उनकी भूमिका और सत्य व अहिंसा पर उनका बल राष्ट्रीय आन्दोलन के गाँधीवादी दौर की पहचान है।

गाँधी अपने वैचारिक नजरिए पर गहरा भरोसा करते थे, और रस्किन, थोरो और टाल्स्टॉय को पढकर उन्होंने उसे परिपक्व किया था। शुरुआत में उन पर वैष्णव व जैन वैचारिक परम्पराओं का असर था। भागवत गीता ने भी उन पर गहरी छाप छोड़ी थी। बहरहाल, उनके वैचारिक विश्वास व तौर-तरीके निराले थे, और वे साध्य के लिए साधन की पवित्रता पर जोर देते थे।

गाँधी के विभिन्न आन्दोलनों को आप पहले ही पढ़ चुके हैं। वर्तमान इकाई में हमारी कोशिश गाँधीवादी आन्दोलनों की सैद्धान्तिक रूपरेखा को समझने की होगी। हम गाँधीवादी दर्शन में प्रयुक्त शब्दावली पर भी गौर करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- गाँधीवाद की कुछ बुनियादी शब्दावली का अर्थ जानेंगे
- इन विचारों की प्रेरणा और औचित्य की चर्चा करेंगे
- गाँधीवादी विचारधारा को समझेंगे और उसकी व्याख्या करेंगे

15.3 असहयोग

गाँधी ने असहयोग की तकनीक का औपनिवेशिक राज के खिलाफ लड़ाई में सफल प्रयोग किया गया था। वे अहिंसक असहयोग पर जोर देते थे, क्योंकि उनके विश्वास के अनुसार हिंसा के द्वारा हासिल सफलता अल्पकालिक होती है और उसकी परिणति अंततः और अधिक हिंसा में होती है। गाँधी मानते थे कि दबे-कुचलों को सामाजिक न्याय ताकत के जरिए नहीं हासिल होगा, बल्कि उनके उचित प्रशिक्षण से और अहिंसक तौर-तरीकों से हासिल होगा। इस रास्ते से उनके द्वारा भुगते गए अन्याय का सुधार संभव है, और इस स्थिति तक पहुँचने का साधन अहिंसक असहयोग है। कुछ मौकों पर असहयोग करना हमारा कर्तव्य होना चाहिए, जैसे आम तौर पर सहयोग करना होता है। गुलामी की परिस्थितियों में किसी को सहयोग नहीं करना चाहिए। दूसरों के प्रयासों से हासिल आजादी उन प्रयासों की वापसी पर जा सकती है। दूसरे शब्दों में ऐसी आजादी असली आजादी नहीं है। लेकिन आजादी की आभा दबे-कुचलों तक पहुँच सकती है अगर उन्हें अहिंसक असहयोग के रास्ते आजादी हासिल करने के लिए प्रशिक्षित किया गया हो।

असहयोग एक उचित और आदर्श साधन है, जिससे समस्याओं का समाधान संभव है। अगर असहयोग और उसके विभिन्न कार्यक्रम अहिंसा के दृष्टिकोण से किए जाएँ तो वह झगड़े के समाधान का पवित्रतम साधन हो जाता है।

महात्मा गाँधी ने भारत को औपनिवेशिक राज से आजाद कराने के लिए अहिंसक असहयोग का रास्ता अपनाया था। गाँधी के असहयोग आन्दोलन व सविनय अवज्ञा से लेकर भारत छोड़ो जैसे उनके आन्दोलन व विविध गतिविधियाँ और कार्यक्रम अहिंसक असहयोग से अभिन्न तौर पर जुड़े थे। गाँधीवादी अहिंसक असहयोग बहुमूल्य व कुशल साबित हुआ है और सामाजिक व नैतिक कल्याण का पक्षधर रहा है।

13 नवम्बर 1924 में यंग इन्डिया में असहयोग के बारे में लिखते हुए गाँधी ने कहा था कि यह लोगों के स्वाभिमान और ताकत को जगाने की एक कोशिश है। 5 अप्रैल 1939 को यंग इन्डिया में उन्होंने फिर कहा कि पाप से असहयोग करना वैसे ही हमारा एक कर्तव्य है जैसे भलाई से सहयोग करना। गाँधी चाहते थे कि असहयोग सिर्फ अहिंसक न हो, बल्कि किसी को दन्डित करने के भाव से भी मुक्त हो और घृणा, दुर्भावना, या नफरत पर आधारित न हो। दूसरे शब्दों में असहयोग के सिपाहियों को अपने दुश्मनों को दन्डित करने या नुकसान पहुँचाने की भावना से मुक्त रहना चाहिए।

गाँधी मानते थे कि अहिंसक असहयोग की सफलता जनता की ***'कष्ट की सहनशक्ति'*** पर निर्भर है।

असहयोग एक शक्तिशाली औजार है। लेकिन इसके लिए आत्मसंयम, अनुशासन, आत्मनियन्त्रण, धैर्य और अहिंसा की ताकत चाहिए।

गाँधी की अहिंसक असहयोग और सत्य पर जोर देने की विचारधारा विश्व के अनेक नेताओं की प्रेरणा स्रोत बनी। राजनीति की दुनिया में नेपाल के बिश्वेश्वर प्रसाद कोइराला (1914-1982), दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला (1918) और अमरीका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर जैसे नेताओं ने एक समतावादी और लोकतान्त्रिक दुनिया की अपनी लड़ाई में गाँधीवादी आदर्शों को आत्मसात किया और उन पर अमल किया है। समसामयिक विश्व के लिए गाँधी और गाँधीवाद की प्रासंगिकता अभी भी गाँधी की प्रासंगिकता विषय पर बार-बार होने वाले सेमिनार और बहस-मुबाहिसों में दिखती है।

- असहयोग बुराई का अहिंसक प्रतिरोध है। यह स्वाभिमान और सम्मान की रक्षा करने वाला कर्म है।
- यह आजादी और न्याय के लिए, किसी तरह की घृणा किए बगैर विरोधी से उसका सहयोग हासिल करने का तरीका है।
- असहयोग की सफलता लोगों में कष्ट सहने और आत्म-बलिदान करने की शक्ति पर निर्भर है।
- असहयोग का एक खास प्रयोजन है। उसे सत्य से अलग नहीं किया जा सकता।
- असहयोग न्याय और आजादी हासिल करने का साधन है।
- अहिंसा और शान्ति की तरह असहयोग एक जीवन्त शक्ति है। इसका चरित्र गतिशील है। यह शारीरिक बल से ज्यादा कारगर है।

गाँधी का असहयोग अपने विरोधी के मन में अन्याय और उत्पीड़न की निरर्थकता का एहसास कराने का साधन था। गाँधी अपने विरोधी का 'हृदय परिवर्तन' कराने पर जोर देते थे। वे मानते थे कि गलती का एहसास करने पर विरोधी को अपनी गलती सुधारने का हरेक मौका दिया जाना चाहिए। गाँधी का असहयोग विरोधी के खिलाफ नहीं बल्कि अन्यायपूर्ण और गलत विचारों के खिलाफ था। सत्य और अहिंसा के विचार गाँधी के जीवन के अभिन्न अंग थे। वे कहा करते थे कि कोई अतिमानवीय ताकत उनके पास नहीं है और जीवन की हरेक परिस्थिति में वे सत्य और अहिंसा का आश्रय लेते हैं।

15.3.1 समकालीन दौर में असहयोग

व्यक्ति व देश की न्याय व आजादी की लड़ाई में असहयोग की सफलता पर आज की दुनिया में काफी संशय बन गया है। असहयोग के आलोचक दावा करते हैं कि संघर्षो और समस्याओं के चरित्र में और लोगों के दृष्टिकोण में आए बदलाव के बाद आज असहयोग का हथियार अपनी धार खो चुका है।

ये तर्क प्रभावित भी करते हैं, क्योंकि समय और दृष्टिकोण वाकई बदल चुके हैं। लेकिन हम क्या यह भूल सकते कि समय और दृष्टिकोण भी गतिशील हैं, और अपनी जनता के लिए न्याय और लोकतन्त्र की लड़ाई जीतने के लिए अहिंसा और असहयोग का सफल इस्तेमाल (गाँधी से पहले) समाज सुधारकों और मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेलसन मंडेला द्वारा हो चुका है।

गाँधीवादी नजरिए में असहयोग सत्य का अनुसरण यानी सत्याग्रह है, और सामाजिक न्याय व आजादी हासिल करने का एक सीधा-सरल साधन। आज की दुनिया में झगड़ों व विवादों को नियन्त्रित करने, व सत्ता के दुरुपयोग व उत्पीड़न को रोकने के लिए बहिष्कार और प्रतिबन्ध जैसे अन्य उपाय भी कारगर हो रहे हैं, बशर्ते वे ईमानदारी और सतर्कता के साथ इस्तेमाल किए जाएँ।

आज दुनिया में देशों की अन्तर्निर्भरता काफी बढ़ गई है। संयुक्त राष्ट संघ (यूएनओ) जैसी संस्थाएँ अपने व्यवहार के जरिए नियत मानकों का उल्लंघन करने वाले सदस्य देशों पर पाबन्दियों के जरिए संघर्षों को रोकने की कोशिश कर रही हैं।

गाँधी के अहिंसक असहयोग का मकसद औपनिवेशिक राज के उत्पीड़न, तानाशाही और निर्ममता से भारत को आजाद कराना था। इस दौरान उन्होंने जनता की आपसी एकता और परस्पर सहयोग के विचारों पर भी बल दिया था। असहयोग की तकनीक इस तरह बुनी गई थी कि निराशावादी पक्षों और ध्वंसक प्रवृत्तियों पर जीत हासिल हो और संघर्षों को सहयोग में बदला जा सके।

स्वमूल्यांकित प्रश्न 1

अभ्यास: सही या गलत

क. गाँधी ने कहा था कि अच्छाई से सहयोग करने की तरह बुराई से असहयोग करना हमारा कर्तव्य है।

ख. असहयोग की सफलता लोगों की कष्ट सहने और आत्मबलिदान की शक्ति पर निर्भर करती है

ग. मार्टिन लूथर किंग जूनियर गाँधीवादी विचारों से प्रभावित थे।

घ. नेलसन मंडेला गाँधीवादी सिद्धान्तों से प्रभावित नहीं थे।

15.4 सविनय अवज्ञा

गाँधी ने अपने राजनीतिक व्यवहार को ही अपना राजनीतिक विचार बना दिया था। लेकिन, अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध और क्रान्तिकारी कार्यवाही से अहिंसा को जोड़ देना राजनीतिक चिन्तन में उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। वे हेनरी डेविड थोरो (1817-1862) से प्रभावित थे और सविनय अवज्ञा सम्बन्धी उनके विचारों के विकास में थोरो के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। थोरो इमर्सन के राजनीतिक दर्शन से प्रभावित थे और खुद इमर्सन के विचारों पर हिन्दू धार्मिक परम्पराओं की छाप थी। थोरो के लेखन में भी भागवत गीता द्वारा व्याख्यायित हिन्दू धर्म की

आध्यात्मिकता दिखती है। सरलता वह शब्द है, जो गाँधी और थोरो, दोनों के ही दर्शन को संक्षेप में अभिव्यक्त कर देता है। असहयोग की अवधारणा के लिए किसी नियमन, खासकर कानूनी नियमन की अवज्ञा जरूरी है, और इस अवज्ञा की परिणति किसी न किसी दन्ड के स्वरूप में होती है। अवज्ञा का स्वरूप सक्रिय या निष्क्रिय हो सकता है, लेकिन यह सक्रियता या निष्क्रियता सार्वजनिक तौर पर की जाए तभी वह सविनय अवज्ञा होती है। गुप्त अवज्ञा अपर्याप्त है। सविनय अवज्ञा की जानकारी सत्ता के प्रतिनिधियों को जरूर दी जानी चाहिए, ताकि उठाए गए व्यापक मुद्दों पर उनके विचार और रवैए प्रभावित करने की कोशिश सफल हो सके।

गाँधी ने अपने ऊपर थोरो के असर के बारे में यह लिखा थाः

''मैंने सविनय अवज्ञा का विचार थोरो से लिया है ऐसे दावों में कोई सच्चाई नहीं है। दक्षिण अफ्रीकी सत्ता के खिलाफ प्रतिरोध शुरू होने के बाद सविनय अवज्ञा पर थोरो के लिखे निबन्ध से मेरा परिचय हुआ था। लेकिन तब आन्दोलन को हम निष्क्रिय प्रतिरोध कहा करते थे। इस शब्दावली के निहितार्थ मुझे पर्याप्त नहीं लगते थे, इसलिए गुजराती पाठकों के लिए मैंने सत्याग्रह शब्द इस्तेमाल किया। बाद में, थोरो के महत्वपूर्ण लेख का शीर्षक देखकर अंग्रेजी पाठकों को अपनी लड़ाई समझाने के लिए मैंने उसका इस्तेमाल किया। लेकिन मैंने देखा कि हमारी लड़ाई का सम्पूर्ण निहितार्थ सविनय अवज्ञा के मुहावरे से व्यक्त नहीं होता इसलिए मैंने 'सविनय प्रतिरोध' शब्द का चुनाव किया था।'' (हरपिन्दर कौर की पुस्तक में उद्धृत)

दिसम्बर 1921 के यंग इन्डिया में गाँधी कहते हैं कि अगर अहिंसक चरित्र का ईमानदारी से पालन किया जाए तो सविनय अवज्ञा संवैधानिक आन्दोलन का शुद्धतम रूप बन जाएगा। जनवरी 1922 के यंग इन्डिया में गाँधी सविनय और आपराधिक अवज्ञा के फर्क को भी स्पष्ट तौर पर रेखांकित करते हैं। पहला, सविनय अवज्ञा के बाद किसी कीमत में अराजकता नहीं होनी चाहिए जबकि आपराधिक अवज्ञा के बाद ऐसी संभावना रहती है। दूसरा, कोई भी सत्ता खुद के अस्तित्व के लिए आपराधिक अवज्ञा का बलपूर्वक दमन अवश्य करेगी, जबकि सविनय अवज्ञा के दमन की कोशिश विवेक को जेल में डालने वाली होगी। तीसरा, सविनय प्रतिरोधकर्ता के अहिंसक होने के कारण जनमत के प्रति किसी न किसी रूप में संवेदनशील सत्ता उसको अपने लिए कोई खतरा नहीं देखती। हाँ, वह तानाशाह सत्ता के लिए अवश्य खतरा होता है। लेकिन जब सत्ता तानाशाह हो जाए तो अहिंसक अवज्ञाकारी को उसे स्वेच्छाचारी मानने का हक मिल जाता है। ऐसी सत्ता के साथ वास्ता रखने पर एक नागरिक भी सत्ता की स्वच्छाचारिता का भागीदार हो जाता है।

सविनय अवज्ञा के लिए ऐसे हरेक कानून का अन्तर्मन से कर्तव्यनिष्ठ पालन की पूर्वशर्त जरूरी है जो नैतिक या व्यक्तिगत आदर्शों के विरोधी न हों । सविनय अवज्ञा अराजकता नहीं है, और इसके लिए कानून पालन करने वाली भावना और आत्मनियन्त्रण का मेल जरूरी है।

गाँधी चाहते थे कि 'अवज्ञा' की तुलना में सविनय शब्द पर अधिक जोर दिया जाए। फरवरी 1922 में यंग इन्डिया में उन्होंने कहा था कि शिष्टाचार, अनुशासन, विवेक और अहिंसा के बगैर अवज्ञा एक निश्चित विनाश है।

सविनय अवज्ञा में व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा के लिए कष्ट सहने का निर्णय करता है। यह अहिंसक कष्ट है। गाँधी कहते हैं कि सविनय अवज्ञा अहिंसक दिखनी चाहिए, यहाँ तक कि विरोधी को भी। विरोधी को यही एहसास होना चाहिए कि प्रतिरोध का मकसद उसे नुकसान पहुँचाना नहीं है। गाँधी मानते थे कि अन्तरात्मा से विरोध करने वाले या सविनय प्रतिरोधी की ईमानदारी एक तानाशाह सत्ता को भी को दिखेगी और वह उसकी इज्जत करेगी, भले उसके प्रति वह कोई नरमी न दिखाए। प्रतिरोधी अगर सच्चा सत्याग्रही है तो वह सिर्फ अपने लिए कष्ट चुनता है, और उसे नरमी की जरूरत ही नहीं होती।

सितम्बर 1919 के यंग इन्डिया में गाँधी आक्रामक और रक्षात्मक सविनय अवज्ञा की तुलना करते हैं। आक्रामक या अपमानजनक सविनय अवज्ञा बाहर से अहिंसक होकर भी उच्छृंखल हो सकती है। खासकर तब, अगर उसके कानून पालन में नैतिक शक्ति न हो, और उसकी तरफ से अवज्ञा की कार्यवाही राजसत्ता के खिलाफ महज विद्रोह का लक्षण हो। रक्षात्मक सविनय अवज्ञा ऐसे कानूनों की स्वाभाविक अहिंसक अवज्ञा है जो स्वयं बुरे हैं, और इनका पालन व्यक्ति के आत्म सम्मान और मानवीय गरिमा दोनों के खिलाफ होगा। जब कोई कानूनी नियम झूठा हो, तो हमारा कर्तव्य बनता है कि हम उसकी अवज्ञा करें।

सविनय अवज्ञा के बारे में गाँधी का चिन्तन दो विचारों का मेल था- पहला, अपनी अन्तरात्मा के अनुसार प्रतिरोध में, जरूरी पड़ने पर किसी बाह्य सत्ता या बाधा के खिलाफ, कार्यवाही करने का हरेक मनुष्य का प्राकृतिक हक या सार्वभौमिक जिम्मेदारी; और दूसरा, राजसत्ता के कानूनों के पालन की शर्त पूरा करने वाले नागरिक की असामान्य मौकों पर किसी अन्यायपूर्ण कानून की अवज्ञा या अन्यायपूर्ण व्यवस्था से टकराने की जिम्मेदारी, और राजसत्ता के कानूनी प्रावधानों के तहत अपनी अवज्ञा के परिणामों को स्वीकार करने की सहर्ष सहमति।

जन सविनय अवज्ञा शान्त चित्त से की जानी चाहिए। चित्त की यह शान्ति शक्ति से निकलनी चाहिए, न कि ज्ञान की कमजोरी या अज्ञान से। दूसरी बात यह है कि, व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा परहित में हो सकती है, बल्कि अकसर होती है, जबकि जन सविनय अवज्ञा स्वार्थसाधने वाली हो सकती है, क्योंकि लोग अवज्ञा की कार्यवाही से व्यक्तिगत फायदे का हिसाब लगा रहे होते हैं, बल्कि अकसर लगाते हैं। उदाहरण देते हुए गाँधी बताते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में कालेनबक और पोल्का की सविनय अवज्ञा में निजी फायदे का कोई ख्याल न था, जबकि जिन अन्य लोगों ने अवज्ञा में भाग लिया था वे गिरमिटिया मजदूरों पर पशु जनगणना कर वापस लिए जाने के संभावित फायदे का हिसाब लगा रहे थे। गाँधी मानते थे कि जन सविनय अवज्ञा में प्रतिरोधी को इस सिद्धान्त की क्रियाशीलता की जानकारी होनी चाहिए। लोग अपने उन दावों के लिए सविनय अवज्ञा के अपने प्राकृतिक और कानूनी अधिकार का इस्तेमाल करते हैं, जिन्हें

एक नागरिक के बतौर वे अपना हक समझते हैं। जहाँ तक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाकारियों का सवाल है, तो वे महज अपना वह कर्तव्य कर रहे होते हैं जिसे वे अपनी अन्तरात्मा के दबाव के कारण करने पर बाध्य हैं।

अवज्ञा की सजा भुगतने की सहजता और प्रतिरोध आन्दोलन अहिंसा के जरिए चलाकर परिणाम हासिल करने का दृढ़ निश्चय दोनों तरह की अवज्ञा का समान तत्व है। मार्च 1930 के यंग इन्डिया में गाँधी कहते हैं कि सविनय अवज्ञा की परिकल्पना इस तरह की गई है कि वह हिंसा को शान्त करे और अन्ततः उसे पूरी तरह प्रतिस्थापित करते हुए अहिंसा को प्रतिष्ठापित करे, घृणा को प्यार से बदल दे, और वैमनस्य को सामन्जस्य से प्रतिस्थापित करे।

गाँधी व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और जन सविनय अवज्ञा की तुलना करते हुए कहते हैं कि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा में हरेक आदमी एक पूर्ण व स्वतन्त्र इकाई है, वहाँ किसी का पतन दूसरे पर असर नहीं डालता, हरेक प्रतिरोधी स्वयं अपना नेता होता है, असफलता असंभाव्य है और सत्ता सविनय अवज्ञा से नहीं निपट सकती। दूसरी ओर, जन सविनय अवज्ञा में किसी एक का भी पतन दूसरों पर असर डालता है, आमतौर पर नकारात्मक असर पड़ता है, वहाँ नेतृत्व का होना जरूरी है, असफल होने की संभावना रहती है और सत्ता उससे निपट सकती है।

15.5 रामराज

गाँधी अपने आदर्श समाज को समझाने के लिए रामराज शब्द का इस्तेमाल अकसर किया करते थे। महात्मा गाँधी राम के भक्त थे, जिन्हें कुछ लोग विष्णु का अवतार बताते हैं, और उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम यानी सामाजिक सीमाओं में सर्वोत्तम सम्भव मनुष्य भी कहने का चलन है। वे एक आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहिल भ्राता, निष्ठावान पति, और ईमानदार, सच्चे व न्यायप्रिय राजा थे। इसलिए रामराज एक ऐसी आदर्श व्यवस्था की छवि जगाती थी जो वर्ग विभेद, दुख, अभाव, लैंगिक विभेद, बीमारी से मुक्त है और जहाँ लोगों में भय, घृणा और जलन नहीं पाई जाती।

गाँधी के रामराज की अवधारणा के प्रति एक विभ्रम आम तौर पर मिलता हैः समझा जाता है कि रामराज से गाँधी अयोध्या के राजा राम के राज की बात कर रहे हैं। गाँधी ने साफ तौर पर कहा था कि उनका राम न तो अयोध्या का राजा राम है और न उनका रामराज दशरथ के बेटे राम के राज का पर्याय है। वे राम शब्द से ईश्वर की बस व्याख्या करते थे- वह ईश्वर जो 'शाश्वत, अजन्मा, और सिर्फ एक' है। गाँधी को ही ईश्वर मानते थे और रामराज शब्द का इस्तेमाल धरती पर ईश्वर के राज के लिए करते थे। धरती पर ईश्वर के राज को वे 'भविष्य के किसी स्वर्ग' में नहीं बल्कि वर्तमान समय में लोगों के लिए बनाना चाहते थे। 2 जनवरी 1937 को उन्होंने हरिजन में लिखा थाः

''राजनीतिक आजादी का अर्थ मैं ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स, रूस में सोवियत-शासन या इटली में फासीवादियों या जर्मनी में नाज़ियों के शासन की नकल नहीं समझता। इन लोगों ने अपनी मेधा के अनुरूप अपनी व्यवस्था बनाई। हमें अपने लिए ऐसी व्यवस्था चाहिए जो हमारे अनुकूल हो। इस व्यवस्था का मैं जो

भी वर्णन पेश करूँ वह व्यवहार में उससे व्यापक होगी। मैं उसे रामराज यानी शुद्ध नैतिक सत्ता पर आधारित जनता की सम्प्रभुता कहता हूँ।''

ऐसा अहिंसक समाज जो लोगों को आजादी, समानता और सामाजिक न्याय का सर्वोच्च स्वरूप उपलब्ध कराए, गाँधी का आदर्श समाज है। इस समाज की बुनियाद अहिंसा और सत्य के व्यवहार पर टिकी नैतिक कानून से बनेगी। राजसत्ता के बारे में भी गाँधी की अवधारणा लोकतान्त्रिक है। गाँधी के रामराज में जनता ही सम्प्रभु है, और वह अपने इस अधिकार को कुछ समय के लिए ही अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को देती है। दरअसल, जनता के बगैर संसद का कोई अस्तित्व या उसकी कोई सत्ता नहीं है। गाँधी राजसत्ता को मनुष्य की सेवा का एक साधन मानते थे। वे राजसत्ता की संचित ताकत से चिंतित थे, और थोरो के इस विचार का समर्थन करते हुए कहते थे कि सर्वोत्तम राज वही जहाँ राज न्यूनतम हो। गाँधीवादी सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना में मनुष्य सच्चे प्यार और त्याग की भावना रखने के कारण एक दूसरे के स्वाभाविक मददगार होते हैं। इस तरह राजसत्ता की गाँधीवादी धारणा यूटोपियन या काल्पनिक है।

गाँधी कल्पना करते थे कि उनके रामराज में आदर्श लोकतन्त्र रहेगा, और सम्पत्ति और सम्पत्तिविहीनता के अलावा नस्ल, लिंग और रंग आधारित असमानताएँ खत्म हो जाएँगी। उनके रामराज में सत्ता सभी मनुष्यों की ''अधिकतम भलाई'' करेगी। गाँधी के स्वप्न के अनुसार उनके रामराज की स्थापना से भारतीय समाज के सुविधाहीन, गरीब और दबे-कुचलों के सपने पूरे होंगे । वे कहते थे कि उनका रामराज मनुष्यों द्वारा निर्मित किसी भी सामाजिक व्यवस्था से बेहतर होगा।

गाँधी भगवान के मानवीय स्वरूप पर बल देते थे और अपनी इस धारणा के अनुरूप उन्होंने इस भजन को लोकप्रिय बनाया थाः रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम। नाथूराम गोड़से की गोली से मरने के पहले गाँधी ने अन्तिम शब्द के रूप में हे राम उच्चरित किया था। दिल्ली स्थित गाँधी की समाधि में फूलों के साथ यही दो शब्द खुदे दिखते हैं।

धरती पर गाँधी के उस रामराज की स्थापना, जिसके केन्द्र में धरती पर नेकी के राज की स्थापना का विचार था, वर्तमान दुनिया में एक दूर की कौड़ी लगती है। आज की दुनिया में ऐसा समाज इसलिए कोरी कल्पना है, क्योंकि यहाँ गरीबी, बदहाली, शोषण, अपराध, गलाकाट प्रतियोगिता, बीमारियाँ, वर्ग संघर्ष, उपभोक्तावादी लालच और संगी मनुष्यों, पशुओं और प्रकृति के प्रति असंवेदनशीलता सर्वत्र व्याप्त है।

इस सवाल पर कुछ विद्वानों ने गाँधी की आलोचना की है, और कहा है कि उनके लेखन में रामराज का जिक्र होने के बावजूद उसके निहितार्थों की कोई सटीक व्याख्या या परिभाषा नहीं मिलती। इस खास मुद्दे पर असंगतता के आरोप भी गाँधी पर लगे हैं। बहरहाल, गाँधी के लेखन में मौजूद रामराज की इन अवधारणात्मक कमजारियों, असंगतताओं

और अस्पष्टताओं और उनकी आलोचनाओं के बाबजूद, कुछ विचार उनकी रामराज या एक आदर्श व्यवस्था की परिकल्पना में साफ तौर पर देखे जा सकते हैं-

- गाँधी ने राम शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए किया था
- गाँधी के लिए सत्य ही ईश्वर था, और वे रामराज का प्रयोग धरती पर ईश्वर के राज के लिए करते थे
- गाँधी के रामराज का मतलब शुद्ध नैतिक शक्ति पर आधारित जनता की सम्प्रभुता थी।
- गाँधी के रामराज में आदर्श लोकतन्त्र और समानता की कल्पना की गई थी।
- रामराज सभी मनुष्यों की सर्वोत्तम भलाई सुनिश्चित करेगा।
- आज के समाज की बुराइयों के मद्देनजर गाँधी का रामराज यूटोपियन या काल्पनिक लगता है।

अभ्यास: सही या गलत

1. गाँधी का रामराज आदर्श समाज का चित्रण था।
2. गाँधी का रामराज यूटोपियन यानी काल्पनिक था।
3. गाँधी ने रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम भजन को लोकप्रिय बनाया था।
4. रामराज की अवधारणा को लेकर गाँधी पर असंगत और अस्पष्ट होने के आरोप लगे हैं।

15.6 खादी/सूती

खादी तकनीकी तौर पर हाथ से कते और बुने कपड़े को कहते हैं। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के गाँधीवादी दौर में कपड़ा बुनने से ज्यादा महत्व चरखे पर सूत कातने को मिला और खादी औपनिवेशिक राज के खिलाफ भारतीय आजादी का प्रतीक बन गई। इसके अलावा, खादी स्वदेशी की भावना जगाकर साम्राज्यवादियों की दैत्याकार शक्ति को चुनौती देने, और इस तरह भारतीय गाँवों का पुनर्जीवित करने का एक गाँधीवादी तरीका भी था।

खादी का गाँधीवादी कार्यक्रम स्वदेशी उत्पादन के जरिए आत्मनिर्भरता हासिल करने, और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में हरेक व्यक्ति की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने का एक औजार था। खादी अंग्रेज सत्ता के खिलाफ भारतीय एकता का प्रतीक भी थी, और कठिन व चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भारतीय आत्मनिर्भरता और गरिमापूर्ण जीवन का ताकतवर सन्देश थी।

गाँधी यह जानते थे कि अंग्रेजी व्यापार व व्यवसाय को बढ़ाने के लिए भारत के ग्रामीण उद्योगों को नष्ट किया गया है। ब्रिटेन से आयातित कपड़े ने भारत का विऔद्योगीकरण कर दिया था, जिससे भारतीय दस्तकारों को सांघातिक चोट पहुँची थी। सस्ते विदेशी कपड़े भारतीय दस्तकारों की व्यथा बढ़ा रहे थे। गाँधी मानते थे कि हाथ की कताई-बुनाई भारत के आर्थिक और नैतिक पुनर्जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। खेती के अलावा एक सम्पूरक कार्य के

बतौर कताई भारत के ग्रामीणों को भुखमरी और दरिद्रता से बचाने के भी काम आ सकती है। भारतीय गरीबी और दरिद्रता से वे इतना व्यथित थे कि उन्होंने अपना पहनावा भी पूरी तरह बदल दिया था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्बहाली के लिए पारम्परिक उद्यमों को पुनर्जीवित करना गाँधी जरूरी समझते थे।

खादी के जरिए आर्थिक पुनर्जीवन के इस कार्यक्रम में स्वदेशी की भावना पर काफी बल था। खादी, दरअसल, राष्ट्रवाद का प्रतीक बन गई। ग्रामीण जनता की आय बढ़ाकर खादी आर्थिक भूमिका निभाने के अलावा राष्ट्रवाद को बढ़ाकर राजनीतिक भूमिका, काम की गरिमा को स्थापित करके सामाजिक भूमिका व स्वयं कष्ट सहन करने की भावना के जरिए नैतिक उन्नयन की भूमिका भी निभा रही थी। गाँधी के लिए अगर स्वदेशी एक सैद्धान्तिक धारणा थी, तो खादी उसका मूर्त रूप।

गाँधीवादी दर्शन में हाथ की कताई और खादी राष्ट्रीय पुनर्जीवन के अभिन्न औजार माने गए हैं। इसका समर्थन वे निम्न कारणों से करते थेः

- इसे आसानी से सीखा जा सकता है
- जिनके पास समय है और आय की जरूरत है, उनके लिए यह सबसे सुलभ रोजगार है।
- इसको शुरू करने के लिए धन या पूंजी की जरूरत नहीं है।
- यह गाँवों में लोगों का निठल्लापन दूर करती है।
- अकाल और अभाव के दौर में यह तात्कालिक राहत दे सकती है।
- इसके जरिए विदेशी कपड़ों की खरीद से होने वाली राष्ट्रीय धन की विदेश निकासी को रोका जा सकता है।
- जनता में इसके प्रति नापसन्दगी नहीं है।
- जनता में आपसी सहयोग बढ़ाने का यह सबसे शक्तिशाली औजार है।

इस तरह, खादी लोगों की शिक्षित करने के लिए एक बहुउपयोगी औजार थी; गाँधी के लिए चरखा स्थानीय स्तर पर गाँवों के पुनर्जीवन का, राष्ट्रीय स्तर पर स्वराज का और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना का औजार थी। खादी का विकास गावों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकृत विकास का भी रास्ता खोलती थी। औपनिवेशिक राज की परिस्थितियाँ स्वदेशी उद्यमों और दस्तकारी को हर जरूरी मदद में बाधा पहुँचा रही थीं। जाहिर है कि इन प्रतिकूल परिस्थितयों में खादी और चरखे का गाँधीवादी आह्वान एक शक्तिशाली विकल्प था। इसके अलावा, खादी और ग्रामीण उद्योग की गाँधीवादी धारणा राष्ट्रीय आन्दोलन के एक कार्यनीतिक औजार के बतौर इतनी व्यापक थी कि वह सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक व नैतिक सिद्धान्तों को भी समाहित कर लेती थी।

गाँधी खादी को अहिंसा की बुनियाद और उसका प्रतिफलन मानते थे। उन्होंने कहा था कि सच्चा खादीवाला झूठ नहीं बोलता और हिंसा भी नहीं करता। इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में खादी महज कपड़ा नही रह गई थी, बल्कि विशिष्ट आदर्शो और मूल्यों का प्रचार करने वाली आजादी की पोशाक का रूप ले चुकी थी। खादी की स्वीकृति और उसकी नैतिक पहचान ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में खादी कार्यक्रम चलाए जाने का आधार प्रदान किया था। इसके अलावा, देशभक्ति में रंगी सादगी, सरलता और ईमानदारी की उन दिनों काफी साख थी। गाँधी की लोकप्रियता और करिश्मा भी खादी को स्वीकार्य बनाने और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का समर्थन जुटाने वाला महत्वपूर्ण स्रोत थी।

अरबिन्दो घोष खादी और चरखा के विचारों के लिए गाँधी की आलोचना किया करते थे। वे इसे ऊर्जा और समय की भारी बरबादी कहते थे। 1940 में, विश्वयुद्ध के दौरान, अरबिन्दो ने गाँधी से यह भी पूछा था कि क्या वे चरखा के जरिए सैनिक टुकड़ियों का मुकाबला करेंगे। एम.ए.जिन्ना ने भी चरखे के बल पर स्वराज जीत लेने के गाँधी के दृष्टिकोण की आलोचना की थी। बाद के दिनों में तो नेहरू भी गाँधी के इस विचार पर एक आलोचनात्मक रवैया रखने लगे थे। खादी या हाथ की बुनाई की सैद्धान्तिक आलोचना यह थी कि इससे न सिर्फ सूती मिलें बल्कि सभी मशीनें भी बन्द होंगी, और यह व्याख्या बहुतों को परेशान करती थी क्योंकि यह सूरत उन्हें 'आदिम व्यक्तिवाद' की ओर ले जाने वाली लगती थी।

खादी जितना हाथ के कते-बुने कपड़े के निर्माण और इस्तेमाल के बारे में थी, उतना ही वह उपभोक्तावाद और विकास की एक नैतिक आलोचना थी। यह एक राजनीतिक घोषणा के अलावा एक परोपकारी व्यवसाय भी था। हालाँकि गाँधी के दमदार समर्थन के कारण ही खादी को पहचान और प्रसिद्धि मिली। गाँधी खादी में भारतीय लोगों की एकता और उनकी आर्थिक आजादी व समानता का प्रतीक देखते थे।

15.8 राष्ट्रीय एकता

भारत भाषा, साहित्य, पहनावे, धार्मिक समुदायों, त्योहारों, खानपान, चिन्तन के तौर-तरीकों और जीने के ढंग के मामलों में भारी विविधताओं वाला देश है। औपनिवेशिक दौर से ही कहा जाता रहा है कि भारत एक देश नहीं है। जाहिर है कि यह विचार साम्राज्यवादियों के लिए बेहद मुफीद था, क्योकि यह विचार उनके लिए भारतीय समाज में मौजूद मतभेदों को रेखांकित करते हुए एक समुदाय को दूसरे से लड़ाने का खेल खेलना आसान कर देता था। अंग्रेज कुछ मिथकों को गढ़ने के जरिए प्रचारित करते थे कि कोई खास समुदाय किसी विशेष पेशे के लिए ही बना है, मसलन सिखों को लड़ाका कौम बताया गया था, तो एंग्लो इन्डियन समुदाय को रेल, डाक व तार विभागों के लिए मुफीद बताया गया था, और कुछ को तो प्राकृतिक तौर पर आपराधिक बताते हुए उन्हें 'अपराधी समुदाय' घोषित कर दिया गया था। भारत पहले एक देश नहीं था और उसे एक देश बनने में अभी सैकड़ों बरस लगेंगे, इस तरह के विचार वर टिप्पणी करते हुए गाँधी ने कहा था कि अंग्रेजों द्वारा पोषित इस विचार में कोई सच्चाई नहीं है।

गाँधी को इस बात का एहसास था कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय एकता के लिए अमीरों और गरीबों के बीच की खाई को पाटना जरूरी है। इस परिपेक्ष्य में गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। यह गाँधी की सर्वोदय यानी सबकी अधिकतम भलाई वाली धारणा में भी अन्तर्निहित है। गाँधी हर तरह के शोषण को खत्म करने और समाज के सबसे निचले पायदान पर स्थित लोगों तक आर्थिक फायदा पहुँचाने की वकालत करते हैं। वे कहते थे कि भौतिक सम्पदा के उत्पादकों को 'ट्रस्टियों' की तरह व्यवहार करते हुए देश के भले के लिए संसाधनों का इस्तेमाल करना चाहिए। आर्थिक निर्भरता के अपने कार्यक्रम के जरिए गाँधी हरेक व्यक्ति का आर्थिक उन्नयन करने की मंशा रखते थे। ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की वकालत करने के लिए यह कहकर गाँधी की आलोचना की गई है कि उनका यह विचार एक तरह से पूंजीपति वर्ग का ही पक्षपोषण करता है।

देश में अनेक भाषाएँ होने के कारण कभी-कभार भाषा का सवाल जनता में संघर्ष का कारण बन जाता है और इस आधार पर क्षेत्रीय उग्रराष्ट्रवाद सिर उठाने लगता है। भाषा के सवाल में निहित विभाजनकारी प्रवृत्तियों को गाँधी ने पहचाना था। उन्हें लगता था कि जनता के आम इस्तेमाल के लिए भारत में एक साझी भाषा का विकास किया जाना चाहिए। गाँधी की खुद की मातृभाषा गुजराती थी, फिर भी वे बलपूर्वक कहते थे कि अगर भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो केवल हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा बनाया जा सकता है।

10 सितम्बर 1938 को हरिजन में गाँधी ने कहा था कि सर्वभारतीय राष्ट्रवाद का केन्द्र विकसित करने के लिए हमें प्रान्तीयतावाद के बन्द खोल तोड़ने होंगे। उन्होंने सवाल किया था कि ''क्या भारत एक देश और एक राष्ट्र है या वह अनेक देश और अनेक राष्ट्र है?' गाँधी की समझ अंग्रेजी शिक्षित और अंग्रेजी समर्थक विशिष्ट भारतीयों और आम जनता के बीच बढ़ती खाई पर बार-बार जा टिकती थी। अंग्रेजी भाषा प्रतिष्ठा का प्रतीक थी। हालाँकि गाँधी अंग्रेजी भाषा के विरोधी नहीं थे, लेकिन वे उसके इस्तेमाल के प्रति अधिक व्यावहारिक समझ रखते थे।

1 फरवरी 1948 के हरिजन में गाँधी ने लिखा था कि बाहरी विश्व हमें तमिल, मराठी और गुजराती के रूप में नहीं बल्कि केवल भारतीय के रूप में जानता है। इसलिए गाँधी ऐसे प्रान्तीयतावाद के खिलाफ थे जो भारतीय एकता के लिए खतरा पेश करे। गाँधी यह समझ गए थे कि सत्ता हथियाने वाले प्रान्त और भाषा के नाम पर अलगाव भड़का सकते हैं, इसलिए वे त्रिभाषा फार्मूले जैसे सन्तुलित दृष्टिकोण की वकालत करते थे।

गाँधी की अपील उनके द्वारा उत्पीड़ित और वंचित जनता के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेने में निहित थी। उनके रचनात्मक कार्यक्रम, छुआछूत निर्मूलन के उपाय और हिन्दू-मुस्लिम एकता की कोशिशें राष्ट्रीय एकता के उनके दृष्टिकोण को उजागर करते हैं। वे औपनिवेशिक शासकों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए देश में आपसी झगड़े भड़काने वाली 'बाँटो और राज करो' नीति के प्रतिकूल वातावरण के बीच राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदारी कर रहे विभिन्न तबकों के साझा हितों को पहचानने के प्रबल समर्थक थे।

गाँधी कानून या किसी बाह्य ताकत के जोर पर एकता के पैरोकार नहीं थे। वे एकता की अन्दरूनी ताकत बढ़ाने के लिए नैतिक ताकत और मूल्यों पर जोर देते थे। अल्पसंख्यकों के साथ गाँधी ने अपना तादात्म्य विचार और व्यवहार दोनो ही स्तर पर हासिलि किया था। वैसे भी, विश्वास, कर्म, विचार और व्यवहार के बीच सन्तुलन गाँधीवादी दर्शन की विशिष्टता थी।

वे एक समुदाय को दूसरे से अलग करने वाली साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों के खिलाफ थे। वे देश के सभी अल्पसंख्यकों के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके थे और राष्ट्रीय एकता पर लगातार बल देते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े विभिन्न तबकों के फर्क की अनदेखी करने के लिए गाँधी की आलोचना की जाती है। लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि विभिन्न हितों वाले इतने विविधतापूर्ण समुदायों को साथ लेकर चलना एक दुस्साध्य कार्यभार था। गौरतलब है कि आधुनिक इतिहास में (सत्य और अहिंसा पर एकांतिक जोर देने वाला) कोई जननेता ऐसा नहीं हुआ जिसके प्रभाव में इतने ज्यादा लोग इतने ज्यादा समय तक साथ-साथ चले हैं।

अनीमा बोस (1989) कहती हैं कि अलग-अलग धर्म, अलग-अलग भाषा, और अलग-अलग जातीय समूहों के अस्तित्व के कारण कोई देश एक राष्ट्र के रूप में खत्म नहीं हो जाता। बल्कि, जैसा गाँधी मानते थे, कोई देश एक राष्ट्र महज तब बनता है जब वहाँ विविधतापूर्ण स्थितियाँ मौजूद हों।

प्रश्न 1 अभ्यासः सही या गलत

क. गाँधी ने त्रिभाषा फार्मूला की वकालत की थी।

ख. गाँधी जनता के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल रहे थे।

ग. गाँधी हिन्दी/हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के पक्ष में थे।

घ. गाँधी साम्प्रदायिकता के खिलाफ थे।

15.9 स्वमूल्यांकित प्रयनों के उत्तर

15.3.1 के उत्तरः क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. गलत।

15.5 के उत्तरः 1 . सही, 2 . सही, 3 . सही, 4 . सही।

15.8 के उत्तरः क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही।

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बक्शी, एस.आर. (1987) गाँधी एन्ड आइडियोलॉजी ऑफ स्वदेशी, रिलायंस पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. बजाज, प्रेम नाथ (1980), द शैडो ऑफ रामराज्य ओवर इन्डिया, स्पार्क पब्लिशर्स, दिल्ली
3. बौरी, हिमांशु (2004), गान्धियन फिलासफी एन्ड द न्यू वर्ल्ड आर्डर, अभिजीत पब्लिकेशन, दिल्ली

4. बोस, अनीमा (1989), अ गान्धियन पर्सपेक्टिव आन नेशनल इन्टीग्रेशन, वीटी पाटिल इत्यादि, न्यू डाइमेन्शन एन्ड पर्सपेक्टिव्स इन गान्धिज्म, इन्टर इन्डिया पब्लिकेशन, दिल्ली

5. गाँधी, एम.के. (प्रथम प्रकाशन 1947), इन्डिया ऑफ माई ड्रीम्स, (आर.के. प्रभु द्वारा संकलित), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

6. गाँधी, एम.के. (1938), सेन्ट पर्सेन्ट स्वदेशी, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

7. अंयर, राघवन एन.(2000), द मॉरल एन्ड पोलिटिकल थाट आफ महात्मा गाँधी, ओयूपी, दिल्ली

8. कौर, हरपिन्दर, (1989), गान्धीज कन्सेप्ट आफ सिविल डिसओबीडिएन्सः अ स्टडी विद अ स्पेशल रेफरेन्स टु थोरोज इन्फ्लुएन्स आन गान्धी, इन्टेलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

9. कुमार, रवीन्द्र (2009), नॉन कोआपरेशन, वर्ल्ड पीस मूवमेन्ट ट्रस्ट, मेरठ

10. पारिख, गीतान्जलि (2011), हिस्ट्री आफ खादी, एनबीटी, दिल्ली

11. पृथी, आ.के. और चतुर्वेदी, अर्चना (2009), सोशल फिलासफी आफ महात्मा गाँधी, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, दिल्ली

12. पृथी, आ.के. और चतुर्वेदी, अर्चना (2009), पर्सपेक्टिव्स आन गान्धियन थाट्स, कॉमनवेल्थ, दिल्ली

13. रामागुन्डन, राहुल (2008) गान्धीज खादी, अ हिस्ट्री आफ कन्टेन्शन एन्ड कन्शीलिएशन, ओरिएन्ट लान्गमैन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली

14. यंग इन्डिया, नवम्बर 13, 1924 यंग इन्डिया इंग्लिश वीकली, नवजीवन, अहमदाबाद

15.11 सहायक ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम.के., माई एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रुथ (चौथा संस्करण, 1983), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

2. गाँधी, एम.के., हिन्द स्वराज या इन्डियन होम रूल (1996, प्रथम संस्करण 1909) नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. गाँधीवादी असहयोग की अवधारणा को स्पष्ट करें

प्रश्न 2. सविनय अवज्ञा की अवधारणा को स्पष्ट करें।

प्रश्न 3. व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और जन सविनय अवज्ञा के फर्क को स्पष्ट करें।

प्रश्न 4. रामराज की अवधारणा पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

प्रश्न 5. गाँधी ने खादी और हाथ की कताई का समर्थन क्यों किया था।

इकाई सोलह

विभाजन, साम्प्रदायिकता, संविधान, रैडक्लिफ रेखा, गणतन्त्र, लोकतन्त्र

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 साम्प्रदायिकता

16.3.1 साम्प्रदायिकता और उसका तन्त्र

16.3.2 साम्प्रदायिकता से जुड़े मिथक

16.4 संविधान

16.4.1 संविधानों के वर्गीकरण

16.4.2 भारतीय संविधान की निर्माण प्रक्रिया

16.4.3 संविधान का लागू होना

16.4.4 भारतीय संविधान का चरित्र

16.4.5 भारतीय संविधान किस हद तक संघीय है

16.4.6 भारतीय संविधान का आमुख

16.5 विभाजन

16.5.1 विभाजन के गुनहगार कारक

16.5.2 विभाजन- साहित्य और सिनेमा

16.6 रैडक्लिफ रेखा

16.7 गणतन्त्र

16.7.1 लोकतन्त्र का व्यावहारिक अनुभव

16.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

16.9 ग्रन्थ सूची

16.9 सहायक ग्रंथ सूची

16.10 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको उन अवधारणाओं से परिचित कराना है जो आजादी और उसके बाद के दौर में महत्वपूर्ण रही हैं। हमने कोशिश की है कि इन अवधारणाओं के अलावा उनके ऐतिहासिक प्रसंग से भी आप परिचित हो सकें।

पिछली इकाइयों का आपका अध्ययन मौजूदा इकाई की जानकारियों को ठोस ढंग से आत्मसात करने में सहायक होगा। इन अवधारणाओं की चर्चा के बाद ऐतिहासिक घटनाओं की अपनी पुरानी समझ को आप एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे।

छात्रों से अपेक्षा है कि इन अवधारणाओं को वे वर्तमान सन्दर्भ से भी जोड़कर देखेंगे, क्योंकि अधिकांश अवधारणाएँ ऐसे मुद्दों से जुड़ी हैं जो समसामयिक राजनीति, समाज और संस्कृति के लिए आज भी प्रासंगिक हैं।

16.2 उद्देश्य

- साम्प्रदायिकता की अवधारणा और भारत-विभाजन से उसके जुड़ाव की जानकारी देना।
- संविधान के महत्व पर चर्चा और उसके उन बुनियादी तत्वों की व्याख्या करना जो संविधान का बुनियादी ढाँचा निर्मित करते हैं।
- गणतन्त्र और लोकतन्त्र की अवधारणाओं के महत्व को जानना
- रैडक्लिफ रेखा के निर्माण और उसके सम्पूर्ण प्रसंग को समझना

16.3 साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता शब्द हम अकसर सुनते हैं। सुनने में यह शब्द काफी सीधा सा लगता है लेकिन दरअसल काफी विरोधाभाषी है। 20वीं सदी की यह एक मुख्य विभाजनकारी परिघटना बन चुकी है, और 1947 में भारत-विभाजन के लिए भी जिम्मेदार है। बिपन चन्द्र इसकी विस्तार से चर्चा करते हैं, और बताते हैं कि साम्प्रदायिकता एक विश्वास या विचारधारा है, जिसकी क्रियाशीलता में तीन बुनियादी अवस्थाएँ दिखती हैं।

क. साम्प्रदायिकता की पहली अवस्था इस प्रचार से क्रियाशील होती है कि किसी एक धर्म के अनुयायियों के हित एक समान होते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी एक धार्मिक समुदाय के लोगों के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक हित भी समान होंगे। मसलन, दावा किया गया कि हिन्दू जमींदार और एक हिन्दू भूमिहीन मजदूर के हित इसलिए समान हैं क्योंकि दोनों हिन्दू (या मुसलमान अथवा सिख) हैं। इस तरह, यह सामाजिक-राजनीतिक समुदाय को धर्म के आधार पर देखने, परिभाषित करने के विचार पर बल देता है।

ख. साम्प्रदायिक विचारधारा की दूसरी अवस्था इस प्रचार के साथ क्रियाशील होती है कि किसी धार्मिक समुदाय के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित किसी दूसरे धार्मिक समुदाय के हितों से अलग हैं। मसलन, सभी मुसलमानों के हित सभी हिन्दुओं से अलग हैं और, इसका उलट सभी हिन्दुओं के हित भी सभी मुसलमानों से भिन्न हैं।

ग. साम्प्रदायिक विचारधारा की क्रियाशीलता विकास की एक तीसरी और चरम अवस्था में तब पहुँचती है जब विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के लौकिक हितों को परस्पर असंगत और विरोधी होने का दावा किया जाने लगता है। अब, साम्प्रदायिक तत्व दावा करते हैं कि हिन्दू और मुसलमान सामन्जस्य के साथ रह ही नहीं सकते क्योंकि उनके लौकिक हित परस्पर विरोधी हैं। इस तरह, धर्म को किसी समुदाय या धार्मिक समूह के लौकिक हितों का निर्णायक आधार बता दिया जाता है। धर्म को व्यक्ति की पहचान का सर्वप्रमुख निर्धारक बताय जाता है। असल दुनिया में व्यक्ति बहु-पहचान वाला है, लेकिन साम्प्रदायिक प्रचार में इस हकीकत को नकारा जाता है, और उसके धर्म को ही उसके हितों और पहचान का एकमात्र प्रतीक बना दिया जाता है। हालाँकि, व्यक्ति अपनी जाति, क्षेत्र, महाद्वीप इत्यादि के आधार पर भी पहचाना जाता है। मसलन, राजस्थान के किसी ब्राह्मण को राजस्थान में ब्राह्मण के बतौर पहचाना जाता है, राजस्थान के बाहर उसे राजस्थानी कहा जाता है, एशिया में जाने पर वही व्यक्ति भारतीय कहलाता है और यूरोप या अमरीका में उसे एशियाई कहा जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि स्थान बदलने से भी इंसान की पहचान बदल जाती है।

यह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक विचारधारा के विकास और क्रियाशीलता की तीनों अवस्थाएँ लोगों के लौकिक हितों के आधार की एक गलत व्याख्या पर टिकी हैं, और हकीकत से कोसों दूर हैं। साम्प्रदायिक व्यक्ति के चश्मे से चीजों को देखने पर व्यक्ति की केवल धार्मिक पहचान दिखती है और उसकी दूसरी तमाम पहचान ढक दी जाती है। ऐसा होते ही साम्प्रदायिकता का तान्डव शुरू हो जाता है।

भारत में साम्प्रदायिकता धार्मिक सवाल के बजाय एक राजनीतिक सवाल के बतौर उभरी। उपनिवेशवाद ने इस दैत्य को उर्वर जमीन मुहैय्या कराई। अंग्रेजों की 'बाँटो और राज करो' की नीति के बल पर ही साम्प्रदायिकता देश में ताकतवर बनकर उभरी। 1857 के विद्रोह ने अंग्रेजों को एहसास करा दिया था कि अपनी रोटी सेंकने के लिए हिन्दू-मुसलमान के संयुक्त मोर्चे को तोड़ना जरूरी है। इसलिए, विद्रोह के बाद उन्होंने पहले हिन्दुओं को और बाद में मुसलमानों को अपना संरक्षण देने की चाल चली, और दोनों समुदायों के बीच खाई खोदने का काम शुरू किया। उन्होंने 'फूट करो और राज करो' की साम्राज्यवादी नीति का कारगर इस्तेमाल किया, ताकि उनके खिलाफ 1857 जैसा कोई दूसरा विद्रोह संगठित न किया जा सके।

बिपन चन्द्रा (1993) कहते हैं कि साम्प्रदायिक विचारधारा ऊपर बताई गई पहली विचारधारात्मक अवस्था से अपनी यात्रा शुरू करती है। विचारधारा की इस अवस्था में वे खुद को राष्ट्रवादी न कहकर राष्ट्रवादी हिन्दू या राष्ट्रवादी मुसलमान कहना शुरू करते हैं, और इस मुगालते में रहते हैं कि साम्प्रदायिक विचारधारा की दूसरी या उसकी चरम अवस्था से उनका कुछ लेना देना नहीं है। साम्प्रदायिक विचारधारा की दूसरी अवस्था में, जिसे उदार या नरम साम्प्रदायिकता का दौर कहा जा सकता है, व्यक्ति साम्प्रदायिकता में विश्वास और अमल करने के साथ-साथ कुछ लोकतान्त्रिक, राष्ट्रवादी, उदारपंथी और मानवीय मूल्यों का भी समर्थन करता है। धर्म के आधार पर समुदायों के अलगाव पर भरोसा करते हुए भी व्यक्ति मानता और सार्वजनिक तौर पर स्वीकार करता है कि समुदायों के विरोधी हितों में धीरे-धीरे सामन्जस्य लाते हुए व्यापक राष्ट्रीय हितों व भारत के राष्ट्रीय ढाँचे में उनका समावेश करना संभव है। 1937 के पहले की मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, 1925 के बाद अली भाई, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद अली जिन्ना, लाला लाजपत राय और 1922 के बाद एन.सी. केलकर, यानी साम्प्रदायिक विचारधारा वाले अधिकांश व्यक्ति व संगठन, इसी उदार साम्प्रदायिकता वैचारिक ढाँचे के तहत कार्य कर रहे थे।

तीसरी यानी क्रियाशीलता की अपनी चरम अवस्था में साम्प्रदायिक विचारधारा भय और घृणा बोने लगती है, और राजनीतिक विरोधियों के प्रति आक्रामक और शत्रुता की भाषा का खुला इस्तेमाल करती है। विभाजन के पहले साम्प्रदायिकता की इस अवस्था में साम्प्रदायिक तत्वों ने घोषित कर दिया कि हिन्दू व उनकी संस्कृति, पहचान, धर्म, इज्जत, और मुसलमान व उनकी संस्कृति, इस्लाम और पहचान पराए धर्म से कत्ल हो जाने का खतरा झेल रहे हैं। यही नहीं, साम्प्रदायिक तत्व यह भी कहने लगे कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं (द्विराष्ट्र का सिद्धान्त), और उनकी आपसी शत्रुता असमाधेय है और अब अलग-अलग राष्ट्रों में रहना ही उनकी नियति है। 1937 के बाद मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा इसी दृष्टिकोण को अपना चुके थे।

16.3.1 साम्प्रदायिकता और उसका तन्त्र

एक विचारधारा के बतौर साम्प्रदायिकता भावनाएँ और तनाव भड़काती है, और कुछ मौकों पर साम्प्रदायिक राजनीति का सहारा पाकर वह साम्प्रदायिक हिंसा में बदल जाती है। इसलिए, एक हथियार के बतौर साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल करते हुए वे देखे गए हैं जिन्हें इसका फायदा मिला, साम्प्रदायिकता के सुलगने से जिनके हित सधे और जिन्होंने इसके जरिए अपने राजनीतिक मकसद हासिल किए।

साम्प्रदायिकता उनके लिए एक मूल्य में बदल गई जिन्होंने इस पर भरोसा किया, और इसके आदर्शों को आत्मसात करते हुए उन्हें अपने जीवन का अंग बनाया। ऐसे लोग साम्प्रदायिक विचारधारा और प्रचार पर अपनी गहरी आस्था के कारण लाभ हासिल नहीं कर सके, बल्कि उन साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा शिकार बना लिए गए जो अपने निहित स्वार्थों के लिए उनका इस्तेमाल कर रहे थे।

एक इलाके के सभी समुदायों के लोगों के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित एक थे। दूसरी तरफ, भाषा, सामाजिक हैसियत, वर्ग, क्षेत्र, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं, और खानपान व पहनावे के मामले में वे स्पष्ट तौर पर अपने धर्मावलम्बियों से भिन्न और दूसरे धार्मिक समुदायों के साथ समान थे। एक उच्च वर्गीय हिन्दू और उच्च वर्गीय मुसलमान अपने धर्म के निम्नवर्गीय व्यक्ति की तुलना में सांस्कृतिक तौर पर अधिक समान थे। गुजराती हिन्दू की तुलना में एक पंजाबी हिन्दू पंजाबी मुसलमान से ज्यादा सांस्कृतिक समानता रखता था, और इसी तरह पंजाबी हिन्दू की तुलना में गुजराती मुसलमान भी गुजराती हिन्दू के साथ ज्यादा समानता रखता था।

16.3.2 साम्प्रदायिकता से जुड़े मिथक

विरोधाभाषी होने के कारण साम्प्रदायिकता के साथ अनेक मिथक जुड़ गए हैं:

क. साम्प्रदायिकता कोई धार्मिक मुद्दा नहीं है। साम्प्रदायिकता धार्मिक भिन्नता का भी परिणाम नहीं है। मध्यकाल में भी हिन्दू और मुसलमान धर्म के मामले में भिन्न थे, लेकिन इस भिन्नता को साम्प्रदायिक रंग औपनिवेशिक समय में ही दिया गया है।

ख. साम्प्रदायिकता भारतीय समाज का अन्तर्निहित गुण नहीं थी। वह आधुनिक काल की विशिष्ट परिस्थिति और सामाजिक शक्तियों के संयोजन का परिणाम थी। यह साम्राज्यवादी मानसिकता और विचारधारा का भी नतीजा थी जो औपनिवेशिक राज की राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही थी। दूसरे शब्दों में, यह अनेक कारकों के एक विशिष्ट संयोजन का परिणाम थी, जिसके कारण यह नमूदार हुई और सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे द्वारा पोषित की जाने लगी।

प्रश्न 1 अभ्यास: सही या गलत

क. साम्प्रदायिकता आधुनिक दौर की कुछ खास परिस्थितियों और ताकतों का परिणाम थी।

ख. साम्प्रदायिकता एक धार्मिक मामला नहीं है।

ग. अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति वह आधार थी जिसका सहारा लेकर साम्प्रदायिकता आगे बढ़ी।

घ. एक इलाके के सभी समुदायों के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित समान होते हैं।

16.4 संविधान

संविधान देश के आदर्शों और आकांक्षाओं को सँजोने वाला वह दस्तावेज है जिसे विशिष्ट कानूनी प्राधिकार हासिल रहता है। देश के शासन के लिए यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, बल्कि उसके प्रशासन के लिए अपरिहार्य है। यह प्रशासन एवं अन्य मसलों के लिए एक सामान्य निर्देशक रूपरेखा मुहैया कराता है। संविधान के प्राधिकार का स्रोत

स्वयं देश की जनता है। उदाहरण के लिए, भारतीय दन्ड संहिता और भारतीय संविदा अधिनियम विधायिका ने बनाए हैं, लेकिन स्वयं विधायिका का गठन सविधान के तहत होता है।

16.4.1 संविधानों के वर्गीकरण

संविधान कई तरह के हैं, जिनमें कुछ ऐसे हैं:

क. क्रमिक तौर पर विकसित और अधिनियमितः क्रमिक तौर पर विकसित संविधान किसी खास समय में विहित नहीं होते, जबकि अधिनियमित संविधान किसी खास तिथि में अंगीकृत और अधिनियमित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत किया गया और 26 नवम्बर 1950 को लागू हुआ।

ख. लिखित और अलिखितः लिखित संविधान वह है जिसके प्रावधान एक कानूनी दस्तावेज के रूप में संहिताबद्ध हैं। दूसरी तरफ, एक अलिखित संविधान के प्रावधान लिखित होते हुए भी किसी एकल कानूनी दस्तावेज में संहिताबद्ध नहीं मिलते। इंगलैन्ड और न्यूजीलैन्ड के संविधान इसके उदाहरण हैं। लिखित संविधान राज्य के सभी अंगों, मसलन कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का गठन अपने तहत करता है, जबकि अलिखित संविधान विधायिका द्वारा निर्मित होता है।

ग. लचीला और जड़ः एक लचीला संविधान अपने प्रावधानों में संशोधन की व्यवस्था करता है जबकि जड़ संविधान के प्रावधानों को बदलना काफी कठिन होता है। सभी अलिखित संविधान लचीले हैं, जबकि लिखित संविधान लचीले और जड़ दोनों किस्म के होते हैं।

घ. एकात्मक या संघीयः एकात्मक संविधान में केवल एक सरकार यानी सम्प्रभु सरकार होती है, जबकि संघीय संविधान वाली व्यवस्था में दोहरी यानी केन्द्रीय और संघीय सरकारों की व्यवस्था होती है। आम तौर पर सभी अलिखित संविधानों में एकात्मक सरकार का प्रावधान है जबकि लिखित संविधान केन्द्रीय या संघीय सरकारों की व्यवस्था में किसी का भी चयन कर सकते हैं।

16.4.2 भारतीय संविधान की निर्माण प्रक्रिया

6 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा गठित की गई थी। डा. राजेन्द्र प्रसाद इसके सभापति चुने गए थे। कैबिनेट मिशन (1946) के प्रस्तावों में संविधान सभा की व्यवस्था शामिल की गई थी। इस संविधान सभा ने कई समितियों का गठन किया, जिनमें कुछ इस प्रकार थीं:

- संघीय संविधान की समिति
- मसौदा समिति
- मूलभूत अधिकारों की समिति

- अल्पसंख्यकों के विशेष प्रावधानों के लिए समिति
- उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की समिति
- संघीय शक्तियों की समिति

मसौदा समिति में सात सदस्य शामिल किए गए थे। डा. बी.आर. अम्बेडकर इस समिति के सभापति थे। इसका कार्यभार विभिन्न समितियों का समन्वय करना था। इस समिति ने संविधान को संयोजित और व्यवस्थित किया।

16.4.3 संविधान का लागू होना

पूर्ण स्वराज प्रस्ताव की बीसवीं वर्षगाँठ 26 जनवरी 1950 के दिन संविधान को लागू किया गया। हालाँकि संविधान के कुछ अंश 26 नवम्बर 1949 को ही लागू हो गए थे। इनके उदाहरण निम्नवत हैं:

- नागरिकता
- राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी प्रावधान
- देश की अन्तरिम संसद यानी संसद मान ली गई संविधान सभा सम्बन्धी प्रावधान।

16.4.4 भारतीय संविधान का चरित्र

भारतीय संविधान अर्धसंघीय है, यानी वह ऐसा संविधान है जो संघीय लगते हुए भी पूरी तरह संघीय नहीं है। संघ के होने का मतलब केन्द्र व राज्य सरकारों के रूप में सरकार के दोहरे स्वरूप की मौजूदगी है। यहाँ राज्य और केन्द्र सरकार एक दूसरे की अधीनता में काम नहीं करतीं, बल्कि परस्पर सहयोग करते हुए भी स्वतन्त्र हैं। किसी संघ में इन बुनियादी तत्वों का होना अनिवार्य है:

क. केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का बँटवारा: यानी केन्द्र और राज्य की सूचियाँ। संविधान की 7वीं अनुसूची में ये सूचियाँ दी गई हैं।

ख. संविधान की सर्वोच्चता: संविधान के प्रावधान केन्द्र और राज्य सरकारों पर बाध्यकारी है। ऐसा न होने पर संविधान का बुनियादी ढाँचा टूट सकता है और संघ भी खत्म हो जा सकता है।

ग. लिखित संविधान: क्योंकि इसके बगैर राज्य और केन्द्र की शक्तियों का बँटवारा मुमकिन नहीं है।

घ. संविधान का स्थायित्व: संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन आसान नहीं है। उसकी यह जड़ता और संविधान की सर्वोच्चता आपस में जुड़े हैं। जड़ता का मतलब है कि केन्द्र और राज्य दोनों से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों को बदलना अपेक्षाकृत कठिन है। हालाँकि दूसरे लिहाज से इसमें लचीलापन मौजूद है।

च. न्यायालयों का प्राधिकारः उच्चतम न्यायालय केन्द्र और राज्य के मतभेदों का निपटारा करता हैं। न्यायालय द्वारा संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने का प्राधिकार यह भी तय कर देता है कि केन्द्र और राज्य एक दूसरे के कार्यक्षेत्र का उल्लंघन न करें।

16.4.5 भारतीय संविधान किस हद तक संघीय है

दुनिया के किन्हीं दो देशों के संविधान एक समान नहीं हो सकते। क्योंकि संविधान वह गतिशील और जीवन्त दस्तावेज है, जो देश के उस लक्ष्य और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करता है, जिसकी जड़ें देश की सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में रहती हैं।

- एक सविधानः यानी एकल कानूनी दस्तावेज में संहिताबद्ध
- एकल नागरिकताः यह अपने नागरिकों को एकल नागरिकता प्रदान करती है।
- राज्यों को अपनी सीमाओं की अनुल्लंघनीयता का हक नहीं। संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद किसी राज्य का नाम, सीमा या क्षेत्र परिवर्तित करने का अधिकार रखता है। केन्द्र की अनुमति के बगैर भारत में राज्य अपना अस्तित्व बरकरार नहीं रख सकते।
- शक्तियों का वितरणः केन्द्र के पक्ष में एकपक्षीय है। सभी महत्वपूर्ण कराधिकार केन्द्रीय सूची में हैं (केवल बिक्री कर राज्य सूची में है)। राज्य अपने वित्तपोषण के लिए केन्द्र पर निर्भर हैं। अन्य विषयों की सूची केन्द्र के अधीन है। आम तौर पर राज्य सूची के विषय राज्य के अधीन रहते हैं लेकिन असाधारण परिस्थितियाँ हों तो केन्द्र इन विषयों में भी दखल कर सकता है। उदाहरण के तौर पर धारा 352 के तहत आपातकाल लागू होने या धारा 356 के तहत राष्ट्रपति शासन होने पर राज्य के सभी विषय केन्द्र के पास चले जाते हैं।

16.4.6 भारतीय संविधान का आमुख

यह संविधान की भूमिका है, और संविधान का सारांश भी। यह भारतीय जनता के आदर्शों व आकांक्षाओं और संविधान की विषयवस्तु और उसके दर्शन को व्यक्त करता है, इसलिए यह संविधान का सार व उसका आइना है। संविधान का दर्शन दरअसल स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आदर्शों को ही अभिव्यक्त करता है। उच्चतम न्यायालय ने इसे 'संविधान निर्माताओं के मष्तिष्क को उजागर करने वाली चाबी' कहा है। संविधान के आमुख में कहा गया हैः

''हम भारत के लोग भारत को एक सम्प्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाने के लिए और उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और उपासना की आजादी; प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए और व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए; दृढसंकल्प होकर

अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 को एतद्द्वारा अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

संविधान का आमुख भारतीय जनता के आदर्शों व आकांक्षाएँ को अभिव्यक्त करता है- आदर्श सम्प्रभुता, समाजवाद, लोकतन्त्र और गणतन्त्र हैं, जबकि न्याय, समानता, आजादी और बन्धुत्व आकांक्षाएँ या चार राजनीतिक मूल्य हैं। इसमें अधिनियमन की धारा यानी 26 नवम्बर 1949 का जिक्र है। यह घोषित करता है कि सम्प्रभुता लोगों में निहित है और संविधान की सारी शक्ति और प्राधिकार का स्रोत जनता है। मूलभूत अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्व इन मूलभूत सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के विस्तृत प्रावधानों का जिक्र करते हैं। संविधान नागरिकों के मूलभूत कर्तव्यों का भी उल्लेख करता है। वह संसद, उच्चतम व उच्च न्यायालयों की शक्तियों व कार्यों का भी ब्योरा देता है।

अभ्यास: सही या गलत

क. मसौदा समिति ने संविधान सभा की विभिन्न समितियों के कार्यों का संयोजन किया था।

ख. संविधान का आमुख जनता के आदर्शों और आकाक्षाओं को अभिव्यक्त करता है।

ग. भारतीय संविधान एक अलिखित संविधान है।

घ. भारतीय संविधान दोहरी नागरिकता का प्रावधान करता है।

16.5 विभाजन

1947 का विभाजन भारत के आधुनिक इतिहास को बदल देने वाली घटना है। और उसके आधुनिक इतिहास की सर्वाधिक दुखद घटना भी। दो अलग-अलग राष्ट्रों, भारत और पाकिस्तान, का बनना कोई मामूली भौगोलिक विभाजन न था, इसने लोगों के दिलों के बीच खाई खोदी और जनता की साझा संस्कृति का बँटवारा कर दिया।

16.5.1 विभाजन के गुनहगार कारक

- अंग्रेजों की 'बाँटों और राज करो' की नीति
- धार्मिक सुधार आन्दोलन और उसके साम्प्रदायिक निहितार्थ
- साम्प्रदायिकता को भड़काने के लिए सरकारी सेवाओं का तिकड़मी प्रश्रय
- शिमला मिशन (1 अक्टूबर, 1906) और साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों को मान्यता
- मुस्लिम लीग की स्थापना (30 दिसम्बर, 1906) व उसकी साम्प्रदायिक राजनीति
- हिन्दू महासभा और उसकी साम्प्रदायिक राजनीति
- द्विराष्ट्र का सिद्धान्त

भारत के विभाजन पर इतिहासकार और समाज विज्ञानी बहस करते रहे हैं। विभाजन से जुड़े अनेक मुद्दे भी अकसर न खत्म होने वाली बहस का सबब बनते रहे हैं। पहले, अकादमिक हलकों में विभाजन की अनिवार्यता बहस का सर्वप्रमुख मुद्दा हुआ करता था। लेकिन आजकल अकादमिक हलकों में विभाजन को एक घटना के बजाय प्रक्रिया के रूप में समझने पर जोर बढ़ गया है।

मुशीरुल हसल बताते हैं कि द्विराष्ट्र का सिद्धान्त विभाजन को हिन्दुओं और मुसलमानों की असमाधेय शत्रुता का समाधान करने वाला एक तार्किक और अपरिहार्य परिणाम मानता था। विभाजन को साम्राज्यवादी शासकों की ''बाँटो और राज करो'' नीति के नतीजे के रूप में भी देखा गया है। इसके अलावा, इसे विभाजनकारी राजनीति और साझा मूल्यों व प्रतीकों पर 'सामुदायिक पहचान थोपने वाली' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग की राजनीति का परिणाम भी माना गया है।

बलात्कार, अपहरण और हत्या की घटनाएँ भारतीय विभाजन के दौर में नासूर की तरह उगी दिखती हैं। उस दौर में, जबकि धर्मान्धता का दैत्य धरती को रौंद रहा था, मानवीय घृणा और पाशविक भावों का ऐसा खूंखार मंजर दिखा, जो मानवता के इतिहास पर एक अमिट कलंक है। धर्म और देशभक्ति के नाम पर की गई सम्पत्ति की लूट और विनाश, अपहरण और औरतों के बलात्कार, अकथनीय व अवर्णनीय उत्पीड़न और अमानवीयता, मानव इतिहास में बर्बरता और नृशंसता के पुराने इतिहास को भी शर्मसार करती थी। महिलाओं पर मँडराता खतरे का साया, लोगों का विस्थापन और बेघर होना, लोगों के पुनर्वास की दिक्कतें, शारीरिक हिंसा झेले लोगों का दर्द, शरणार्थी की पीड़ा जैसे बेसुमार जख्म विभाजन के मारे लोगों के भावनात्मक जगत में स्थाई तौर पर चस्पा हो गए थे।

उजड़ना और विस्थापित किया जाना कोई मामूली भौगोलिक दर्द नहीं होता। आर्थिक दरिद्रता और शारीरिक आघातों के अलावा भी, अपनी ही धरती पर विस्थापित कहलाने के दर्द जैसे अन्य भावनात्मक पहलू भी होते हैं, जिन्हें आज स्मृतियों के इतिहास के अन्तर्गत गहराई से जाँचा जा रहा है। पेन्डेरल मून के अनुसार 45 लाख हिन्दू और 60 लाख मुसलमान मार्च 1948 तक शरणार्थी बन गए थे। स्वतन्त्र भारत के हिन्दू-मुसलमानों के आपसी सम्बन्धों पर विभाजन का घना साया आज भी छाया है।

विभाजन के दर्द से जुड़ा एक मामला उन महिलाओं को बचाने और पुनर्वासित करने का था, जिनका उस दौर में अपहरण किया गया था। अपनी किताब मूल सुत उखड़े में उर्वशी बुटालिया ने इस दर्द को अभिव्यक्त किया है। विभाजन के दौरान अपहरित महिलाओं को खोजने के सामाजिक काम से जुड़ी कमलाबेन पटेल के अनुसार विभाजन के दौरान लगभग 75 हजार महिलाओं का अपहरण और बलात्कार किया गया था।

16.5.2 विभाजन- साहित्य और सिनेमा

आजकल जोर विभाजन को एक घटना के बजाय एक प्रक्रिया की तरह अध्ययन करने पर है। अभिलेखीय स्रोतों की जगह वैकल्पिक स्रोतों पर जोर दिया जा रहा है। यह पद्धति विभाजन के अध्ययन के लिए निजी डायरियों, पत्रों, पर्चों, संस्मरणों और साक्षात्कार जैसे वाचिक स्रोतों का इस्तेमाल करती है। इतिहास लेखन में साहित्य को भी स्रोत बनाया जा रहा है। दूसरी तरफ, हिन्दी सिनेमा भी विभाजन के अनुभवों के चित्रण के लिए साहित्य का इस्तेमाल कर रहा है। गरम हवा फिल्म इस्मत चुगताई की कहानी, तमस भीष्म साहनी के उपन्यास, पिन्जर अमृता प्रीतम के उपन्यास, 1947 अर्थ बापसी सिधवा के उपन्यास आइस कैन्डी मैन और ट्रेन टु पाकिस्तान खुशवन्त सिंह के उपन्यास पर आधारित हैं। विभाजन के विभिन्न पहलुओं पर इन फिल्मों द्वारा पेश सिने चित्र विभाजन के अनुभवों की जटिलता को समझने में काफी मददगार हैं।

आजादी के बाद के शुरुआती वर्षों में इन विषयों पर अधिक फिल्में नहीं बनी थीं। छिन्नमूल (1948), लाहौर (1949), कश्मीर हमारा है (1950) और कश्मीर (1950) जैसी फिल्में ही इसका अपवाद हैं। विभाजन का पहला संजीदा चित्रण पेश करने की कोशिश एम.एस. सथ्यू द्वारा उनकी फिल्म गरम हवा (1973) में की गई थी। फिल्म इस्मत चुगताई की कहानी पर आधारित थी और इप्टा के साथ करीबी रिश्ते रखने वाले कैफी आजमी ने स्वयं इसकी पटकथा लिखी थी। कैफी आजमी एक मशहूर शायर और लेखक होने के अलावा 1943 में बनाए गए उस इन्डियन पीपुल थिएटर्स एशासिएशन यानी इप्टा से जुड़े थे, जिसका मकसद ऐसे थिएटर को स्थापित करना था, जो न सिर्फ लोगों के लिए बल्कि लोगों के द्वारा भी मंचित किया गया हो। इप्टा ने कुछेक फिल्मों के निर्माण और वितरण की भी कोशिशें की थीं। गरम हवा विभाजन और उसके बाद के दौर में आगरा के एक मुसलमान परिवार की दुश्वारियों का चित्रण करती है, वह देश छोड़कर पाकिस्तान जाने को लेकर उसकी दुविधा व कशमकश और अन्ततः भारत में बने रहने के उसके निर्णय को सामने लाती है। गोविन्द निहलानी की तमस एक टीवी सीरियल है जिसमें हिंसा, निजी तकलीफों, नुकसान और अपनी जमीन से उजड़ने के दर्द का चित्रण है।

1984 के दंगे और भारत के विभिन्न हिस्सों में सिखों के जनसंहार, 1990 के दशक की शुरुआत में बम्बई के दंगे, 2002 के गुजरात दंगे, 2005 में उत्तर प्रदेश के मऊ के दंगे ऐसी गम्भीर घटनाएँ हैं जो विभाजन की याद दिलाती हैं। बाम्बे (1995), फिज़ा (2002), देव (2003) कुछ फिल्में हैं जो उस साम्प्रदायिक कत्लेआम से हमें रूबरू कराती हैं जिसे हम विभाजन कहते हैं। हिंसा व शारीरिक चोटें और दिलों की भयावह पीड़ा इन फसादों के भुक्तभोगियों या गवाहों की जिन्दगी में न भुलाई जा सकने वाली यादों के रूप में हमेशा जिन्दा रहता है।

लैंगिकता और लैंगिक रिश्ते आज के चर्चित विषय हैं। विभाजन के समय महिलाओं द्वारा झेला गया दर्द भी अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है। आजकल हिंसा और खूनखराबे के बीच महिलाओं पर बरसने वाले खतरों का विस्तृत

अध्ययन किया जा रहा है। उर्वशी बुटालिया (1988) ने यह तथ्य उजागर किया है कि कैसे साम्प्रदायिकता के दौर में महिला देह विजेताओं की कीमती जायदाद बना दी जाती है और समुदायों के बीच लड़ाई महिलाओं की देह पर लड़ी जाती है। सुवीर कौल (2001) बताते हैं कि भारत-पाकिस्तान के क्रिकेट मैचों के दौरान प्रदर्शित कट्टरता को देखने से लगता है मानो विभाजन का 'अधूरा काम' अब पूरा किया जा रहा है। ऐसी अनेक घटनाओं का जिक्र मिलता है जहाँ विधर्मियों और अन्य समुदायों के लोगों के हाथ अपनी इज्जत गँवाने के बजाय कुएँ में कूद कर महिलाएँ अपनी जान गँवाना पसन्द करती हैं। तमस (1987) में इस तरह का दृष्य देखने के बाद यह बात 'प्रतिष्ठा का प्रतीक' बना दी गई। खामोश पानी (2003) में भी इज्जत के लिए कुएँ में कूदने का दृष्य है। यही नहीं, हमलावरों से इज्जत बचाने के नाम पर पुरुषों ने अपने परिवार और समुदाय की महिलाओं की खुद ही हत्या कर डाली है। बलात धर्मान्तरण और विवाह के जरिए भी हिंसा की यह दास्तान आगे बढ़ाई गई है।

अध्ययन का एक और महत्वपूर्ण मुद्दा दिल-दिमाग का वह दर्द है, जिसे अपने अन्तर्मन में ढोते हुए हिंसा और खूनखराबे की गवाह एक समूची पीढ़ी जीने के लिए अभिशप्त है। वयस्क होने के बाद इस पीढ़ी के लोग साम्प्रदायिक सवालों पर अधिक संवेदनशील दिखते हैं। इनमें कुछ लोगों ने लेखन या सिनेमा के जरिए अपने अनुभवों को सार्वजनिक तौर पर अभिव्यक्त भी किया है। उनके इस सृजन से लोग विभाजन की एक बेहतर समझ बना पाए हैं। सिनेमा के क्षेत्र में साम्प्रदायिक हिंसा के सीधे शिकार और बाद में अपने काम से चर्चित होने वाले लोगों ने विभाजन के बारे में अपनी समझ और अन्तर्दृष्टि से लोगों की समझ बढ़ाने में बहुमूल्य योगदान दिया है। इनमें गोविन्द निहलानी, श्याम बेनेगल, ऋत्विक घटक, गुलज़ार, भीष्म साहनी जैसी चर्चित शख्सियतों से सारे लोग परिचित हैं। (गोविन्द निहलानी की तमस और श्याम बेनेगल की मम्मो विभाजन के दर्द को अभिव्यक्त करती है, जबकि बेनेगल की जुबैदा भी विभाजन की पृष्ठभूमि में बनाई गई है)।

हम देख सकते हैं कि निजी डायरियों, पत्रों, पर्चों, संस्मरणों और साक्षात्कारों के मौखिक स्रोत ने विभाजन की नई दृष्टियाँ विकसित करके इतिहास को समृद्ध किया है। विभाजन पर रचे गए भारतीय साहित्य ने विभिन्न भाषाओं में विभाजन के दर्द को स्वर दिया है। सादत हसन मन्टो, राजिन्दर सिंह बेदी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, भीष्म साहनी जैसे लेखकों ने विभाजन की पीड़ा से सबको परिचित कराया है। इसके अलावा, समाज के संवेदनशील तबकों पर की गई हिंसा, नुकसान, बेघर होने का दर्द, बलात निर्वासन, आर्थिक दुश्वारियाँ, धर्म के नाम पर की गई तमाम अमानवीयताओं का हिन्दी सिनेमा द्वारा किया गया चित्रण उस पीड़ा को सबकी पीड़ा बनाने में सहायक रहा है।

अभ्यास: सही या गलत

क. अंग्रेजों की बाँटो और राज करो की नीति विभाजन के लिए जिम्मेदार थी।

ख. साम्प्रदायिकता के उभार ने देश को विभाजन की ओर नहीं धकेला।

ग. इन्डियन पीपुल थिएटर्स एसोशिएशन (इप्टा) का गठन 1947 में हुआ था।

घ. तमस नाम का टीवी सीरियल भीष्म साहनी के इसी नाम वाले उपन्यास पर आधारित था।

16.6 रैडक्लिफ रेखा

रैडक्लिफ रेखा की घोषणा 17 अगस्त 1947 को हुई थी। यह औपिनिवेशिक शासन से मुक्ति और विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान की सीमा रेखा बनने वाली थी। इस सीमा रेखा का नाम उसे बनाने वाले सीमा आयोग के चेयरमैन सर सीरिल रैडक्लिफ के नाम पर रखा गया था। सीमा निर्धारण का काम सँभालने वाले सर सीरिल रैडक्लिफ एक अंग्रेज वकील थे, जो सीमा निर्धारण के लिए गठित दोनों आयोगों के प्रमुख बनाए गए थे।

आयोग ने सीमा का निर्धारण बेहद हड़बड़ी में किया, और इस काम में स्थानीय पस्थितियों को आम तौर पर नजरअन्दाज किया। वैसे भी, रैडक्लिफ भारतीय परिस्थितियों या भूगोल से अपरिचित थे। सुमित सरकार (1983) बताते हैं कि साम्प्रदायिक दृष्टि में कुछ रणनीतिक और आर्थिक चिन्ताओं के घालमेल से बनी रणनीति के कारण भारी गड़बड़ियाँ पैदा हुई। पंजाब में मुस्लिम बहुल गुरदासपुर, बंगाल में मुर्शिदाबाद और नदिया (और कलकत्ता भी) के छूटने से मुसलमान असन्तुष्ट हुए, तो, दूसरी ओर, लाहौर, खुलना की नहर कॉलोनी, बौद्ध बहुल चटगाँव पहाड़ियों के छूटने से हिन्दू गमज़दा हुए।

विभाजन की संभावना को देखते हुए 3 जून 1947 की माउंटबेटेन योजना में एक सीमा आयोग के गठन का प्रावधान शामिल किया गया था। देश के सभी दलों ने इसे स्वीकार किया। बंगाल और पंजाब दोनों प्रान्तों के लिए एक-एक सीमा आयोग बनाया गया। भारत पाकिस्तान के सीमा निर्धारण के लिए रैडक्लिफ को छह सप्ताह का समय दिया गया था।

यही नहीं, गवर्नर जनरल और वायसराय लार्ड माउन्टबेटेन द्वारा सीमा आयोग के फैसले की घोषणा रोके रहने से विभाजन और कष्टकारी बन गया। सीमा आयोग का फैसला 12 अगस्त 1947 को ही तैयार हो गया था, लेकिन भविष्य की जटिलताओं के मद्देनजर माउन्टबेटेन ने इसकी घोषणा टाल रखी थी। उनके इस कदम से अधिकारियों और नागरिकों में भ्रम बढा। अमृतसर और लाहौर के बीच रहने वाले लोगों ने अपने इस भरोसे के कारण घर नहीं छोडा़ कि वे भावी सीमा के अन्दर रहेंगे। बाद में लोगों के विस्थापन से भ्रम बढ़ा और वह हत्याओं, जनसंहार और बलात्कार की घटनाओं में तब्दील हो गया।

अधिकारी स्वयं अपने स्थानान्तरण के चक्कर में उलझे थे और कानून और व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पा रहे थे। 15 अगस्त से 3 दिसम्बर 1947 के दरमियान भारतीय सेना के कमान्डर इन चीफ का पद संभालने वाले लैकहार्ट ने यह स्वयं स्वीकार किया था कि सिविल और सैनिक सेवाओं के हरेक पद पर अधिकारियों की तैनाती दोनों

देशों में अगर स्वतन्त्रता की घोषणा के पहले कर दी जाती तो शायद इतनी हिंसा और खूनखराबे से बचा जा सकता था।

प्रश्न 1, अभ्यास: सही या गलत

क. 3 जून 1947 की माउन्टबैटेन योजना में सीमा आयोग के गठन का प्रावधान किया गया था।

ख. लैकहार्ट 15 अगस्त 1947 से 3 दिसम्बर 1947 के बीच भारतीय सेना के कमान्डर इन चीफ थे।

ग. रैडक्लिफ रेखा भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा रेखा है।

घ. अंग्रेज वकील सर सीरिल रैडक्लिफ पंजाब और बंगाल के बँटवारे की सीमा निर्धारण करने वाले आयोग के मुखिया थे।

16.7 गणतन्त्र

गणतन्त्र उस सरकार को कहते हैं जहाँ राज्य के क्रियाकलाप शासकों की निजी पसन्द से तय नहीं किए जाते बल्कि वे सार्वजनिक मामले होते हैं। यहाँ सार्वजनिक पदाधिकारी वंशानुगत न होकर निर्वाचित या नियुक्त किए जाते हैं।

शास्त्रीय युग में राजाओं और सम्राटों के शासन काल के बीच स्थापित रोम गणतन्त्र को ही गणतन्त्र का आदर्श प्रतीक माना गया था। बाद में, मान्टेस्क्यू ने लोकतन्त्र (जहाँ शासन नागरिक भागीदारी से चलता है) और कुलीनतन्त्र (जहाँ चन्द लोग राज करते हैं) को भी गणतन्त्र जैसा शासन बताया था।गणतन्त्रों में कार्यपालिका की वैधता के लिए संविधान और सार्वजनिक मताधिकार की व्यवस्था रहती है। गणतन्त्र आम तौर पर एक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य होता है।

आजादी के लड़ाके औपनिवेशिक राज से मुक्ति के लिए ही तो लड़ रहे थे। संविधान ने भारत को एक लोकतान्त्रिक देश घोषित किया। आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। यहाँ ऐसी सरकार है जहाँ नागरिकों के निर्वाचित प्रतिनिधि ही देश का शासन चलाते हैं, जहाँ जनता ही सर्वोच्च व सम्प्रभु है। निर्वाचन करने की आजादी लोकतन्त्र का मूल गुण है।

लोकतन्त्र इन परिस्थितियों की मौजूदगी पर निर्भर करता हैः **क.** भिन्न धारणाओं और दलों का सहअस्तित्व; **ख.** सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार; **ग.** बहस और विचारविमर्श की स्वतन्त्रता का हक; **घ.** स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनावों की नियमित प्रणाली; **च.** नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की गारन्टी।

भारतीय संविधान ने लोकतन्त्र के एक नए दौर का आगाज़ किया। भारत एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बना- न्याय, आजादी, समानता और बन्धुत्व की भावना से प्रेरित। संविधान का आमुख, राज्य के नीति निर्धारक तत्व, मूलभूत अधिकारों की घोषणा और सार्वभौमिक मताधिकार की व्यवस्था संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं और आदर्शों को प्रतिबिम्बित करते हैं। सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर देश में चुनाव होते हैं,

जिनमें 18 साल या उससे ज्यादा का हरेक नागरिक, जाति, वर्ग, लिंग, नस्ल या धर्म की भिन्नता के बावजूद मतदान करने का समान अधिकारी माना जाता है।

16.7.1 लोकतन्त्र का व्यावहारिक अनुभव

वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों वाली सरकार का ढाँचा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का लोकतंन्त्रीकरण करने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल थी। भारतीय राजनीति बहुदलीय प्रणाली पर आधारित व्यवस्था है। यहाँ अनेक दल चुनावी प्रतिद्वन्द्विता में उतरते हैं। 'सर्वाधिक मत वाले की जीत' की व्यवस्था के आधार पर राजनीतिक प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं। 'सर्वाधिक मत वाले की जीत' वह व्यवस्था है जो सर्वाधिक मत पाने वाले उम्मीदवाद को विजयी घोषित करती है। दूसरे शब्दों में, किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में सर्वाधिक मत पाने वाला उम्मीदवार विजयी होगा, और उसकी जीत में उसे मिलने वाला मत-प्रतिशत मायने नहीं रखता। हालाँकि, धीरे-धीरे, राजनीतिक दलों के कुछ हिस्से भ्रष्टाचार और अवसरवाद अपनाने लगे हैं, और नतीजतन राजनीति का अपराधीकरण हुआ है। इसलिए, कानून और व्यवस्था चलाने का काम भी दूभर हो रहा है, क्योंकि कानून तोड़ने वाले संसद और विधानसभाओं का चुनाव लड़ते हैं, चुनाव जीतते हैं, जिसके कारण प्रशासन कमजोर होता है और राजनीति का स्तर गिरता है।

सैद्धान्तिक तौर पर तो भारत में हरेक व्यक्ति को अधिकार व विशेषाधिकार हासिल हैं, लेकिन व्यवहारिक दुनिया का सच इससे अलग है, जहाँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में भारी असमानता व्याप्त है। समाज में असमानता का एक बड़ा कारण अशिक्षा भी है। बहरहाल, धनी और निर्धनों के बीच की खाई यहाँ काफी चौड़ी है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, निजीकरण और ग्लोबलाइजेशन ने देश की जनता में व्याप्त आर्थिक असमानता को और गम्भीर बनाया है। धनिकों द्वारा गरीबों का शोषण देश की हकीकत है, और सबके साथ समान व्यवहार की घोषणा के आदर्श पर चलने वाले एक समावेशी लोकतन्त्र के हित में इसे दुरुस्त करने की जरूरत है।

आजादी के कई दशकों के बीतने के बाद गरीबी, बेरोजगारी, शुद्ध पेय जल की असमान उपलब्धता, सफाई या स्वास्थ्य-सुविधाओं की कमी जनजीवन के बुनियादी सवाल बने हुए हैं। वोट बैंक बढ़ाने के लिए जाति का राजनीतिक इस्तेमाल भी एक आम बात बन चुकी है। 21वीं सदी के भारत में दलितों का उत्पीड़न गम्भीरता के साथ विद्यमान है। आतंकवादी हिंसा देश के लिए खतरनाक हो गई है और इन आतंकवादी हमलों में होने वाली मौतें हमारे लिए चुनौती बन चुकी हैं।

इस तरह की गम्भीर कमियों के बावजूद कई मायनों में भारत द्वारा की गई प्रगति उल्लेखनीय है। हरित क्रान्ति के जरिए खाद्यान्नों के मामले में देश आत्मनिर्भर हुआ है। हालाँकि, इस प्रयास में कीटनाशकों और पानी का अत्यधिक इस्तेमाल भी हुआ है, जिसके कारण मिट्टी की लवणता बढ़ी है, भूजल-स्तर गिरा है, और धनी व गरीब किसानों के

बीच असमानता बढ़ी है। लोग चुनावों में अपनी भागीदारी बढ़ाकर सरकारों के चुनाव में अपनी ताकत का एहसास करा रहे हैं। पिछले दशकों में अर्थव्यवस्था भी तेज रफ्तार से आगे बढ़ी है। हालाँकि आर्थिक विकास की रफ्तार को मानवीय साक्षरता, स्वास्थ्य, और स्वच्छता सम्बन्धी मानवीय सूचकांकों के विकास के साथ सन्तुलित किए जाने की जरूरत भी उभरकर सामने आई है। इसके अलावा, आज पर्यावरणीय चिन्ताओं पर भी ठीक से ध्यान देने की जरूरत है ताकि हम अपने पर्यावरणीय क्षरण को कम कर सकें । बेशक, भविष्य को निगाह में रखने वाले टिकाऊ विकास के माडल को हमें आज अपनाने की जरूरत है।

साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अलगाववाद, आतंकवाद एवं अन्य विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ लोकतान्त्रिक परम्पराओं के लिए खतरा हैं, और लोकतन्त्र के स्वप्न को जिन्दा रखने के लिए हमें इन पर नियन्त्रण कायम करना होगा। सरकार, गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) और नागरिकों को देश के समग्र विकास की खातिर मिलकर काम करना होगा। हम देश में जरूरी इस रूपान्तरण को शान्तिपूर्ण, लोकतान्त्रिक और कानूनी तरीकों से हकीकत में बदल सकते हैं।

प्रश्न अभ्यास: सही या गलत

क. अब्राहम लिंकन ने लोकतन्त्र को जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार बताया था।

ख. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था द्विदलीय व्यवस्था है।

ग. संसद और विधानसभाओं के प्रतिनिधि 'सर्वाधिक मत विजयी' प्रणाली के जरिए निर्वाचित किए जाते हैं।

घ. श्वेत क्रान्ति के जरिए भारत ने खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भरता हासिल की है।

16.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

16.3.2 के उत्तर - क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही।

16.4.6 के उत्तर - क. सही, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत

16.5.2 के उत्तर - क. सही, ख. गलत, ग. गलत, घ. सही।

16.6 के उत्तर - क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही।

16.7.1 के उत्तर - क. सही, ख. गलत, ग. सही, घ.गलत।

16.9 ग्रन्थ सूची

1. बसु, दुर्गादास (2012, 20वाँ संस्करण), इन्ट्रोडक्शन टु द कान्स्टीट्यूशन आफ इन्डिया, लेक्सिस नेक्सिस, दिल्ली

2. बुटालिया, उर्वशी (1998), द अदर साइड आफ साइलेन्सः वॉइसेज फ्रॉम द पार्टीशन आफ इन्डिया, पेन्गुइन इन्डिया, दिल्ली

3. चन्द्रा, बिपन एवं अन्य (1993), इन्डियाज स्ट्रगल फार इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

4. ग्रोवर बीएल, और ग्रोवर एस. (1998, 16वाँ संस्करण), एन इन्ट्रोडक्शन टु माडर्न इन्डिया, एस चन्द एन्ड कम्पनी, दिल्ली

5. हसन, मुशीरुल, संपादक, (1993), इन्डियाज पार्टीशन प्रोसेस स्ट्रैटजी एन्ड मॉबिलाइजेशन, आक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

6. इग्नू पाठ्य संसाधन, आधुनिक भारतीय इतिहास (1999)

7. कौल, सुवीर संपादन, (2001), द पार्टीशन्स आफ मेमोरी,: द आफ्टर लाइफ आफ द डिवीजन आफ इन्डिया, पर्मानेन्ट ब्लैक, दिल्ली

8. मून, पेन्डरल (1961), डिवाइड एन्ड क्विट, लंदन

9. सरकार, सुमित (1983), माडर्न इन्डिया 1885-1947, मैक्मिलन इन्डिया लिमिटेड, मद्रास

16.9 सहायक ग्रंथ सूची

1. चन्द्रा, बिपन एवं अन्य (1999), इन्डिया आफ्टर इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

2. जोशी, ललित मोहन संपादन, (2004), साउथ एशिएन सिनेमा, अंक 5-6, लंदन

16.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 'साम्प्रदायिकता' की व्याख्या कीजिए

प्रश्न 2. भारतीय संविधान के चरित्र की चर्चा कीजिए

प्रश्न 3. भारतीय संविधान के आमुख पर एक टिप्पणी लिखिए

प्रश्न 4. फिल्मों ने भारत के विभाजन को किस तरह से चित्रित किया है? चर्चा कीजिए

प्रश्न 5. भारत के विभाजन के दौरान महिलाओं को किस तरह की त्रासदी से गुजरना पड़ा

प्रश्न 6. रैडक्लिफ रेखा पर एक टिप्पणी लिखें

प्रश्न 7. आप लोकतन्त्र और भारत में इसकी कार्यपद्धति से क्या समझते हैं?